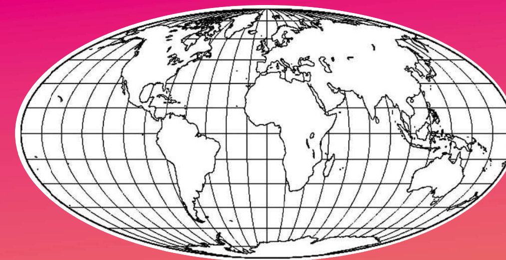


प्रकाशक
राजस्थान राज्य पाठ्यपुस्तक मण्डल, जयपुर





आधुनिक विश्व में विद्यालयी शिक्षा

B.S.T.C. (D.El.Ed.)

पठन सामग्री - द्वितीय वर्ष









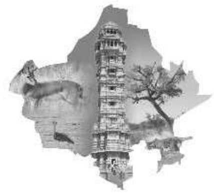
आधुनिक विश्व में विद्यालयी शिक्षा B.S.T.C. (D.El.Ed.) पठन सामग्री - द्वितीय वर्ष

पाठ्यचर्या के उद्देश्य

1. विद्यार्थी-शिक्षक बच्चों की परवाह करें तथा उनके साथ आनंद अनुभव करें, बच्चों को उनके सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक संदर्भ में समझें, उनकी आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील हों तथा सभी बच्चों के साथ समानता का व्यवहार करें।
2. विद्यार्थी-शिक्षक बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार के रुप में समझें, न कि केवल ज्ञान प्राप्तकर्ता के रुप में। विद्यार्थी-शिक्षक बच्चों में ज्ञान के सृजन की क्षमता को प्रोत्साहित करें जिससे सीखना रटंत प्रणाली से मुक्त हो सके और सीखना आनंददायी, अर्थपूर्ण और भागीदारी की प्रक्रिया हो सके।
3. विद्यार्थी-शिक्षक पाठ्यचर्या एवं पाठ्यपुस्तकों का समालोचनात्मक विश्लेषण करें एवं स्थानीय आवश्यकताओं के संदर्भ में देख सकें।
4. विद्यार्थी-शिक्षक पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में निहित ज्ञान को दी गई वस्तु न समझें।
5. विद्यार्थी-शिक्षक में बालकेंद्रित, क्रिया आधारित, सहभागितायुक्त अनुभवों यथा-खेल प्रायोजना, विचार-विमर्श, संवाद, अवलोकन, भ्रमण जैसी गतिविधियों का आयोजन करने की क्षमता का विकास हो सके तथा स्वयं की सीखने-सिखाने की प्रक्रिया पर चिंतन कर सकें।
6. विद्यार्थी-शिक्षक कक्षा-कक्ष में सामाजिक एवं व्यक्तिगत विविधताओं को पहचान कर सीखने की प्रक्रिया में उनका समावेश कर सकें।
7. विद्यार्थी-शिक्षक शांति, जीवन की प्रजातांत्रिक शैली, समानता, न्याय, स्वतंत्रता की भावना, धर्म निरपेक्षता जैसे मूल्यों को पोषित करें एवं सामाजिक पुनर्निर्माण हेतु प्रतिबद्ध रहें।
8. विद्यार्थी-शिक्षक विषय-वस्तु के ज्ञान, बच्चों, समुदाय और पाठ्यचर्या उद्देश्यों के आधार पर सीखने-सिखाने की योजना का निर्माण कर सकें।
9. विद्यार्थी-शिक्षक बच्चों के सामाजिक एवं शारीरिक विकास और निरंतर बौद्धिक विकास को सुनिश्चित कर मूल्यांकित करने हेतु औपचारिक एवं अनौपचारिक प्रविधियों को समझेंगे और उपयोग कर सकेंगे।

विद्यालय अनुभव कार्यक्रम : द्वितीय वर्ष

क्र.सं.	कार्यक्रम का विवरण	संभावित माह/ कार्यदिवस
1.	अभ्यास हेतु डाइट/BSTC (D.El.Ed) संस्थान द्वारा विद्यालयों का चयन	जुलाई
2.	चयनित समस्त विद्यालयों के संस्था प्रधान एवं एक शिक्षक के साथ चर्चा (दो दिवसीय उन्मुखीकरण)	अगस्त
3.	विद्यालय अवलोकन हेतु विद्यार्थी-शिक्षक की डाइट (D.El.Ed) संस्थान में तैयारी	सितम्बर (2 दिन)
4.	चयनित विद्यालयों में विद्यार्थी-शिक्षक द्वारा विद्यालय अवलोकन	सितम्बर (3 दिन)
5.	40 दिवसीय विद्यालय अनुभव के लिए विद्यार्थी-शिक्षक की डाइट/BSTC (D.El.Ed) संस्थान में तैयारी	दिसम्बर (5 दिन)
6.	विद्यार्थी-शिक्षक द्वारा चयनित विद्यालयों में शिक्षण अनुभव	जनवरी, फरवरी (40 दिन)
7.	डाइट/BSTC (D.El.Ed) संस्थान में व्याख्याताओं से संपर्क एवं परामर्श	जनवरी, फरवरी (3 दिन)
8.	विद्यार्थी-शिक्षक का मूल्यांकन	सतत



सेवापूर्व शिक्षक प्रशिक्षण

B.S.T.C. (D.El.Ed.)

पठन सामग्री – द्वितीय वर्ष

विषय – आधुनिक विश्व में विद्यालयी शिक्षा

राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान,
उदयपुर, राजस्थान

प्रकाशक

राजस्थान राज्य पाठ्यपुस्तक मंडल, जयपुर

संस्करण :–

मूल्य :–

प्रकाशक :–

मुद्रक :–

तकनीकी सहयोग –
आई.सी.आई.सी.आई. फाउण्डेशन फॉर
इनक्लूसिव ग्रोथ (आई.एफ.आई.जी.)
उदयपुर (राजस्थान)

आमुख

सीखना एक सतत प्रक्रिया है और उसमें सुधार, विकास एवं उत्तरोत्तर वृद्धि की गुंजाइश बनी रहती है। गाँधी के विचारों में "शिक्षा के आधारभूत सिद्धांतों में एक सिद्धांत यह है कि समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर इसकी रचना की जानी चाहिए।" भारत सरकार ने स्वतंत्रता के पश्चात शिक्षा के विस्तार और गुणवत्ता के सुधार के साथ–साथ उसे आधुनिक समाज तथा राष्ट्र की ज़रूरतों के अनुरूप ढालने के अनेक प्रयास किए गए हैं। आधुनिक विद्यालयी शिक्षा आधुनिक युग की देन है। इसी परिप्रेक्ष्य में बी.एस.टी.सी. द्वितीय वर्ष के तृतीय प्रश्नपत्र ''आधुनिक विश्व में विद्यालयी शिक्षा के रूप में यह पठन सामग्री प्रस्तुत की जा रही है।

''आधुनिक विश्व में विद्यालयी शिक्षा'' विषय पर निर्मित यह पाठ्य सामग्री वर्तमान परिवेश में सार्थक एवं प्रासंगिक रहेगी ऐसी हमारी मान्यता है। यह संपूर्ण पाठ्य योजना कुल सात इकाइयों में विभाजित है।

प्रथम इकाई **आधुनिक विश्व की तीन प्रमुख प्रक्रियाएँ** में आधुनिक विश्व की तीन प्रमुख प्रक्रियाओं–औद्योगीकरण राष्ट्र–राज्य एवं लोकतंत्र को विद्यालय शिक्षा के संदर्भ में विस्तार से समझाया गया है। यह एक स्वीकार्य तथ्य है कि विद्यालयी शिक्षा का वर्तमान स्वरूप केवल आधुनिक विश्व की इन तीन प्रक्रियाओं की ही देन है। शिक्षा को यहाँ इनसे जोड़ कर भी देखा गया है।

द्वितीय इकाई **आधुनिक विद्यालयों का स्वरूप और उनकी समीक्षा** में विद्यालयी शिक्षा प्रणाली की ऐतिहासिक समीक्षा की गई है। इसमें पहले इंग्लैंड, जर्मनी एवं अमेरिका में इस शिक्षा का सार्वजनीकरण किस प्रकार हुआ तथा इसका उत्तरोत्तर विकास किस तरह हुआ इसकी विवेचना की गई। तत्पश्चात सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली की समीक्षा पाउले फ्रेरे, जॉन हाल्ट तथा इवान इलीच के विचारों के संदर्भ में की गई।

तृतीय इकाई **वैश्वीकरण और शिक्षा** में वैश्वीकरण का आशय जिसमें पूंजी उत्पाद व श्रमिकों का प्रवाह आदि का अध्ययन करेंगे। वैश्वीकरण की अवधारणा और राष्ट्र–राज्य, समाज–संस्कृति व शिक्षा पर उसके प्रभाव, सामाजिक व सांस्कृतिक संदर्भ में किसान व असंगठित क्षेत्रों में वैश्वीकरण के प्रभाव की विवेचना प्रस्तुत है।

चतुर्थ इकाई **स्वतंत्रता के बाद भारत में शिक्षा का विकास –1947 से 1992 तक** में स्वतंत्र भारत में शिक्षा के विकास और प्रसार के लिए भारत सरकार ने जो विविध आयोग गठित किए, उनकी सिफारिशों के आधार पर जो शिक्षा नीति बनाईं, उनके बारे में विस्तार से पढ़ेंगे। शिक्षा आयोगों का इतिहास विद्यार्थी शिक्षकों को इस लिए पढ़ना ज़रूरी है क्योंकि विद्यालयी शिक्षा का वर्तमान स्वरूप उन्हीं आयोगों, नीतियों के तहत किए गए निर्णयों और कार्यान्वयन की परिणति है। वैश्वीकरण के दौर में हम पाते हैं कि शिक्षा के स्वरूप, शिक्षक की भूमिका और अभिभावकों की विद्यालयों से अपेक्षाएँ भी बदली हैं।

पाँचवीं इकाई **भारतीय शिक्षा व्यवस्था की उभरती तस्वीर– 1992 ईस्वी के बाद** में शिक्षा के इस दौर में सरकार ने शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम, सर्वशिक्षा अभियान जैसे व्यापक पहुँच वाले कार्यक्रम संचालित किए। इनके माध्यम से न केवल शिक्षा को वंचित तबकों तक पहुँचाने का प्रयास किया गया, वरन शिक्षा की गुणवत्ता और विद्यालयों में मूलभूत सुविधाओं को सुधारने की भी कोशिश की गई। कुछ हद तक इनसे नामांकन और ठहराव–दर में सुधार हुआ, साथ ही शिक्षा की गुणवत्ता में भी तुलनात्मक सुधार देखा गया लेकिन इन कार्यक्रमों को शत प्रतिशत सफल करार नहीं दिया जा सकता।

छठी इकाई **शैक्षिक नवाचार और पहल से परिचय** में पिछली पाँचवीं इकाई का ही विस्तार है, जिसमें हम कुछ ऐसे शैक्षणिक नवाचारों के बारे में पढ़ेंगे जो सरकारी और गैर सरकारी संगठनों की पहल से हुए हैं। इनमें लोक जुंबिश, शिक्षाकर्मी, दूसरा दशक, होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम, ऋषि वैली प्रयोग आदि को जानने का प्रयास

किया गया है।

भविष्य में एक शिक्षक के रूप में भूमिका निभाते हुए विद्यार्थी शिक्षकों को अनेक प्रकार के आँकड़ों से जूझना होगा। अंतिम सातवीं इकाई **गुणात्मक शिक्षा में शैक्षिक आँकड़ों का महत्त्व** में विद्यार्थी शिक्षकों को शिक्षा से संबंधित आँकड़ों को सारणी में प्रस्तुत कर समझाया गया है। इससे भविष्य में विद्यालयी शिक्षक की भूमिका भी सार्थक सिद्ध होगी।

यह पठन सामग्री विद्यार्थी–शिक्षकों एवं शिक्षक–प्रशिक्षकों के लिए बनाई गई हैं।

इस पठन सामग्री के निर्माण में राज्य एवं राज्य के बाहर के शिक्षाविदों, डाइट, सीटीई के विषय विशेषज्ञों एवं प्रो. शारदा जैन, श्री राघवेंद्र देव शर्मा, सुश्री शोभिता राजगोपाल, श्री उमाकांत ओझा, डॉ. मोहम्मद सलीम ने हमें अनेक प्रकार से स्रोत और सुझाव प्रदान किए, इसके लिए हम इन सभी के आभारी हैं, साथ ही डॉ. साधना सक्सेना, प्रोफेसर, केंद्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली एवं डॉ. ललित किशोर, से.नि. सहायक आयुक्त, केंद्रीय विद्यालय संगठन, गुवाहाटी, असम के भी हृदय से आभारी है जिन्होंने बाह्य समीक्षक के रूप में इस पठन सामग्री का अध्ययन कर सुझाव प्रस्तुत किए जिससे इस अध्ययन सामग्री को और अधिक उपयोगी बनाया जा सका। इस पठन सामग्री के निर्माण में विभिन्न पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं, इंटरनेट आदि विविध स्रोतों का इस्तेमाल किया गया है अतः तत्संबंधी लेखकों, संपादकों और प्रकाशकों का आभार।

इस पठन सामग्री का निर्माण स्कूल एवं संस्कृत शिक्षा, राजस्थान सरकार, जयपुर तथा आई.सी.आई.सी.आई. फाउंडेशन फॉर इनकलूसिव ग्रोथ (आई.एफ.आई.जी.) के संयुक्त तत्त्वावधान में संचालित **'विद्यालय एवं शिक्षक शिक्षा उन्नयन कार्यक्रम'** के तहत किया गया है। राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर एवं आई.एफ.आई.जी. के अधिकारियों का इस कार्य में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। पठन सामग्री को और बेहतर बनाने के लिए आपके सुझावों का सदैव स्वागत रहेगा।

शुभकामनाओं सहित।

विनीता बोहरा
निदेशक
राजस्थान राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं
प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर

पठनसामग्री निर्माण समिति

संरक्षक

विनीता बोहरा, निदेशक एस.आई.ई.आर.टी. उदयपुर।

मुख्य समन्वयक

कृष्णा चौहान, उपनिदेशक एवं विभागाध्यक्ष, शिक्षक–शिक्षा विभाग, एस.आई.ई.आर.टी., उदयपुर।
रश्मि भार्गव, प्रधानाचार्य, रा.उ.मा.वि., कुण्डई, पंचायत समिति भीण्डर, उदयपुर।
अरविन्द शर्मा, प्रोजेक्ट ऑफिसर, सेवापूर्व शिक्षक प्रशिक्षण, कार्यक्रम, आई.एफ.आई.जी., उदयपुर।

समन्वयक

डॉ. अमृता दाधीच, व्याख्याता, शिक्षाक्रम एवं मूल्यांकन विभाग, एस.आई.ई.आर.टी. उदयपुर।

संदर्भ व्यक्ति

सी.एन. सुब्रमण्यम, एकलव्य, भोपाल (म.प्र.)।
डॉ. सी.एल.शर्मा, सेवानिवृत्त प्रोफेसर, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर।
उषा बापना, सेवानिवृत्त अति.निदेशक, शिक्षा विभाग, जयपुर।
जय गुप्ता, रिसर्च स्कॉलर, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

लेखक समूह

डॉ. गोविन्द सिंह, उपनिदेशक, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद, जयपुर।
रणधीर सिंह शेखावत, व्याख्याता, डाइट (विद्याशाला) जोधपुर।
डॉ. शशिप्रभा खुराना, प्राचार्य, सेंट विल्फ्रेड टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर।
परविंदर कौर, प्रधानाचार्य, रा. आदर्श, उ.मा.वि. नवां, हनुमानगढ़।
डॉ. जेहराबानू , व्याख्याता, विद्याभवन जी.एस.टी.टी. कॉलेज, उदयपुर।
डॉ. मुनमुन शर्मा, व्याख्याता, डाइट, गोनेर, जयपुर।
अमित अजीत सिंह, एकलव्य भोपाल, म.प्र.।
चंदन, एकलव्य भोपाल म.प्र.।
शाईनी वर्गिस, व्याख्याता, विद्याभवन जी.एस.टी.टी. कॉलेज, उदयपुर।
ललित मोहन शर्मा, आर.पी. एस.एस.ए. जयपुर पूर्व, जयपुर।
श्रीमती उमा वर्मा, प्रधानाचार्य, टैगौर पब्लिक स्कुल, जयपुर।
दिनेश वैष्णव, संदर्भ व्यक्ति, डाइट बारां।
राकेश कुमार, संदर्भ व्यक्ति, एस.एस.ए., डीग, भरतपुर।
राजेश उपाध्याय, संयुक्त निदेशक, दूसरा दशक जयपुर।

प्रूफ रीडर

डॉ. रतनपुरी गोस्वामी, वरिष्ठ अध्यापक, रा.उ.मा.वि., तुलसीदास की सराय, देबारी, उदयपुर।

साज सज्जा

डॉ. जगदीश कुमावत, व्याख्याता, एस.आई.ई.आर.टी. उदयपुर।

आवरण

वागीश शर्मा, उदयपुर।

चित्राकंन

योगीराज यादव, जयपुर।

कम्प्यूटर कार्य एवं ग्राफिक्स

शिवराज यादव, गिरजाशंकर घारू, आई.एफ.आई.जी, उदयपुर।
पुष्पराज माथुर, जयपुर।

शिक्षक – प्रशिक्षकों हेतु दिशा निर्देश

(1.) आधुनिक विश्व में विद्यालयी शिक्षा द्वितीय वर्ष के विद्यार्थियों के लिए पाठ्यक्रम निर्माण में प्रमुख रूप से इस विषय की मूलभूत अवधारणाओं में विश्व में विद्यालयी शिक्षा का प्रारंभिक संदर्भ से वर्तमान स्वरूप तक की यात्रा का वर्णन है। जिसमें राजकीय एवम् निजी विद्यालयों सहित सभी प्रकार के विद्यालय सम्मिलित है, इन सभी प्रकार के विद्यालयों का आधुनिक स्वरुप के वर्तमान संदर्भ में विचारों को रखा, जाँचा और विद्यार्थियों को समालोचना करने तक पहुँचाने का सार्थक प्रयास किया गया है। इसी भावना के अनुरूप विद्यार्थी–शिक्षकों को प्रशिक्षित करने का प्रयास करें।

(2.) आधुनिक विश्व में विद्यालयी शिक्षा विषय की मूलभूत अवधारणाओं शिक्षक–प्रशिक्षक कक्षा शिक्षण के समय में इस पठन सामग्री के अंत में दी गई सूची में संदर्भ पुस्तकों, रिपोर्ट एवम् गज़ट तथा संदर्भित फिल्मों का आवश्यकतानुसार यथासंभव चर्चा एवम् प्रयोग करें जिससे इनका उपयोग सम्बन्धित विषयवस्तु की अधिक गहराई से समझ बनाने में सहयोग करें।

(3.) विद्यार्थी–शिक्षकों को विषयवस्तु को समझाने हेतु कई स्थानों पर सामुहिक रूप से गतिविधि आधारित शिक्षण को प्राथमिकता के साथ करना होगा तथा साथ ही ऐसी गतिविधियों को करने में आवश्यक रूप से विद्यार्थियों को प्रेरित करें ताकि विषयवस्तु को आज के आधुनिक परिपेक्ष्य में समझ विकसित हो सके।

(4.) इस पुस्तक के प्रत्येक इकाई में विषयवस्तु के प्रकरण विशेष के बोध प्रश्न दिये हुए हैं तथा प्रत्येक इकाई के अन्त में दत्त कार्य दिया गया है, जो कक्षा शिक्षण के पश्चात अपने अनुभव और आसपास के परिवेश में अन्तःक्रिया के माध्यम किया जाना अपेक्षित है। दत्त कार्य का समय – समय पर जाँचना भी उतना ही आवश्यक है जितना उस संदर्भ में दत्त कार्य करना है।

(5.) सैद्धांतिक प्रश्न पत्र में 30 अंक आंतरिक मूल्यांकन हेतु प्रस्तावित है, जिनमें दो परख एवम् क्रियात्मक कार्य करना अनिवार्य है। क्रियात्मक कार्य हेतु विद्यार्थी – शिक्षकों को विषयवस्तु के अनुसार प्रत्येक इकाई पर समूह कार्य करवाया जा सकता है। समूह में प्रत्येक विद्यार्थी – शिक्षक को चयनित इकाई के अनुरूप व्यक्तिशः भी आवश्यक रूप से दें ताकि विषयवस्तु की आवश्यक समझ बन सके। बाह्य मूल्यांकन हेतु 70 अंक निर्धारित हैं।

(6.) आधुनिक विश्व में विद्यालयी शिक्षा विषय मूल्यांकन प्रक्रिया केवल प्रश्नों के उत्तर देने तक ही सीमित नहीं हो अपितु सतत एवम् व्यापक मूल्यांकन की मूल भावना के अनुसार ही उचित प्रविधि को उपयोग में लें ।

(7.) पुस्तक की प्रथम इकाई में आधुनिक विश्व की तीन प्रमुख प्रक्रियाएँ में औद्योगिकीकरण, राष्ट्र – राज्य एवम् लोकतंत्र को विद्यालय शिक्षा के साथ विवेचना और यह एक स्वीकार्य तथ्य है कि विद्यालयी शिक्षा का वर्तमान स्वरूप केवल आधुनिक विश्व की इन तीन प्रक्रियाओं की ही देन है। शिक्षा को यहाँ इनसे जोड़ कर भी देखा गया है।

(8.) द्वितीय इकाई आधुनिक विद्यालयों का स्वरुप और उनकी समीक्षा में विद्यालयी शिक्षा प्रणाली इंगलैड, जर्मनी एवं अमेरिका में इस शिक्षा का सार्वजनीकरण किस प्रकार हुआ तथा इसका उत्तरोत्तर विकास किस तरह हुआ इसकी विवेचना की गई। तत्पश्चात सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली की समीक्षा पाउले फ्रेरे, जॉन हाल्ट तथा इवान इलीच के विचारों के संदर्भ में की गई।

(9.) तृतीय इकाई वैश्वीकरण और शिक्षा में वैश्वीकरण का आशय जिसमें पूंजी उत्पाद व श्रमिकों का प्रवाह आदि का अध्ययन करेंगे। वैश्वीकरण की अवधारणा और राष्ट्र–राज्य, समाज–संस्कृति व शिक्षा पर उसके प्रभाव, सामाजिक व सांस्कृतिक संदर्भ में किसान व असंगठित क्षेत्रों में वैश्वीकरण के प्रभाव की विवेचना प्रस्तुत है।

(10.) चतुर्थ इकाई स्वतंत्रता के बाद भारत में शिक्षा का विकास –1947 से 1992 तक में स्वतंत्र भारत में शिक्षा के विकास और प्रसार के लिए भारत सरकार ने जो विविध आयोग गठित किए, उनकी सिफारिशों के आधार पर जो शिक्षा नीति बनाईं, उनके बारे में विस्तार से समझाया गया है। पाँचवीं इकाई भारतीय शिक्षा व्यवस्था की उभरती तस्वीर– 1992 ईस्वी के बाद में शिक्षा के इस दौर में सरकार ने शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम, सर्वशिक्षा अभियान जैसे व्यापक पहुँच वाले कार्यक्रम संचालित किए। इन सभी कार्यक्रमों की प्रासंगिकता के बारे में आप चर्चा करेंगे।

(11.) छठी इकाई शैक्षणिक नवाचार और पहल से परिचय में पिछली पाँचवीं इकाई का ही विस्तार है, जिसमें हम कुछ ऐसे शैक्षणिक नवाचारों के बारे में पढ़ेंगे जो सरकारी और गैर सरकारी संगठनों की पहल से हुए हैं। इनमें लोक जुंबिश, शिक्षाकर्मी, दूसरा दशक, होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम, ऋषि वैली प्रयोग आदि को जानने का प्रयास किया गया है। भविष्य में एक शिक्षक के रूप में भूमिका निभाते हुए विद्यार्थी शिक्षकों को अनेक प्रकार के आँकड़ों से जूझना होगा। विद्यार्थी–शिक्षक अपनी स्वयं की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे। अंतिम सातवीं इकाई गुणात्मक शिक्षा में शैक्षिक आँकड़ों का महत्त्व में विद्यार्थी–शिक्षकों को शिक्षा से संबंधित आँकड़ों को के सारणी में प्रस्तुत कर समझाया गया है। इससे भविष्य में विद्यालयी शिक्षक की भूमिका भी सार्थक सिद्ध होगी।

यह एक सर्व विदित तथ्य है कि अध्यापक की भूमिका पुस्तक से कहीं महत्त्वपूर्ण है अतः पुस्तक को अधिक प्रभावी बनाने में आप सभी शिक्षक – प्रशिक्षकों की समझ व प्रयास महत्त्वपूर्ण होंगे।, इसी आशा एवं विश्वास के साथ यह पुस्तक आपको समर्पित है।

अनुक्रमणिका

इकाई–1
आधुनिक विश्व की तीन प्रमुख प्रक्रियाएं

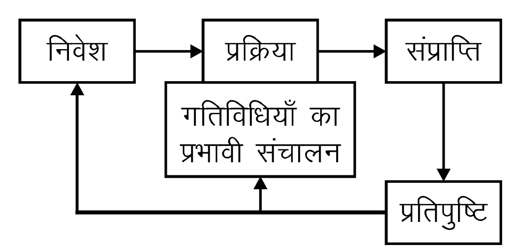
इकाई 1 आधुनिक विश्व की तीन प्रमुख प्रक्रियाएं

परिचय

इस इकाई में विद्यालयी शिक्षा के संदर्भ में दो शब्दों का प्रयोग हुआ है, 'आधुनिक विश्व' एवं 'प्रक्रिया'। पहले 'प्रक्रिया' का अर्थ समझ लें। मानव की वे सामूहिक क्रियाएँ प्रक्रिया कहलाती हैं जो निरंतर एवं सतत रूप से संपन्न होती हैं तथा जिनके विशेष प्रतिमान बन जाते हैं। इनमें लोगों के बीच संपर्क तथा संचार बना रहता है। प्रक्रिया को सामान्यतः बहुवचन में प्रयुक्त किया जाता है, किंतु यहाँ प्रक्रियाएँ शब्द प्रयुक्त है, जिसमें आर्थिक राजनैतिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों को शैक्षिक संदर्भ में प्रदर्शित करने वाली क्रियाओं के रूप में औद्योगीकरण, राष्ट्र–राज्य तथा लोकतंत्र की व्याख्या की गई है।

आधुनिक विश्व को मध्यकालीन राज्य और आज आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य के समय के बीच तुलना करके समझा जा सकता है। मध्यकाल में लोग भारत और विश्व के अन्य देशों में भी जाति जैसे विभिन्न सामाजिक वर्गों में बँटे थे। उन दिनों दास प्रथा, बेगार प्रथा, और अस्पृश्यता व्यापक रूप में मौजूद थी। महिलाओं को आज जैसी आजादी नहीं थी। लोग जाति व धर्मों में और ऊँच नीच की श्रेणियों में बँटे थे और स्वतंत्रता उच्च वर्ग के पुरुषों तक सीमित थी।

प्रदर्श 1.1 निवेश संप्राप्ति तथा प्रति पुष्टि चार्ट



आम लोग स्वतंत्र नागरिक नहीं बल्कि राजा की प्रजा थे। राजा जो चाहता था, वो नियम प्रजा पर लागू कर सकता था। वह लोगों द्वारा चुना नहीं जाता था, बल्कि वंशानुगत राजा बनता था। जिस तरह के लोकतांत्रिक अधिकार बोलने की आजादी, अपना नेता चुनने की आजादी, कानून की नजरों में सबकी बराबरी आदि हमें आज हासिल हैं, मध्यकाल में नहीं थे। दुनिया में समानता, स्वतंत्रता और भाईचारे की स्थापना के लिए पिछले तीन सौ साल में लोगों ने जो संघर्ष किया, उसके फलस्वरूप आधुनिक विश्व बना है।

आधुनिक विश्व की एक और पहचान है, तार्किकता और वैज्ञानिक सोच यह अंधविश्वास, धर्म और किसी भी प्रकार की सत्ता को मानने के विरुद्ध है। यह न केवल वैज्ञानिक सोच का युग रहा है, बल्कि व्यक्ति की स्वतंत्रता और गरिमा का युग भी रहा है। पहले व्यक्ति जमींदारों, आकाओं, धर्म गुरुओं, कुल और जाति के नियमों से बँधा था। आज का मानव न केवल इन बंधनों से मुक्त है, साथ ही लोकतंत्र में वह अपने लिए नियमों को भी खुद बनाता है, दूसरों की बनाई व्यवस्था उसे मंजूर नहीं है। यह जरूर है कि ये सारे बदलाव आज भी पूर्ण नहीं हुए है। विश्व में कई स्थानों पर आज भी हम मध्यकालीन सोच और व्यवस्थाओं के अवशेषों को देख सकते हैं और लोग उनके विरुद्ध संघर्ष करते हैं।

प्रदर्श 1.2 मध्यकालीन एवं आधुनिक युग की तुलना

मध्यकालीन राजव्यवस्था	आधुनिक युग
1. राजतांत्रिक प्रथा	1. लोकतांत्रिक व्यवस्था
2. समाज का जातिगत विभाजन के आधार पर रोजगार अवसर।	2. सभी वर्गों को रोजगार के समान अवसर।
3. पुरुष प्रधान समाज एवं महिलाओं के सीमित अधिकार।	3. महिलाओं के लिए शिक्षा तथा रोजगार के प्रर्याप्त अवसर।
4. धर्म पर राजनैतिक आधारित, सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था।	4. धर्म निरपेक्षता पर आधारित राजनैतिक व आर्थिक व्यवस्था।

5. अंधविश्वास, दासप्रथाओं और परंपराओं का बोलबाला।	5. तार्किकता, वैज्ञानिक तथा बंधनमुक्त प्रथा का बोलबाला।
6. शिक्षा राष्ट्र राज्य वाद तथा लोकतंत्र का कोई सामंजस्य नहीं।	6. शिक्षा राष्ट्र राज्य वाद तथा लोकतंत्र में सामंजस्य।

आधुनिक विश्व की शुरूआत दो प्रमुख क्रांतियों से हुई है जिनमें एक है, इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति और दूसरी है फ्रांसीसी क्रांति। ये दोनों क्रांतियाँ अठारहवीं सदी के दूसरे अर्धभाग में हुई थीं, जिनसे विश्व ने आधुनिक स्वरूप अपनाया। यह सर्वविदित है कि विश्व में सबसे पहले आधुनिकता लाने में औद्योगीकरण की प्रक्रिया ही जिम्मेदार है जो औद्योगिक क्रांति से ही प्रारंभ मानी जाती है। इसके साथ ही दूसरी प्रक्रिया भी विश्व में फ्रांसीसी क्रांति के साथ ही शुरू हुई जिसे राष्ट्र राज्य एवं राष्ट्रवाद की प्रक्रिया कहा जाता है। इसके बाद एक तीसरी महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया यह रही है जिसमें लोकतंत्र को स्वीकार किया गया। इसमें सदियों पुरानी राजशाही शासन व्यवस्था के स्थान पर जनता के शासन को स्थापित किया गया। इस प्रकार आधुनिक विश्व की तीन प्रमुख प्रक्रियाओं ने विश्व के समस्त मानव समाज को नई राह पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया और शिक्षा के क्षेत्र में भी नयी विद्यालयी शिक्षा के अभिनव स्वरूप को प्रारंभ किया। इस इकाई में विषय को विस्तार से समझने का प्रयास करते हैं।

दरअसल आधुनिक युग की शुरूआत ऐसे मानव के निर्माण से हुई जो कि यूरोप में 1400 ईस्वी से 1700 ईस्वी के बीच के नवजागरण, धार्मिक सुधार और वैज्ञानिक क्रांतियों के फलस्वरूप उभरा। आधुनिक मानव ने पुरानी परंपरा, समाज के प्रतिष्ठितों के प्रति श्रद्धा या धार्मिक विश्वास के स्थान पर तार्किक एवं विवेकशील सोच तथा जीवन पद्धति को अपनाने का प्रयास किया। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से तटस्थता के आधार पर निर्णय लिए जाने पर जोर दिया। इसके साथ ही, व्यक्तिवादी मानसिकता को स्वीकृति भी मिली, जिससे हर व्यक्ति सामूहिक सोच व व्यवहार के विरुद्ध या समाज के स्थापित लोगों के विरुद्ध खड़ा हो सकता था। इसमें व्यक्ति अपने निजी विकास को पूरा करने का संपूर्ण प्रयास करता है। आधुनिक विश्व में इस नए मानव ने पुरानी उत्पादन प्रणालियों को समाप्त करके नई पूँजीवादी औद्योगिक प्रणाली की स्थापना की।

इस आधुनिक मानव ने ही पुराने राजघरानों के राज्य की जगह लोकतांत्रिक राष्ट्र–राज्यों की स्थापना की, जिनमें व्यक्तियों की स्वतंत्रता व अधिकारों को कायम रखते हुए एक नयी सामूहिकता की रचना हुई। ये प्रणालियाँ मूलतः यूरोप व अमेरिका में शुरू हुई और धीरे–धीरे इनका पूरी दुनिया में अपना वर्चस्व स्थापित हुआ। आज भी ये प्रक्रियाएँ हमारे जीवन को निर्धारित कर रही हैं। आधुनिक विद्यालयी शिक्षा एक प्रकार से इन तीन वृहद प्रक्रियाओं औद्योगीकरण, लोकतंत्र और राष्ट्र राज्यों की ही देन है। आधुनिक विद्यालयों ने भी इनके स्वरूप को प्रभावित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इस प्रकार से इस इकाई में आधुनिक विश्व की इन प्रमुख प्रक्रियाओं, यथा औद्योगीकरण, राष्ट्र–राज्यों की स्थापना एवं लोकतंत्र की स्थापना की विवेचना की जाएगी। साथ ही साथ हम यह भी समझने का प्रयास करेंगे कि ये प्रक्रियाएँ विद्यालयी शिक्षा से किस प्रकार संबंधित हैं और उसे किस प्रकार प्रभावित करती हैं।

गतिविधि

आप कक्षा में परिचर्चा करें कि पिछले चार सौ वर्षों में सामाजिक रिश्तों में, राजनैतिक व्यवस्थाओं में, रोजगार और उत्पादन में तथा सोच–विचारों में क्या–क्या अंतर आए हैं।

उद्देश्य

- औद्योगीकरण और सार्वजनिक शिक्षा ने आधुनिक राष्ट्र–राज्यों के गठन एवं उनके स्वरूप को विकसित करने में क्या योगदान दिया है उसको समझना तथा राष्ट्रीय चेतना के विकास में इसके प्रभाव पर विचार करना।
- लोकतन्त्र के सिद्धांत की व्याख्या करते हुए लोकतांत्रिक व्यवस्था में नागरिक की भूमिका, कर्तव्यों एवं अधिकारों

का विश्लेषण करना।

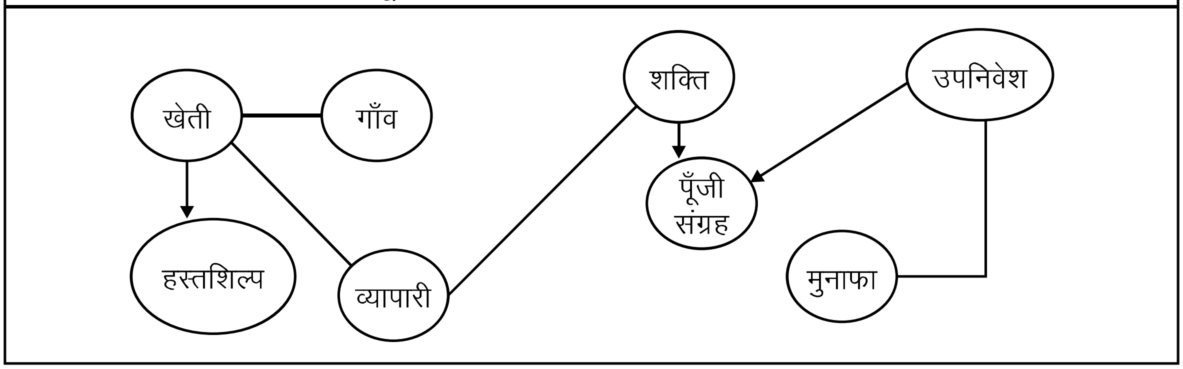
- लोकतंत्र और शिक्षा के द्वारा लोकतंत्र में शिक्षा के आदर्शों को समझना।

1.1 औद्योगीकरण एवं शिक्षा

औद्योगीकरण द्वारा लोगों की आजीविका में मूलभूत परिवर्तन आ रहा है। धीरे–धीरे अधिकांश लोग कृषि की जगह उद्योग या सेवा–व्यापार, शिक्षा, बैंक, मीडिया, आदि क्षेत्रों में काम करने लगे हैं। इन क्षेत्रों में उत्पादकता और आमदनी की संभावनाएँ भी बढ़ी हैं। आँकड़े बताते हैं कि कृषि में आय की संभावना अपेक्षाकृत कम है, तो सेवा क्षेत्र में सबसे अधिक है। इन समस्त बदलावों का शिक्षा के विकास पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। आइए, विस्तार से चर्चा करें।

1.1.1 औद्योगिक उत्पादन की पृष्ठभूमि एवं स्वरूप

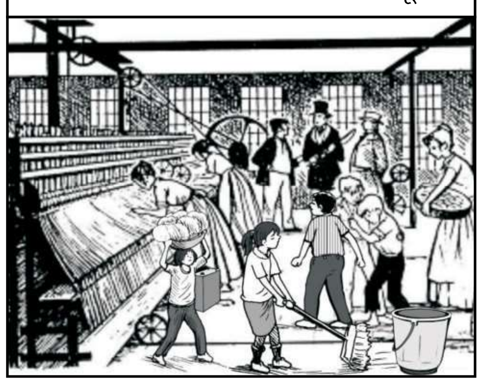
प्रदर्श 1.3 पूर्व औद्योगिक समाज की स्थिति का वेब चार्ट



पहले लोग खेती पर निर्भर थे, और गाँवों में निवास करते थे। हस्तशिल्प भी विकसित था और बड़े पैमाने पर कारीगर अपने घरों में तरह–तरह की वस्तुएँ बनाकर बेचते थे। व्यापारियों का भी एक बड़ा समूह था जो इन किसानों व कारीगरों से अनाज आदि खरीदकर शहरों में और दूर–दराज के देशों में बेचकर मुनाफा कमाते थे। लगभग 1400 ईस्वी के बाद पूरे विश्व में व्यापार का जाल फैला और व्यापार के लिए उत्पादन करने की प्रथा स्थापित होने लगी। यूरोप में इसके कई दूरगामी सामाजिक परिणाम हुए, जैसे – व्यापारियों के हाथ अत्यधिक पूँजी का इकट्ठा होना तथा कारीगरों का व्यापारियों के नियंत्रण में आ जाना। इसके साथ ही यूरोप के व्यापारियों ने अपने राज्यों की मदद से अमेरिका, एशिया, और अफ्रीका में उपनिवेश स्थापित किए। इसी परिदृश्य में इंग्लैंड में औद्योगीकरण प्रारंभ हुआ।

1780 ईस्वी से 1850 ईस्वी के दशक के बीच इंग्लैंड में उद्योग और अर्थव्यवस्था का रूपांतरण हुआ। भारी मशीनों से, अकुशल मज़दूरों से स्थापित बहुत बड़ी मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन कराया गया, जिसके लिए कच्चा माल दूर–दराज के देशों से लाया गया था और जिन्हें दुनियाभर के बाज़ारों में बेचा गया। मशीन, कच्चा माल, निवेश आदि पर पूँजीपतियों का नियंत्रण था। अतः उत्पादन को बेचकर जो मुनाफा हुआ वह भी उन्हीं को मिलता था। इसे प्रथम औद्योगिक परिवर्तन या क्रान्ति के नाम से जाना जाता है। इस परिवर्तन का प्रभाव ब्रिटेन पर बहुत गहरा पड़ा। कारखानों में असीम मात्रा में एक जैसे उत्पाद बनने लगे। इन्हें दुनियाभर में बेचा जाने लगा। दूसरा यह कि इंग्लैंड में एक ओर सर्वहारा मज़दूर वर्ग बना

प्रदर्श 1.4 इंग्लैंड के एक सूत कारखाने में महिला व बाल मजदूर



जो दिहाड़ी मज़दूरी पर जीवित था और दूसरी ओर बड़े पूँजीपतियों व व्यापारियों का वर्ग बना जो मज़दूरों से काम करवाता था और उनके बने माल को बेचकर खुद अपनी पूँजी बढ़ाता था। इस प्रक्रिया में मजदूरों का काफी शोषण हुआ।

जल्द ही अन्य देशों, जैसे–फ्रांस, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका में भी ऐसे ही परिवर्तन हुए। यूरोप और अमेरिका के औद्योगीकरण का दुनिया के अन्य देशों पर विपरीत प्रभाव पडा। ये वे देश थे, जो उपनिवेश बनाए जा रहे थे। इन देशों के कारीगरों के उत्पाद की माँग कम होती गई और वे खेती करने पर विवश हुए। वे औद्योगिक देशों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराने लगे और औद्योगिक माल के लिए बाज़ार बनते गए। इनमें भारत भी सम्मिलित था। किसी देश द्वारा दूसरे देश पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शासन करने को ''उपनिवेश'' बनाना या उपनिवेशीकरण कहा जाता है। आजादी के पहले भारत भी ब्रिटेन का उपनिवेश था। इस व्यवस्था में किसी देश के जल, जंगल, खनिज आदि से जो कमाई की जाती है, उसे उस क्षेत्र में लोगों के विकास पर खर्च नहीं किया जाकर अन्यत्र खर्च किया जाता है।

प्रदर्श 1.5 हेन्री फोर्ड की असेम्बली लाइन



औद्योगीकरण के चरण

औद्योगीकरण कई चरणों में विकसित हुआ। पहले चरण, जिसका नेतृत्व इंग्लैंड ने किया था, में कपड़ा उद्योग, भाप चालित इंजन आदि विकसित हुए। सन् 1850 के बाद औद्योगीकरण द्वितीय चरण में रसायन, बिजली, मशीन आदि भारी उद्योगों पर केंद्रित था और भौतिकी, विज्ञान व गणित का प्रभाव औद्योगीकरण पर पड़ा। अब अमेरिका, जर्मनी इंग्लैंड से भी आगे निकल गया।

1920 ईस्वी के बाद औद्योगीकरण का एक नया दौर चला जिसमें मोटरगाड़ी का महत्त्वपूर्ण स्थान बना। फोर्ड जिसने मोटरगाड़ियों का बहुत बड़े पैमाने पर उत्पादन किया, ने औद्योगिक प्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन किए। फोर्ड ने उत्पादन प्रक्रिया को बहुत ही सरल इकाइयों में बाँटा, ताकि एक कामगार को दिन भर एक ही काम करना पड़े, जैसे –एक खास जगह पेंच कसना। इन सारी इकाइयों को एक लंबी स्वचालित असेंबली की कतार में साथ लाया गया ताकि सारे कामगार दिनभर में एक के बाद एक सैंकड़ों गाड़ियों का निर्माण कर पाएँ। फोर्ड ने यह भी प्रयास किया कि मोटर बनाने के लिए जरूरी हर पुर्जा एक ही छत के नीचे एक ही कारखाने में बने, ताकि वह किसी अन्य पर निर्भर न हो। इस तरह बड़े–बड़े कारखाने बनने लगे। जिनमें हज़ारों कामगार एक साथ काम करते थे। फोर्ड यह भी चाहता था कि मोटरों की माँग तब ही बढ़ सकती हैं जब मज़दूरों का वेतन बढ़े – उसने मज़दूरों का वेतन बढ़ाया ताकि वे उसके प्रति वफादार बने रहें और नए औद्योगिक उत्पादन को खरीदें। इस पूरी व्यवस्था को फोर्डवाद कहते हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भारत जैसे कई देश स्वतंत्र होकर विकास के रास्ते चल पड़े और उन सबने किसी न किसी प्रकार से औद्योगीकरण का रास्ता चुना। पूरा विश्व औद्योगीकरण के सूत्रों से बँधता ही गया।

गतिविधि

फोर्डवाद का एक प्रभावी चित्रण महान फिल्मकार चार्ली चैप्लिन की फिल्म मॉडर्न टाइम में देखा जा सकता है। कक्षा में इस फिल्म को प्रदर्शित कर चर्चा कीजिए, यदि संभव हो तो औद्योगीकरण ने मजदूरों की स्थिति को कैसे प्रभावित किया होगा, चर्चा कीजिए।

फोर्डवाद की व्यवस्था 1970 के बाद कमज़ोर होती गई। इसकी समस्या यह थी कि इसे व्यवहार में उतारने के लिए बहुत अधिक लागत लगती थी और इसमें आसानी से ग्राहकों की रुचि के अनुरूप बदलाव नहीं किया जा सकता था। एक ही तरह के काम को बिना सोचे–समझे दिनभर, सालभर करते रहने के कारण मज़दूर भी बहुत रुष्ट थे। 1970 के बाद की आर्थिक मंदी के चलते दुनिया भर में नए ग्राहकों की खोज होने लगी, नए उत्पादों की खोज होने लगी जो उन विशिष्ट ग्राहकों की पसंद के हों। ऐसे में उत्पादन में लचीलापन और श्रमिकों के साथ रिश्तों में लचीलेपन की ज़रूरत महसूस होने लगी। इस बीच जापान, कोरिया आदि देश, जहाँ कम मज़दूरी पर कामगार उपलब्ध थे, अब अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में आगे आ रहे थे। उन्होंने औद्योगिक उत्पादन प्रणाली में कई परिवर्तन किए, जिनके फलस्वरूप विशालकाय कारखाने कम हुए, उत्पादन का विकेंद्रीकरण हुआ और विविध ग्राहकों की रुचि के अनुरूप माल बनने लगा।

औद्योगिक उत्पादन में अब कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि के साथ–साथ रोबोट व स्वचालित इकाइयों का उपयोग होने लगा। इस पूरे प्रकरण में कामगारों की भूमिका बदलती गई। औद्योगीकरण के प्रारंभ में अकुशल कामगारों से काम करवाया जा सकता था, लेकिन समय के साथ शिक्षित व प्रशिक्षित कामगारों की ज़रूरत पड़ने लगी। वास्तव में उद्योगों का चक्र तब ही चल सकता है, जब कामगारों के अलावा एक बहुत बड़ा सेवा क्षेत्र विकसित हो जिसमें बैंक, वैज्ञानिक शोध संस्थाएँ, विज्ञापन, मीडिया, व्यापार, यातायात, संप्रेषण, शिक्षा, स्वस्थ्य आदि सम्मिलित हैं। बैंक उद्योगों को पूँजी उपलब्ध कराती हैं और तमाम लेनदेन के कार्यो को संभालती है। शोध संस्थाओं के द्वारा नए–नए उत्पाद विकसित किए जाते हैं। यातायात के साधन श्रम, कच्चा माल और उत्पाद को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाते हैं। मीडिया विज्ञापनों द्वारा अलग–अलग सामान की जानकारी सब तक पहुँचाने में मदद करता है और लोगों में इनकी मांग निर्मित करता है। इसमें शिक्षा भी मदद करती है, क्योंकि इस तरह के काम केवल शिक्षित लोग ही कर सकते हैं, और शिक्षित लोग ही बाजार से अधिक माल खरीदते हैं। इस तरह के गैर उत्पादन कार्य, जो उत्पादन या वितरण आदि में सहायक होते हैं उन्हें सेवा क्षेत्र कहते हैं।

प्रदर्श 1.6 लैपटाप निर्माण कारखाना



औद्योगीकरण और रो़जगार

औद्योगीकरण की प्रक्रिया से विश्व समाजों में सबसे बड़ा परिवर्तन कृषि व्यवसाय में संलग्न रहने वालों की संख्या में भारी गिरावट के रूप में देखा गया। गिडंस नामक समाजशास्त्री ने कुछ गैर औद्योगिक एवं औद्योगिक समाजों में कृषि कार्यों में संलग्न लोगों की संख्या में तुलना की है जिसे सारणी 1 : 1 में दर्शाया गया है।

प्रदर्श 1.7 कृषि कार्य में संलग्न लोगों की गैर–औद्योगिक एवं औद्योगिक देशों में संख्या की तुलना	
देश	**कृषि में संलग्न लोगों का रोजगार आबादी का प्रतिशत**
(अ) गैर औद्योगिक समाज (Non-Industrialised societies)	
नेपाल	91.9
रवांडा	90.1
इथोपिया	88.3
युगांडा	82.1
बांग्लादेश	64.2
भारत	**53**
(ब) औद्योगीकृत समाज (Industrialised societies)	
जापान	6.2
ऑस्ट्रेलिया	5.8
जर्मनी	3.8
कनाड़ा	3.4
संयुक्त राज्य अमेरिका	2.8
युनाइटेड किंगडम (ब्रिटेन)	2.0

स्रोत :– Anthony giddens, sociology

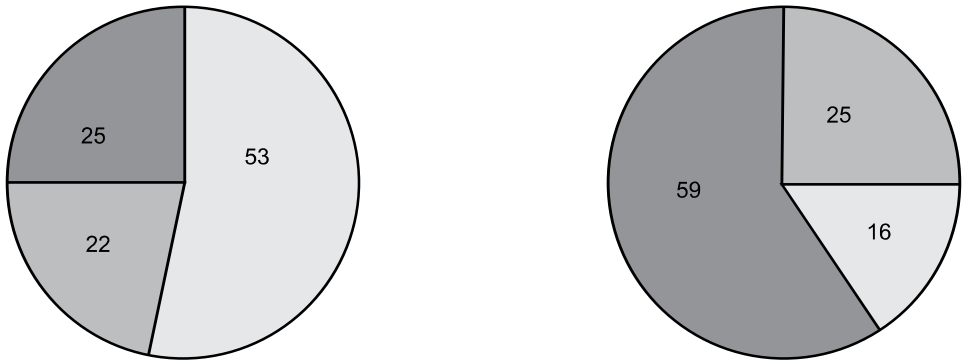
औद्योगीकृत समाजों में अधिकांश लोग खेत–खलिहानों की जगह कारखानों, दफ्तरों या दुकानों में काम करने लगे हैं। उपर्युक्त सारणी में नेपाल, रवांडा, इथोपिया, युगांडा एवं बांग्लादेश की दो–तिहाई से भी अधिक आबादी कृषि में संलग्न है, जबकि औद्योगीकृत देशों–जापान, ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका एवं ब्रिटेन में केवल 2 से 6 प्रतिशत आबादी ही कृषि में संलग्न है। भारत में यद्यपि कृषि प्रधानता आज भी है किंतु यह तेजी से औद्योगीकरण की और बढ़ रहा है। 2009–10 में भारत की कुल कामकाजी आबादी में से कृषि में 53 प्रतिशत लोग लगे हुए थे, लेकिन रोचक बात यह है कि भारत जैसे देशों में भी खेती में उत्पादकता उद्योग या सेवा क्षेत्रों की तुलना में बहुत कम है। 53 प्रतिशत लोगों द्वारा इसमें लगे होने के बाद भी हमारे देश के सकल घरेलू उत्पादन का केवल 16 प्रतिशत कृषि से आता है। इसे चित्र संख्या 1.7 में अधिक सुगम तरीके से समझने हेतु प्रदर्शित किया गया है, जहाँ औद्योगिक एवं गैर औद्योगिक कुल 12 देशों में कृषि में संलग्न लोगों की संख्या के प्रतिशत में तुलना प्रकट होती है।

भारत में विविध क्षेत्रों में रोजगार का वर्गीकरण तथा सकल घरेलू उत्पाद में उनकी हिस्सेदारी का संबंध भी दर्शाना यहाँ उचित होगा। चित्र संख्या 1.8 में इस तुलना को प्रस्तुत किया गया है। चित्र से स्पष्ट होता है कि उद्योगों में 22 प्रतिशत लोग काम करते हैं और देश के सकल घरेलू उत्पादन के 25 प्रतिशत के लिए ज़िम्मेदार हैं। सेवाओं में 25 प्रतिशत लोग काम करते हैं जो सकल घरेलू उत्पादन को 59 प्रतिशत का योगदान देते हैं। ये सेवाएँ भी एक तरह से औद्योगीकरण की ही देन हैं क्योंकि वे उद्योगों में बने माल को बेचते हैं या फिर उनके उत्पादन में मदद करते हैं।

इसे चित्र 1.8.1 व 1.8.2 में दिखाया गया है।

भारत में रोजगार का वितरण सन 2009–2010

प्रदर्श 1.8 भारत में रोजगार का वितरण एवं सकल घरेलू उत्पाद का विविध क्षेत्रों में हिस्सा का पाई चार्ट



रोजगार (प्रतिशत में)
चित्र 1.8.1

सकल घरेलू उत्पाद में विविध क्षेत्रों की हिस्सेदारी (प्रतिशत में)
चित्र 1.8.2

औद्योगीकरण के चलते पुराने उत्पादन के तरीके चाहे वह किसान द्वारा खेती हो, आदिवासियों की जीवनशैली हो या वे पारंपरिक कारीगर हों, इन सबकी आजीविका उनसे धीरे–धीरे छूटने लगती है। किसान खेत से हाथ धो बैठते हैं, आदिवासियों का जंगल पर अधिकार छिन जाता है और कारीगरों का माल बिकना बंद हो जाता है। ऐसे में धीरे–धीरे सब लोग या तो कारखानों में काम खोजते हैं या फिर सेवा क्षेत्र में काम करने लगते हैं, बशर्ते कि वे शिक्षित हों। उदाहरण के लिए 1973 ईस्वी में भारत में लगभग 73 प्रतिशत लोग कृषि पर आश्रित थे और यह कम होते–होते 2000 ईस्वी में 61 प्रतिशत हो गया और 2010 ईस्वी में 53 प्रतिशत। इन आँकड़ों के पीछे छोटे किसानों के आर्थिक घाटे और आदिवासियों की जंगलों से बेदखली की दुखद कहानी है।

अर्थशास्त्रियों का मानना है कि उद्योग और सेवाओं में उत्पादकता कृषि से कई गुना अधिक होती है, आर्थिक विकास की नियति यही है कि अधिकांश आबादी अन्य विकसित देशों की तरह कृषि त्यागकर अन्य आजीविका अपनाएगी। यह तभी सम्भव है जब देश में उद्योगों का विकास हो, खेती–कारीगरी, जैसे पारंपरिक पेशों में लगे लोग शिक्षित हों और उद्योगों या सेवा क्षेत्र में रोज़गार पाने में सहायक कौशलों से युक्त हों।

गतिविधि

- औद्योगीकरण किस तरह से कृषि को प्रभावित करता है? इसे अपने आस–पास के उदाहरणों से स्पष्ट करें।
- कक्षा में विचार करें कि औद्योगीकरण के विकास में आधुनिक शिक्षा का क्या योगदान रहा होगा? इसके लिए किस किस तरह के लोगों की आवश्यकता होगी और शिक्षा उन्हें तैयार करने में कैसे सहायक हो सकती है?
- उद्योगों की अपेक्षा सेवा क्षेत्र में अधिक लोग काम करते हैं, इसके कारणों का पता लगाएँ। क्या आप इसे औद्योगीकरण का परिणाम मानते हैं?

प्रतिस्पर्धा, तकनीकी विकास और मज़दूर

हमने औद्योगिक उत्पादन के बारे में पढ़ा – पूँजी के निवेश द्वारा कारखाने लगाना, उनमें मशीनों से उत्पादन कराना, दूर–दराज से कच्चा माल मँगवाना, अधिक संख्या में मज़दूरों से काम करवाना, अत्यधिक उत्पादन करना और उन्हें दूर–दराज के बाज़ारों में बेचकर मुनाफा कमाना आदि। इसे हम पूँजीपतियों के बीच आपसी प्रतिस्पर्धा कह सकते हैं, अगर कोई मालिक बाकी लोगों से अधिक कीमत पर उत्पादन करता है, तो उसे भी कम दाम पर ही बेचना पड़ेगा और घाटे का सामना करना पड़ेगा, क्योंकि जब कोई सामान बाज़ार में कम कीमत में मिल रहा हो तो कोई अधिक कीमत क्यों दे? कोई भी पूँजीपति लंबे समय तक घाटे का सामना नहीं कर सकता है और उसे या तो किसी तरह की नई तकनीक अपनाकर कीमत कम करना होगा या फिर नए तरह के उत्पाद बनाने होंगे।

अतः हर मालिक लागत को कम करने के सतत प्रयास में रहता है। लागत कम करने के कई तरीके हो सकते हैं, जैसे – एक तो ऐसी मशीन या प्रणाली का उपयोग जिनकी मदद से वह कम मज़दूरों से अधिक उत्पादन करवा पाए। फोर्ड के संदर्भ में हमने इसका उदाहरण देखा था। या फिर किसी तरह कच्चे माल को कम कीमत पर प्राप्त करने का प्रयास करे। आधुनिक औद्योगिक उत्पादन की यह एक पहचान है कि इसमें सतत तकनीकी परिवर्तन होते रहते हैं और उत्पादन प्रणाली बदलती रहती है।

समय के साथ उत्पादन में लगातार पूँजी की मात्रा बढ़ती जाती है। मालिक जो मुनाफा कमाते हैं, उसका एक बड़ा हिस्सा वापस निवेश करना ज़रूरी हो जाता है, ताकि उनका कारोबार बाजार में बना रहे। कारोबार को इस तरह फैलाते रहने व बढ़ाते रहने के दबाव के चलते पूरे समाज में पूँजी का वर्चस्व स्थापित होता जाता है। इसी व्यवस्था को औद्योगिक पूँजीवाद कहा जाता है। इस तरह पूँजीपति द्वारा लागत घटाने और अधिक मुनाफा कमाने के प्रयासों का सबसे अधिक असर कामगारों पर पड़ता है। उन्हें बेरोजगारी का शिकार होना पड़ता है या अपने ऊपर काम के बोझ को बढ़ाने के लिए तैयार होना पडता है। अक्सर जब पुराने कारखाने बंद हो जाते हैं और उनकी जगह नए कारखाने खुलते हैं, तो पुराने कामगारों की जगह नई तकनीक में प्रशिक्षित कामगार लिए जाते हैं।

इन परिस्थितियों का सामना करने के लिए मज़दूर भी तरह–तरह के उपाय अपनाते हैं। इनमें दो तरीके सबसे महत्त्वपूर्ण हैं – संगठन बनाकर सामूहिक रूप से मालिकों से समझौता करना ताकि मज़दूरों के वेतन व काम के हालात बेहतर हो या छँटनी की परिस्थिति में मुआवजा मिले आदि। दूसरा तरीका है राज्य पर दबाव बनाना कि वह मालिकों से कर वसूलकर उससे मज़दूरों के लिए सामाजिक सुरक्षा जैसे –निःशुल्क शिक्षा, अस्पताल सेवा, आवास, बेरोजगारी भत्ता, वृद्धावस्था पेंशन आदि का प्रबंध करे। ऐसे प्रयासों की सफलता के लिए लोकतंत्र के मजबूत होने की ज़रूरत है।

गतिविधि

- 'मनुष्य ने ही मशीनें बनाकर तैयार की और उन्हीं मशीनों ने मज़दूर वर्ग को बेरो़जगार कर दिया' इस उक्ति से आप कहाँ तक सहमत हैं ?
- ''औद्योगिक समाज, रोजगार के अवसर और सामाजिक संबंध बदलते रहते हैं।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।
- औद्योगिक अर्थव्यवस्था में मज़दूरों के जीवनयापन के लिए शिक्षा और लोकतंत्र के महत्त्व पर चर्चा कीजिए।

1.1.2 श्रम और बाजार के निर्माण में सार्वजनिक शिक्षा की भूमिका

हमने देखा कि औद्योगीकरण में बहुत बड़ी मात्रा में उत्पादन और उसे सतत बढ़ाते रहने की ज़रूरत निहित है। ऐसे में हर माल के लिए एक असीम बाज़ार निर्मित करना भी औद्योगीकरण की जरूरत है लेकिन सामान्य रूप से किसी भी समाज में लोगों की अभिरुचियों में भिन्नताएँ होती हैं और विभिन्न इलाकों व संस्कृतियों में तो और अधिक

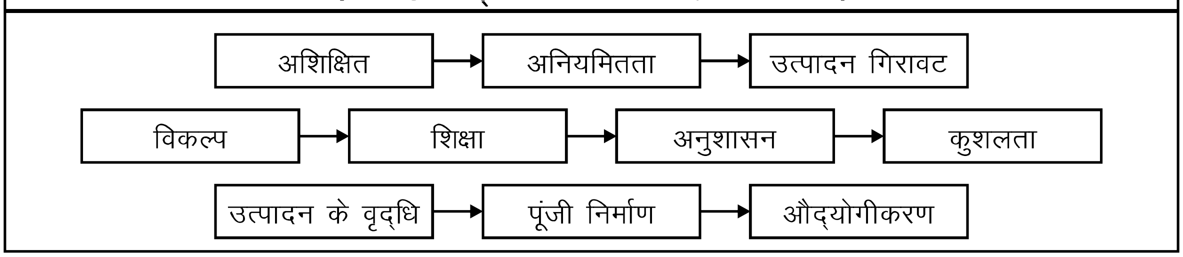
भिन्नताएँ होगी। ऐसे में ज़्यादा से ज़्यादा लोग कारखाने में बनी एक जैसी चीजें क्यों खरीदेंगे ? अतः ज़रूरत है एक बड़े बाज़ार के निर्माण की, जिसमें लोगों की अभिरुचि और सोच में एकरूपता हो। आधुनिक विद्यालय इसमें मदद करते हैं। विद्यालय में सब बच्चों को एक सा मानकर संबोधित किया जाता है। सब एक सी किताब पढ़ते हैं। किताब पढ़कर उनसे क्या सीखने की अपेक्षा है, इसमें भी एकरूपता होती है।

इससे बच्चों की रुचि, जीवन शैली, इस्तेमाल की जाने वाली वस्तुएँ मोटे तौर पर एक से होने लगते हैं। बड़े भूभागों में ऐसी एकरूपता लाने वाली संस्थाओं में विद्यालयों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में जब टेलिविज़न जैसे साधनों का विकास नहीं हुआ था और मीडिया पत्र–पत्रिकाओं तक सीमित था, तब विद्यालयी शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम था जो भिन्न लोगों की अभिरुचियों में एकरूपता ला सकती थी। हम प्रायः देख सकते हैं कि शिक्षित लोग बाजार में उपलब्ध माल के बारे में अधिक जानकार होते हैं और उस संबंधित वस्तुओं की आवश्यकता महसूस करते हैं। जिन क्षेत्रों में शिक्षा का प्रसार कम होता है वहाँ बाज़ार का भी विकास सीमित ही रहता है। पिछले दशकों में विद्यालय भी एक बहुत बड़े बाजार के रूप में विकसित हुआ है। भवन निर्माण, पुस्तकें, कापी, लेखन सामग्री, यूनिफार्म, यातायात, विभिन्न तरह की सह–शिक्षण सामग्री, कम्प्यूटर आदि के बिना हम शिक्षा के बारे में सोच भी नहीं सकते हैं। ये सब आज औद्योगिक उत्पादन हैं, जिन्हें सुनियोजित तरीके से बेचा जाता है।

गतिविधि

- उन औद्योगिक उत्पादनों की सूची बनाइए जिनका उपयोग विद्यालयी शिक्षा की मदद से संभव हुआ ?
- कई लोगों का मानना है कि आजकल के विद्यालय बाजार के दबाव में आकर काम करते हैं –क्या आपने इसका उदाहरण या अपवाद देखा है ? आपके विचार को कक्षा में अभिव्यक्त कीजिए।
- ''विद्यालय लोगों के विचार, जरूरतों व अभिरुचियों में एकरूपता लाता है'' – कक्षा में शिक्षक व साथियों के साथ इस कथन की समीक्षा कीजिए तथा रिपोर्ट तैयार कीजिए।

प्रदर्श 1.9 औद्योगीकरण में शिक्षा का योगदान



औद्योगीकरण की शुरूआत में ऐसा लग रहा था कि मशीनों के उपयोग के कारण कारीगरों के हुनर की कोई जरूरत नहीं रह गई है। अप्रशिक्षित महिला या पुरुष व बच्चे भी उत्पादन का काम कर सकते हैं और हुनरमंद व प्रशिक्षित कारीगरों की जगह ले सकते हैं लेकिन इस दौर में भी उद्योगपतियों को लगता रहा कि मज़दूरों में उद्दंडता, कहा न मानना, झगड़ने की प्रवृत्ति, अनियमितता और अनुशासनहीनता है, जिसके कारण उत्पादक का काम सुचारू रूप से नहीं चल पाता है। उनकी ज़रूरत थी औद्योगिक अनुशासन की, मालिक या फोरमैन के निर्देशों के पालन की। मज़दूरों परिस्थितियों में काम करने से परेशान थे। इसके पहले तो वे खेतों में या घरों में अपनी रुचि से काम करते थे। उन्हें नए काम की परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालने में परेशानी हो रही थी। साथ–साथ मालिकों के अमानवीय व्यवहार व शोषण के विरुद्ध आवाज उठाना भी जरूरी था। इन सब बातों के चलते मालिकों ने पाया कि बच्चों को विद्यालय के माध्यम से अनुशासित किया जा सकता है। रोज नियमित समय पर आना व अन्य बच्चों के साथ चुपचाप बैठना, दिए गए काम को निर्देशानुसार करना, कहा मानना, अपनी बात को विनम्रता से कहना,

आदि आदतों को बचपन से ही आत्मसात कराने में विद्यालय काफी सफल रहा। कई समाजशास्त्री यह भी मानते हैं कि आधुनिक विद्यालय ने कारखानों के ढ़ाँचों से कई तत्त्व अपनाए। जब हम अगली इकाई में इंग्लैंड में सार्वजनिक विद्यालय की विकास की चर्चा करेंगे तो इन बातों पर और प्रकाश पड़ेगा।

गतिविधि

कारखानों के संचालन और विद्यालय के संचालन में आप क्या समानता देख पाते हैं ? विस्तार से लिखिए।

जैसे–जैसे औद्योगीकरण विकसित हुआ, विशेषकर उसके दूसरे चरण में, यह स्पष्ट होता गया कि कामगारों मे कुछ विशेष कुशलताओं की ज़रूरत है। यह भी पाया गया कि शिक्षित कारीगर कारखानों मे आने वाली समस्याओं का समाधान आसानी से खोज पाते हैं और नए आविष्कार कर पाते हैं। अतः यह स्वीकार किया जाने लगा कि आम मजदूरों को भी शिक्षित होना चाहिए। यह भी स्वीकारा गया कि कारखानों में काम करने के लिए मजदूरों को कुछ खास प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए क्योंकि प्रशिक्षित मजदूरों की उत्पादकता अधिक होती है। जर्मनी और फ्रांस में सबसे पहले औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाएँ बनीं और काफी सफल भी रहीं। इस तरह मज़दूरों के लिए सामान्य प्राथमिक शिक्षा और औद्योगिक प्रशिक्षण की व्यवस्थाएँ बनने लगीं। औद्योगिक प्रशिक्षण के संदर्भ में एक समस्या यह बनी रही कि इन संस्थाओं में जिस तकनीकी का प्रशिक्षण मिलता था, वह जल्दी ही पुरानी पड़ जाती थी, क्योंकि कारखानों में लगातार नई मशीन व नए तरीके अपनाए जाते रहे। जर्मनी जैसे देशों में इसका उपाय यह खोजा गया कि कारखानों व प्रशिक्षण संस्थानों के बीच गहरा संबंध हो और प्रशिक्षुओं का शिक्षण वास्तविक कारखानों में ही हो। इसके साथ–साथ उन्हें कुछ व्यापक विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी जिसकी मदद से वे नई तकनीकों को समझ व अपना सकें।

उद्योगों के विकास के लिए केवल मज़दूरों की ही ज़रूरत नहीं है, बल्कि मैनेजर, इंजीनियर, लिपिक, लेखापाल, विपणन के विशेषज्ञ, जैसे लोगों की भी ज़रूरत होती है। इनके लिए शिक्षा की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है क्योंकि शिक्षा के द्वारा उच्च तकनीकी का प्रशिक्षण प्राप्त कर उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। इसी कारण उद्योगों की प्रगति हेतु उच्च शिक्षण संस्थान, विद्यालय तथा शोध संस्थानों की इग्लैण्ड व यूरोप में अभिजात्य वर्गों के लिए स्थापित किए गए। आधारभूत व्यावसायिक शिक्षा के लिए प्राथमिक, माध्यमिक विद्यालय गरीब के लिए खोले गए ताकि वह उद्योगों में कार्य कर सके। सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशों में इससे हटकर गरीब मजदूरों को भी उच्च शिक्षा तक पहुँचाने के लिए प्रयास किए और वे इसमें सफल भी रहे।

एक तरफ जहाँ औद्योगीकरण शिक्षा व्यवस्था में वर्ग विभेद का कारक बना, वहीं राष्ट्र राज्यों की स्थापना से सबके लिए समान शिक्षा का प्रदुर्भाव हुआ। राष्ट्रवाद की भावना ने समाज के संपूर्ण वर्गों एवं समुदायों के लिए समान शिक्षा प्रणाली लागू की। इसी की चर्चा आगे की जा रही है।

1.2 राष्ट्र–राज्य, राष्ट्रवाद एवं शिक्षा

राष्ट्र–राज्य और राष्ट्रवाद आधुनिक विश्व की प्रमुख विशेषताओं में से है। मध्यकाल में जो राज्य गठित हुए थे वे किसी राजघराने या सम्राट के वर्चस्व के आधार पर बने थे, जैसे– भारत में मुगल साम्राज्य या चीन में मांचू साम्राज्य या ईरान में सफवी या यूरोप में हैप्स्बर्ग साम्राज्य। राज्य इन राजघरानों के दबदबे और सैन्यबल पर आधारित थे और उनका प्रमुख उद्देश्य उन घरानों के वर्चस्व और वैभव को बढ़ाना था। इन राज्यों के निवासी इन राजाओं की प्रजा मात्र थे, जिनसे अपेक्षा यही थी कि वे राजाज्ञा को मानें व वफादारी दर्शाएँ। उनके बीच किसी प्रकार की भावनात्मक एकता या एकात्मता की अपेक्षा नहीं थी। इसके विपरीत आधुनिक राष्ट्र–राज्य नागरिकों की एकात्मता और सक्रिय भागीदारी और उनकी अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए गठित हुए हैं। नागरिकों के बीच साझेपन की भावना जगाने तथा उनके बीच एकात्मकता बनाए रखने में तथा उन्हें राष्ट्रीय ज़िम्मेदारियों को निभाने के लिए तैयार करने में

सार्वजनिक विद्यालयी शिक्षा का विशेष महत्त्व रहा है। जहाँ भी राष्ट्र–राज्य स्थापित हुए यह देखा गया कि वहाँ के राज्य ने सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली स्थापित करने का प्रयास किया और विद्यालय के माध्यम से राष्ट्रीय इतिहास, राष्ट्रीय संस्कृति, राष्ट्रीय भाषा, तथा राष्ट्रीय संविधान के प्रति निष्ठा को फैलाया।

प्रदर्श 1.10 फ्रांस की क्रांति



लेकिन राष्ट्र–राज्यों में बहुत विभिन्नताएँ हैं – कहीं राष्ट्र की अवधारणा अधिक उदार सोच पर आधारित है तो कहीं यह संकुचित सोच, कट्टरवाद और दूसरों के प्रति द्वेष से प्रेरित है। इस विभिन्नता का प्रभाव हम इन देशों की सार्वजनिक शिक्षा पर भी देख सकते हैं।

1.2.1 आधुनिक राष्ट्र राज्य का उदय और स्वरूप

15वीं सदी तक यूरोप में सामन्ती राज्य थे जिनकी सीमाएँ राजघरानों की सैन्यशक्ति के अनुरूप बदलती रहती थी। पूरे पश्चिमी यूरोप पर इसाई धर्मगुरु पोप का वर्चस्व था और राजनैतिक रूप से सारे राज्यों को 'पवित्र रोमन साम्राज्य' की अधीनता स्वीकार करनी पड़ती थी। 16वीं सदी में डच भाषा बोलने वाले हॉलैंड देश के लोग और अँग्रेज़ी बोलने वाले इंग्लैंड के राजा ने पोप और रोमन साम्राज्य से अपने आप को अलग कर लिया। वे चाहते थे कि उनके देश संबंधी निर्णय वे ही स्वतंत्र रूप से लें। इस विचार को उन देशों के लोगों का आम समर्थन मिला। इसे आधुनिक राष्ट्रवाद की शुरूआत माना जाता है। हॉलैंड में तो इसके साथ–साथ एक सीमित लोकतंत्र स्थापित हुआ और इंग्लैंड में राजा के निरंकुश शासन के विरुद्ध वहाँ की प्रजा ने विद्रोह कर दिया और वहाँ भी सत्रहवीं सदी के अंत तक सीमित लोकतंत्र और चुने गए प्रतिनिधियों द्वारा शासन की प्रणाली शुरू हो गई। इस तरह लोकतंत्र और राष्ट्रवाद, दोनों साथ–साथ विकसित हुए। यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि राष्ट्र–राज्य में नागरिकों की सक्रिय भूमिका निहित है।

जब 1789 ईस्वी में फ्रांस में राजा के खिलाफ क्रांति हुई तो उसे राजशाही के विरुद्ध राष्ट्र का विद्रोह माना गया। यहाँ राष्ट्र से तात्पर्य था संगठित व सक्रिय नागरिक जो अपने साझे हितों के लिए राज्य चलाना चाहते थे। इस तरह एक नया राष्ट्रवाद उभरा जिसने स्वतंत्रता, समानता, बंधुता और लोकतंत्र को अपना आधार बनाया। फ्रांसीसी क्रांति के प्रभाव से एक नई लहर ने पूरे यूरोप को अपनी चपेट में ले लिया और पुराने राजघरानों के विरुद्ध राष्ट्रवाद और राष्ट्र–राज्य का झंडा लहराया। राष्ट्रवाद को स्वतंत्रता और लोकतंत्र का पर्याय माना गया। इनसे पूर्व कुछ इसी तरह का राष्ट्रवाद संयुक्त राज्य अमेरिका में भी फैला था। जिसके फलस्वरूप 1776 ईस्वी में संयुक्त राज्य अमेरिका इंग्लैंड के औपनिवेशिक शासन के खिलाफ बगावत करके स्वतंत्र राष्ट्र–राज्य बना।

इंग्लैंड हो या फ्रांस, वहाँ राष्ट्र अपने आप नहीं बना था, बल्कि विभिन्न तरीकों से निर्मित किया गया था। जो देश राष्ट्र बन रहे थे उन सभी में अनगिनत छोटे समुदाय थे, जो अपनी विशिष्ट भाषा या संस्कृति या भौगोलिक विशेषता के कारण वृहद राष्ट्र से अपने आपको अलग महसूस करते थे। वास्तव में राष्ट्रीय भावना तो एक छोटे से बुद्धिजीवी समूह में ही उपस्थित थी। वे ही उस मानक राष्ट्रीय भाषा का उपयोग करते थे। उन्होंने कई तरह से प्रयास करके उन सभी समुदायों को राष्ट्रीय भाषा और पहचान के अंतर्गत लाने के प्रयास किए। अक्सर उन्हें नए उभर रहे उद्योगपतियों का समर्थन भी मिला, जो चाहते थे कि उन्हें अपने उत्पादन के लिए सुरक्षित बाजार मिले। वे चाहते थे कि छोटी रियासतों की जगह ऐसे राष्ट्र–राज्य स्थापित हों जिनके अंदर बेरोकटोक व्यापार हो सके और एक मुद्रा, एक मानक तौल और एक कर व्यवस्था हो। वे यह भी चाहते थे कि राष्ट्र–राज्य यह सुनिश्चित करें कि दूसरे देश के उत्पाद आसानी से आयात न हों, ताकि उनके अपने देश का बाजार सुरक्षित रहे। वे राष्ट्रीय बाजार का निर्माण करना

चाहते थे।

1848 ईस्वी के बाद यूरोप में रूढ़िवादियों का वर्चस्व बना और राष्ट्रवाद की एक संकुचित धारा उभरी। इस धारा ने राष्ट्र को किसी वैचारिक साझेपन की जगह भाषा, जातीयता या धर्म के आधार पर परिभाषित किया और अल्पसंख्यकों को उस राष्ट्र के बाहर कर दिया। कुछ हद तक इस तरह का संकुचित विचार पहले भी मौजूद था, जैसे फ्रांसीसी राष्ट्र में फ्रांसीसी भाषा को अधिक महत्त्व दिया जाता था लेकिन 19वीं सदी के अंत तक आते–आते संकुचित राष्ट्रवाद की भावना ने जड़ पकड़ ली। इसका एक भीषण परिणाम प्रथम विश्व युद्ध था और दूसरा था हिटलर का नाजीवाद था।

संयोगवश, जब 19वीं सदी के अंत में भारत में राष्ट्रवाद प्रारम्भ हुआ तब हमारे नेता यह पहचान गए कि अगर भारत में राष्ट्रवाद विकसित होना है, तो हमें संकुचित राष्ट्रवाद की जगह उदार राष्ट्रवाद को अपनाना चाहिए। उन्होंने समझा कि भारत जैसे विविधता वाले देश में कोई एक पहचान चाहे वह धर्म या भाषा या जातीयता हो, से राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता है। यूरोप की तरह भारत में भी राष्ट्रवाद एक छोटे बुद्धिजीवी वर्ग के बीच प्रारम्भ हुआ और धीरे–धीरे जनसामान्य के बीच फैला। यहाँ भी लोकतंत्र के आधार पर छोटी रियासतों के विलय की माँग उठी थी। भारत में भी राष्ट्रीय बाज़ार बनाने की बात हुई। आपको याद होगा कि हमारे राष्ट्रीय आंदोलन में स्वदेशी उत्पादनों के उपयोग और विदेशी चीज़ों के बहिष्कार की बात की गई थी। इन सबके लिए भारत में राष्ट्र–राज्य स्थापित करना ज़रूरी था, ताकि भारत के नागरिक अपने निर्णय स्वयं लें।

राष्ट्र क्या है?

राष्ट्र और राष्ट्रवाद की सुस्पष्ट और सर्वमान्य परिभाषा देना आसान नहीं है लेकिन हम कुछ सामान्य बातों से शुरू कर सकते हैं। परिवार, कुनबा, जाति, कबीला जैसे खून के रिश्तों पर आधारित समूहों का दायरा सीमित होता है, जबकि राष्ट्र एक वृहद समाज के लोगों को एक सूत्र में बाँधता है। उन्नीसवीं सदी में, जब यूरोप में राष्ट्रीय आंदोलन पुरज़ोर था, तब कई विद्वानों ने राष्ट्र को समझने का प्रयास किया। क्या राष्ट्र केवल भावनाओं पर आधारित है या उसका कोई वस्तुनिष्ठ आधार हो सकता है? जैसे, क्या इसका आधार धर्म, भौगोलिकता, जातीयता या भाषा हो सकता है?

फ्रांसिसी दार्शनिक **अर्नेस्ट रेनन** (1823–92) ने 1882 ईस्वी में अन्य लोगों द्वारा प्रस्तावित इस विचार की आलोचना की कि राष्ट्र समान भाषा, नस्ल, धर्म या क्षेत्र से बनता है। उसने कहा,

''अतीत में समान गौरव का होना, वर्तमान में एक समान इच्छा, संकल्प का होना, साथ मिलकर काम करने और आगे, ऐसे काम करने की इच्छा – एक जन समूह होने की यह सब ज़रूरी शर्तें हैं। अतः राष्ट्र एक बड़ी एवं व्यापक एकता है। उसका अस्तित्व रोज़ होने वाला जनमत – संग्रह है ..... । ...राष्ट्रों का होना एक अच्छी बात है, बल्कि यह एक ज़रूरत भी है। उनका होना स्वतंत्रता की गारंटी है... ।''

रेनन की इस परिभाषा में आप देख सकते हैं कि भावात्मक एकता को महत्त्व दिया गया है। अतीत के बारे में साझा गर्व, वर्तमान में साझा इरादा और एकता की भावना – उनके अनुसार इनके आधार पर राष्ट्रों का निर्माण होता है। वे यह भी कहते हैं कि राष्ट्र एक सतत जनमत संग्रह है – यानी राष्ट्र तब तक ही अस्तित्व में रह सकता है जब तक वहाँ के लोग चाहें। जैसे ही लोगों में यह साझेपन की भावना टूटती है राष्ट्र भी टूट जाता है। रेनन यह भी कहते हैं कि राष्ट्र का होना लोगों की स्वतंत्रता की गारंटी है। साझे विचारों से युक्त संगठित लोग किसी की तानाशाही या मनमानी नहीं सहेंगे और ना ही वे उसे चलने देंगे।

आप देख सकते हैं कि रेनन की परिभाषा में भावना व विचारों को प्रधानता दी गयी है। लेकिन कई लोग इससे सहमत नहीं थे और उनका मानना था कि राष्ट्रों का निर्माण विशेष समूहों द्वारा किया जाता है जिनकी समान भाषा,

जातीयता, धर्म या कोई और निश्चित सांस्कृतिक पहचान हो। उनका कहना था कि राष्ट्र ऐसी समानता के आधार पर ही बन सकते हैं, लेकिन पिछले सौ साल के इतिहास को देखें तो हम पाते हैं कि कई राष्ट्रों की भाषा, जाति, धर्म समान नहीं है, जैसे भारत, कनाडा आदि। आज विश्व के अधिकांश राष्ट्र ऐसे हैं जिनमें कोई एक भाषा या धर्म या नस्ल या जाति का वर्चस्व नहीं है।

वास्तव में राष्ट्र का निर्माण एक काल्पनिक समुदाय द्वारा होता है, जो उसके सदस्यों के प्रति विश्वास, आकांक्षाओं और कल्पनाओं के सहारे एक सूत्र मे बँधे होते हैं। यह विशेष मान्यताओं पर आधारित होता है। एक राष्ट्र का अस्तित्व तभी कायम रहता है जब उसके सदस्यों को यह विश्वास हो जाए कि वे एक दूसरे के साथ हैं। अक्सर वे यह भी प्रयास करते हैं कि उनके इस विश्वास को इतिहास का सहारा मिले, जैसे स्मृतियाँ, किंवदंतियाँ, ऐतिहासिक लेख–अभिलेख आदि। जैसे भारत के कई राष्ट्रवादियों ने कहा कि सभ्यता मूलक निरंतरता और एकता भारतीय राष्ट्र की बुनियाद है, उन्होंने देश की प्राचीन महान सभ्यता एवं संस्कृति और मध्यकालीन सांस्कृतिक विरासत तथा अन्य उपलब्धियों का साक्ष्य प्रस्तुत किया है।

रेनन के विचारों से राष्ट्रवाद के इतिहासकार एरिक हाब्सबाम प्रभावित तो हैं, लेकिन उसे एक अतिवादी परिभाषा मानते हैं। इसके अनुसार लोगों का कोई भी समूह अपने आप को राष्ट्र मान सकता है; चाहे वह व्यावहारिक हो या नहीं। उन्नीसवीं सदीं में यह काफी विवाद का विषय रहा कि अपने आप को राष्ट्र मानने के लिए न्यूनतम ज़रूरतें क्या हैं? यह माना गया कि एक टिकाऊ राष्ट्र–राज्य बनने के लिए एक बड़ी आबादी, विस्तृत भू–भाग, सुगठित राज्य, विकसित अर्थव्यवस्था, आदि होना चाहिए और इनके होने पर भावात्मक एकता और साझे उद्देश्य और सक्रिय नागरिक हों तो राष्ट्र–राज्य का गठन संभव है।

जहाँ तक हमारे देश भारत का संबंध है, विस्तृत भू–भाग का भारतीय संस्कृति से विशेष संबंध रहा है। आज जो संस्कृति भारतीय नाम से अभिहित है, भौगोलिक दृष्टि से भारत की सृदृढ़ इकाई रही है। पुराणों तथा स्मृतियों में भारत की भौगोलिक सीमाओं के अनेकशः कथन हैं। विष्णु पुराण ने प्रकृति प्रदत्त इस भौगोलिक इकाई का इस प्रकार वर्णन किया है–

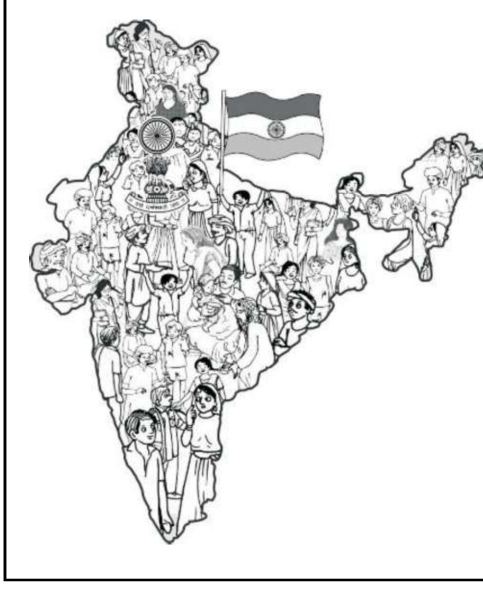
> उत्तरं यत्समुद्रस्य, हिमा द्रेश्चैव दक्षिणम्।
> वर्ष तद् भारतं नामा, भारती यत्र संतति।
>
> (विष्णु पुराण 2/3/1)

राष्ट्र–राज्य के तीन तत्त्व

1. संप्रभुता (Sovereignty) – संप्रभुता का अर्थ है राज्य सत्ता का किसी क्षेत्र विशेष के संपूर्ण साधनों एवं लोगों पर शासन करने का सर्वेसर्वा अधिकार होना। संपूर्ण नीति–निर्धारण सरकार वैधानिक विधि द्वारा स्थापित संस्था के जरिए ही करती है तथा उसका क्रियान्वयन भी अधीनस्थ प्रशासन द्वारा ही पूर्ण होता है। किसी बाहरी सत्ता का हस्ताक्षेप न होना ही संप्रभुता है, जो हर राष्ट्र–राज्य की पहली विशेषता है।

2. नागरिकता (Citizenship) – किसी भी राजनैतिक प्रणाली में निर्धारित सीमाओं के अंतर्गत रहने वाले लोगों को नागरिक का दर्जा प्राप्त होता है, जिसमें उस राष्ट्र के सदस्य होने के साथ ही उनके अधिकार एवं कर्तव्य भी परिभाषित होते हैं। वे

प्रदर्श 1.11 राष्ट्र राज्य के तीन तत्व
संप्रभुता, नागरिकता एवं राष्ट्रवादी भावना



मात्र प्रजा या जनता की श्रेणी में नहीं होते, बल्कि सक्रिय नागरिक होते हैं, जो समय–समय पर मताधिकार का प्रयोग करते हैं और सत्ता का गठन करते हैं, राष्ट्रीय नीति संबंधित बहसों में सम्मिलित होते हैं तथा अपने नागरिक अधिकारों का उपयोग एवं कर्तव्यों का निर्वहन भी करते हैं। उनकी अनुमति और सहमति से ही राष्ट्र–राज्य संचालित हो सकता है।

3. राष्ट्रवादी भावना (Nationalism) – राष्ट्र–राज्यों का अस्तित्व उनके नागरिकों में राष्ट्रवाद की भावना के विकास से भी जुड़ा हुआ है। राष्ट्रवाद प्रतीकों, श्रद्धा और विश्वास का एक ऐसा संकुल है जो लोगों को अपने राजनैतिक समुदाय का अभिन्न अंग बनाए रखता है। लोग गर्व से अपने–अपने राष्ट्र के आधार पर भारतीय, अमेरिकी, फ्रांसीसी या जापानी कहलाते हैं, क्योंकि वे अपने राष्ट्र के प्रतीकों के प्रति श्रद्धावान हैं।

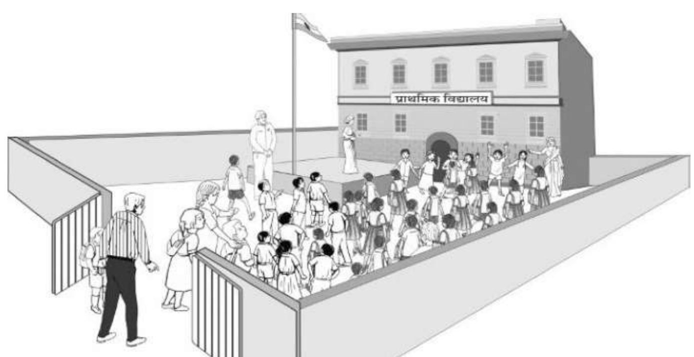
प्रश्न

1. राष्ट्र–राज्य किसे कहते हैं ?
2. रेनन की समझ के अनुसार एक राष्ट्र की विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण दें। उसके मतानुसार राष्ट्र क्यों महत्त्वपूर्ण है ?
3. भारत एक राष्ट्र–राज्य है, इसके प्रतीक चिह्न बताइए।

1.2.2 राष्ट्र–राज्यों के निर्माण में सार्वजनिक शिक्षा की भूमिका

हमने ऊपर देखा कि राष्ट्र सप्रयास निर्मित किया जाता है और हमने यह भी देखा कि अक्सर राष्ट्र–राज्यों के बनने के बाद भी उसके अधिकांश निवासी उस राष्ट्रीय भावना से अनभिज्ञ रहे। उदाहरण के लिए फ्रांस के अधिकांश किसान क्रांतिकारी परिवर्तनों के बावजूद फ्रांसीसी भाषा या फ्रांसीसी राष्ट्रवादी सोच से अनभिज्ञ रहे। इसी तरह 1870 ईस्वी के दशक में इटली एक राष्ट्र–राज्य के रूप में बन तो गया, लेकिन वहाँ के अधिकांश निवासी न कोई साझा भाषा बोलते थे, न ही वे अपने को इतालवी राष्ट्र से जोड़ पा रहे थे। ब्रिटेन में भी वेल्स, स्कॉटलैंड, आयरलैंड आदि क्षेत्रीय राष्ट्रवाद का सामना करना पड़ा। अतः सारे नवगठित राष्ट्र–राज्यों के सामने यह चुनौती थी कि वे अपने निवासियों को राष्ट्र के नागरिक कैसे बनाएँ ? इसका सभी राष्ट्र–राज्यों ने जो कारगर तरीका निकाला वह था सार्वभौमिक और सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा। देश के सारे भावी नागरिकों को विद्यालय में लाकर उन्हें अपने देश के राष्ट्रवादी सोच से ओत–प्रोत करना और राष्ट्रीय भावनाओं से समाजीकरण करना यह राष्ट्र–राज्यों की एक महत्त्वपूर्ण कार्य योजना बन गया।

प्रदर्श 1.12 सार्वजनिक विद्यालय के माध्यम से राष्ट्रवाद की शिक्षा



पिछले 150 वर्षों में जहाँ भी राष्ट्र–राज्य स्थापित हुआ, वहाँ राज्य के प्रयास से सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली स्थापित की गई और यह प्रयास किया गया कि देश का हर बालक और बालिका विद्यालय में पढ़े और शिक्षा प्राप्त करें। इस काम के लिए राजकीय आय का एक बड़ा हिस्सा शिक्षा पर खर्च किया जाने लगा। जहाँ पहले शिक्षा निजी प्रयास से

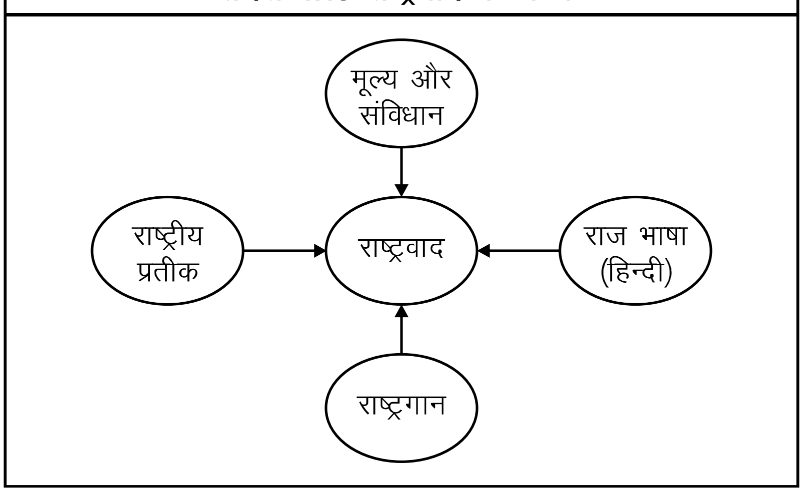
अथवा धार्मिक संस्थाओं में होती थी, अब वह राजकीय पहल और हस्तक्षेप के दायरे में लाई गई। इसके दो प्रमुख उद्देश्य थे। पहला यह है कि एक जैसी शिक्षा पाकर राष्ट्र के सभी नागरिकों में एक जैसी मानसिकता और एकात्मता बने। इसका दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य राष्ट्र को अस्तित्व में लाना था। राष्ट्र में समान भाषा, संस्कृति, पहचान और राष्ट्रीय मूल्यों को स्थापित करने में विद्यालय की भूमिका अहम रही है।

सार्वजनिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय या सामुदायिक भाषा की जगह राष्ट्रीय भाषा बनी। कई जगह इसका विरोध भी हुआ और दोनों भाषाओं मे शिक्षा देने की बात हुई। परिणामस्वरूप विद्यालय के माध्यम से पूरे देश में एक मानकीकृत भाषा का प्रसार हो पाया। उदाहरणस्वरूप जिसे आज फ्रांसीसी भाषा कहा जाता है वह 1800 ईस्वी में केवल वहाँ की राजधानी पेरिस के आस–पास बोली जाती थी लेकिन अगले 50–60 वर्षों में यह भाषा पूरे फ्रांस देश में बोली जाने वाली भाषा बन गई – केवल इसलिए क्योंकि इसे सारे विद्यालयों में सिखाया जाता था और यह प्रशासनिक भाषा भी थी।

एक राष्ट्रभाषा स्थापित करने की यह नीति हर जगह अपनाई नहीं जा सकती थी। उदाहरण के लिए स्वतंत्रता के बाद भारत में भाषा नीति के बारे में बहुत बहस हुई, संविधान सभा और उसके बाहर भी और सड़कों पर आंदोलनों हुए। अंत में यही तय हुआ कि भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र में किसी एक भाषा को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा नहीं दिया जा सकता है। सभी स्थानीय भाषाओं को सुदृढ़ करते हुए हिन्दी व अँग्रेज़ी दोनों को राष्ट्रीय संप्रेषण के लिए उपयोग करने की नीति बनी। यह माना गया कि इस बहुभाषी नीति से हमारी राष्ट्रीय एकता को बल मिलेगा, न कि पूरे देश पर एक भाषा थोपने से।

विद्यालयों में राष्ट्रीय भाषा के अलावा अन्य राष्ट्रीय पहचान को भी सम्मिलित किया गया। जैसे, राष्ट्र का इतिहास, खासकर उसके बनने का इतिहास, राष्ट्र का नक्शा और भूगोल, राष्ट्रीय उद्देश्य, मूल्य और संविधान और राष्ट्रीय चिह्नों जैसे राष्ट्रीय ध्वज, प्रतीक, गीत आदि से पहचान प्राथमिक शिक्षा के माध्यम से दी जाने लगी। कई इतिहासकार और राजनीति शास्त्र के विद्वान यह मानते हैं कि इन विषयों के माध्यम से वास्तव में राष्ट्र को अस्तित्व में लाया गया। इस तरह, एक ओर राष्ट्र राज्य ने सार्वजनिक शिक्षा को फैलाया और दूसरी ओर सार्वजनिक शिक्षा ने नागरिकों को राष्ट्र के लिए तैयार किया, यहाँ तक कि राष्ट्र को उसकी पहचान दी।

प्रदर्श 1.13 राष्ट्रवाद के घटक



विश्व के सभी देशों में राष्ट्रवाद की भावना एवं राष्ट्रवाद विकसित करने में सार्वजनिक विद्यालयों का बहुत अधिक योगदान रहा है। बालक का जब विद्यालय में प्रवेश होता है, तब ही से उसका अपने राष्ट्र के प्रतीक चिह्नों से परिचय करवाया जाता है, जैसे – राष्ट्रीय ध्वज आदि, प्रतिदिन राष्ट्रगान–राष्ट्रगीत का उच्चारण करवाने से बच्चे उस के साथ अपनापन महसूस करने लगते हैं। राष्ट्रहित तथा अपने समुदाय एवं संस्कृति के लोगों की गौरवमयी स्थिति, इतिहास आदि की जानकारी जब विद्यालयों के माध्यम से दी जाती है, तो वह कारगर रूप से सभी को प्राप्त होती है। बालक–बालिकाओं के चरित्र निर्माण में भी राष्ट्रीय आदर्शों, नैतिकताओं की शिक्षा मिलने से अपने राष्ट्र की अस्मिता के बारे में जागरूकता बढ़ती है। गत दो शताब्दियों से अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन आदि देशों में भी ऐसा हुआ है। भारत में आज़ादी के बाद राष्ट्रीयता की शिक्षा राजकीय नीति के आधार पर ही दी जाने लगी।

राष्ट्र राज्यों का अस्तित्व और निरंतरता लोकतंत्र के साथ जुड़ी हुई है, क्योंकि कोई राष्ट्र राज्य तभी सबल और सक्षम हो सकेगा जब कि वह लोकतंत्र पर आधारित रहे। अब हम इसी लोकतंत्र की चर्चा करेंगे।

गतिविधि

प्राथमिक स्तर पर राष्ट्रवाद की भावना को जागृत करने वाले चिह्नों के चित्रों को स्क्रैप बुक में संकलित कीजिए।

1.3 लोकतंत्र एवं शिक्षा

औद्योगीकरण और राष्ट्र–राज्यों की स्थापना के साथ लोकतंत्र का भी विकास हुआ। लोकतंत्र के प्रमुख सिद्धांत फ्रांसीसी क्रांति में, विशेषकर उसमें पारित मानव अधिकार विधेयक में अंकित हैं। इसमें यह निहित धारणा है कि स्वतंत्र व्यक्ति मिलकर समाज और राष्ट्र को अपने हितों के लिए गठित करते हैं। समाज और राज्य का संचालन न केवल लोगों के हित में हो, बल्कि लोगों के द्वारा ही हो, और यह भी कि इस व्यवस्था में हर व्यक्ति के निजी अधिकार सुनिश्चित हों। इसी सिद्धांत को अमेरिका के अब्राहम लिंकन का प्रसिद्ध कथन 'लोगों का, लोगों के लिए, लोगों द्वारा शासन' में स्पष्ट किया गया है।

अगर शासन के कामकाज में सभी लोगों को भाग लेना है और अपनी भूमिका निभानी है, तो सभी नागरिकों का शिक्षित होना भी ज़रूरी है। आधुनिक शासन इतना जटिल है और नीतियों का प्रभाव इतने भिन्न तरह के लोगों पर पड़ता है कि हर नागरिक को सोच समझकर निर्णय लेना जरूरी है। ऐसे में नागरिकों के शिक्षित होना लोकतांत्रिक प्रक्रिया में अपेक्षित है।

1.3.1 लोकतंत्र का सिद्धांत और नागरिकों की भूमिका व अधिकार

मध्ययुग में शासन प्रणाली मूल रूप में राजशाही पर आधारित थी, जिसमें राजाओं व सामंतों का बोलबाला था। आम लोगों का न कोई व्यक्तिगत अधिकार था और न ही शासन में उनकी कोई भूमिका थी। राजा कानून बनाते थे और लोगों को उनका पालन करना होता था। आधुनिक युग में राजशाही राज्य तो बहुत कम बचे हैं, मगर तानाशाही, सैनिक शासन, एक पार्टी शासन आदि आज भी प्रबल हैं लेकिन पूरे विश्व में लोकतंत्र को आदर्श माना जा रहा है और धीरे–धीरे हर देश में लोकतांत्रिक प्रणाली लागू हो रही है।

वर्तमान लोकतांत्रिक शासन प्रणालियों की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं:–

1. **लोगों द्वारा शासकों का चुनाव** – लोकतंत्र की एक प्रारंभिक परिभाषा ऐसी हो सकती है कि *'लोकतंत्र शासन का ऐसा रूप है जिसमें शासकों का चुनाव लोग करते हैं। लोकतंत्र में अंतिम निर्णय लेने की शक्ति लोगों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के पास होती है।'* यह एक उपयोगी शुरूआत है। यह परिभाषा बहुत स्पष्ट ढंग से लोकतांत्रिक और गैर लोकतांत्रिक शासन व्यवस्थाओं में अंतर कर देती है। जहाँ के शासक बिना चुनाव के या सैनिक शक्ति या किसी विशेष वंश में पैदा होने के कारण सत्ता में रहते हैं, उन्हें हम लाकतांत्रिक नहीं मान सकते

लेकिन चुनाव होना ही पर्याप्त नहीं है। समकालीन दुनिया की हर सरकार, चाहे वह लोकतांत्रिक हो या न हो, खुद को लोकतांत्रिक कहलाना चाहती हैं। इसलिए हमें वास्तविक लोकतंत्र और दिखावटी लोकतंत्र वाली सरकारों के बीच सावधानीपूर्वक फर्क करना होगा। अक्सर कई देशों में चुनाव होते हैं और जन प्रतिनिधियों की सभाएँ भी होती है लेकिन अंतिम निर्णय किसी सेनाध्यक्ष या वंशानुगत राजा के पास होता है। ऐसी व्यवस्था को क्या हम लोकतांत्रिक कह सकते हैं ?

यह सवाल उठता है कि किस तरह के चुनाव को लोकतांत्रिक चुनाव कहते हैं? कौन लोग शासकों का चुनाव कर सकते हैं या खुद शासक चुने जा सकते हैं? क्या इसमें प्रत्येक नागरिक का बराबरी की हैसियत से भाग लेना ज़रूरी है ? क्या चुने हुए शासक लोकतंत्र में अपनी मर्ज़ी से सब कुछ कर सकते हैं या लोकतांत्रिक सरकार के लिए कुछ लक्ष्मण रेखाओं में बँधकर काम करना ज़रूरी है? क्या लोकतांत्रिक व्यवस्था को नागरिकों के कुछ अधिकारों का आदर करना चाहिए? अब हम दूसरी विशेषता पर चर्चा करते हैं।

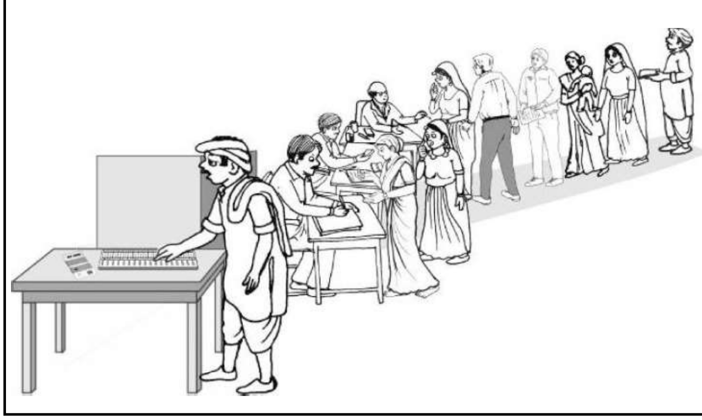
2. **निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनाव** – लोकतंत्र निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनावों पर आधारित होता है। इसके लिए ज़रूरी है कि लोगों के पास चुनने के लिए विकल्प उपलब्ध हो – यानी एक से अधिक पार्टियाँ हों जिनकी नीतियों में अंतर हो। लोकतंत्र के लिए सिर्फ चुनाव कराना ही पर्याप्त नहीं होता। चुनाव में एक से ज्यादा असली राजनैतिक विकल्पों के बीच चुनने की स्थिति भी होनी चाहिए। लोगों के पास यह विकल्प रहना चाहिए कि वे चाहे तो शासक दल को गद्दी से उतार दें। इस प्रकार, लोकतंत्र निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनावों पर आधारित होना चाहिए ताकि लोगों के लिए शासक की जीत–हार के समान अवसर हों।

गतिविधि

- मान लीजिए कि किसी देश में किसी पार्टी का ऐसा प्रभाव है कि वह दशकों से हर चुनाव जीत जाती है तो क्या आप मानेंगे कि वहां लोकतंत्र मजबूत है? हाँ तो क्यों, नही ंतो क्यों, परिचर्चा करें।
- आप लोकतांत्रिक व्यवस्था में नागरिकों के लिए कौन–कौन से अधिकारों को आवश्यक मानते हैं, सूची बनाएँ?

3. **सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार** – लोकतंत्र में देश के प्रत्येक वयस्क नागरिक को स्वतंत्र रूप से अपने मत देने का अधिकार है। स्वतंत्र मत का मूल्य प्रत्येक वयस्क नागरिक के लिए एक समान होता है। राज्य का दायित्व है स्वतंत्रतापूर्वक मत देने के नागरिक के अधिकार की रक्षा हों, ताकि भयमुक्त होकर मतदान प्रणाली में अपनी जनभागीदारी निभाएँ।

प्रदर्श 1.14 स्वतंत्र व निष्पक्ष मतदान प्रक्रिया



यह प्रक्रिया बिना जाति, धर्म, वर्ग, लिंग व सामाजिक भेदभाव से परे स्वतंत्रता पूर्वक नागरिक द्वारा अपनाई जाती है।

गतिविधि

- पता कीजिए कि किन देशों में महिलाओं या अल्पसंख्यकों को मताधिकार नहीं है।
- क्या आप इस बात से सहमत हैं कि शिक्षित और अशिक्षित लोगों को बराबर मताधिकार हो। इससे क्या विसंगतियाँ हो सकती हैं ? अगर बराबर मताधिकार न हो तो क्या विसंगतियाँ हो सकती है ? चर्चा करें

4. **शासन की जवाबदेही** – सबसे अहम् , चुने हुए लोगों की सभा होती है, जिसके समक्ष शासन के पदाधिकारियों (मंत्री आदि) को अपने काम का ब्यौरा देना होता है और उनकी स्वीकृति लेनी होती है। दूसरा, हर नागरिक को यह अधिकार होता है कि वह शासन के काम के बारे में सूचना प्राप्त कर सके और शासन बाध्य होता है उस जानकारी को उपलब्ध कराने के लिए। तीसरा, निश्चित समय सीमा के बाद फिर से चुनाव होंगे जब मंत्रियों को फिर से जनादेश लेने के लिए लोगों के सामने आना होता है। लोग तब उनसे सवाल–जवाब कर सकते हैं और संतुष्ट न होने पर उन्हें चुनाव में नकार सकते हैं। एक स्वस्थ लोकतंत्र में विधायिका में चर्चा, नागरिकों को सूचना का अधिकार तथा निश्चित समयावधि में चुनाव होना आवश्यक है।
5. **सार्वजनिक जीवन में जनता की भागीदारी** – सामान्यतः लोकतंत्र का मतलब केवल चुनाव से लगाया जाता है। लेकिन लोकतंत्र तभी वास्तविक हो सकता है जब आम लोग नीतियों के बनने में तथा उनके क्रियान्वयन में भी भागीदार रहें। यह तभी सम्भव है जब हर महत्त्वपूर्ण नीति और कानून व्यापक सार्वजनिक बहस और सलाह–मशविरे के बाद बने, जिसमें आम लोग स्वतंत्र मंचों के माध्यम से अपनी अपनी राय व जरूरतों को व्यक्त कर पाएँ और उन सबका सामंजस्य बनाते हुए कानून बने। भारत में लोकपाल विधेयक के संदर्भ में इस तरह की जन भागीदारी कुछ हद तक देखने को मिली है।
6. **नागरिक अधिकार व स्वतंत्रता का महत्त्व** – शासकों के लिए बार–बार जनादेश पाना लोकतंत्र की एक जरूरत है पर इतना ही पर्याप्त नहीं है। लोकप्रिय नेता भी अलोकतांत्रिक हो सकते हैं। लोकप्रिय नेता भी तानाशाह हो सकते हैं। अगर हम लोकतंत्र को परखना चाहते हैं तो चुनावों पर नज़र डालना ज़रूरी है। पर उतना ही ज़रूरी है कि चुनाव के पहले और बाद की स्थितियों पर भी नज़र ड़ाली जाए। चुनाव से पहले सत्ता पक्ष के विरोधी समूहों के कामकाज समेत सभी तरह की राजनैतिक गतिविधियों के लिए पर्याप्त गुंजाइश रहनी चाहिए। इसके लिए ज़रूरी है कि सरकार नागरिकों के कुछ बुनियादी अधिकारों का आदर करे। उनको सोचने की, अपनी राय बनाने की सार्वजनिक रूप से अपने विचार व्यक्त करने की, संगठन बनाने की, विरोध करने और अन्य राजनैतिक गतिविधियाँ करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। कानून की नज़र में सभी लोगों की समानता होनी चाहिए। इन अधिकारों की रक्षा स्वतंत्र न्यायपालिका को करनी चाहिए, जिसके आदेशों का पालन सब लोग करते हों।

   अक्सर सरकारें लोगों की स्वतंत्रता तथा जानकारी के अधिकारों पर पाबंदी लगा देती हैं। कई देशों में शासकीय निर्णय गुप्त रूप से लिए जाते हैं तथा सरकार उन पर सार्वजनिक चर्चा व बहस पर रोक लगा देती है। पत्र–पत्रिकाओं तथा पुस्तकों पर सेंसरशिप लगाकर विचारों के खुले आदान–प्रदान पर रोक लगा दी जाती है और लोगों से स्वतंत्र संगठन बनाने का अधिकार भी छीन लिया जाता है। उदाहरण के लिए, सोवियत संघ में, हालाँकि सबको मताधिकार प्राप्त था तथा निश्चित समयावधि पर चुनाव भी होते थे लेकिन स्वतंत्र पत्रिका, सूचना तथा संगठन के अधिकार नहीं थे, जिसके कारण वहाँ शासन करने वाली पार्टी के विकल्प में कोई अन्य पार्टी उभर ही नहीं सकी।

गतिविधि

विश्व इतिहास में लोकप्रिय तानाशाहों की सूची बनाई तथा उनके कारण उन समाजों को बहुत अवांछनीय परिणाम भुगतने पड़े उसके बारे में लिखे ?

7. **समता और लोकतंत्र** – लोकतंत्र का यह सिद्धांत कि हरेक व्यक्ति के मत का समान वज़न हो, वास्तव में तभी संभव है जब लोगों के बीच हैसियत और संसाधन की असमानता कम हो। अपने घरों में ही देखा जाए तो अक्सर पाया जाता है कि कहीं–कहीं घर के पुरुष मुखिया ही निर्णय लेते हैं कि घर के सारे लोग किसे वोट देंगे। घर के अन्दर पुरुष और महिलाओं की तथा पिता और पुत्रों की असमान परिस्थिति का असर चुनावों में भी होता है। यह अक्सर देखा जा सकता है कि कुछ लोग दूसरों की जीविका के साधनों पर अधिकार जमाए बैठे हैं (जैसे ज़मींदार, कारखानों के मालिक आदि)। जो लोग उन पर आश्रित हैं वे किस हद तक स्वतंत्र रूप में चुनावों में वोट डाल सकते हैं। अतः स्वस्थ लोकतंत्र तब ही पनप सकता है, जब लोगों के बीच ज़्यादा से ज्यादा समानता हो।

- सामाजिक असमानता (जेंडर, जाति, गरीबी, गुंडागर्दी आदि) के कारण प्रभावित चुनावों की चर्चा करें।
- ऐसे चुनावों की भी चर्चा करें जहाँ ऐसी असमानताओं के बावजूद लोगों ने स्वतंत्र मतदान किया हो।

8. **कानून और अल्पमतों की रक्षा** – एक लोकतांत्रिक सरकार सिर्फ इस कारण से मनमानी नहीं कर सकती कि उसने चुनाव जीता है। उसे भी कुछ बुनियादी तौर–तरीकों व स्थापित कानूनों का पालन करना होता है। शासन का हर प्रमुख फैसला लंबे विचार–विमर्श के बाद लेना होता है। हर पदाधिकारी को उस पद के साथ जुड़े अधिकार और जिम्मेदारियाँ संविधान द्वारा दी जाती हैं। ये सभी न सिर्फ जनता के प्रति उत्तरदायी हैं, बल्कि अन्य स्वतंत्र अधिकारियों के प्रति भी उनकी जवाबदेही होती है।

इनमें प्रमुख है न्यायालय, जिसकी स्वतंत्रता का सम्मान करना और उसके आदेशों का पालन करना शासन का दायित्व होता है। चुनी गई सरकार का एक और दायित्व है अल्पमत वाले समूहों को दी गई कुछ गारंटियों का आदर। जो लोग आज अल्पमत में हैं उन्हें अपने विचारों को खुलकर प्रसारित करने तथा लोगों को मनवाने का अवसर हो तभी देश में विकल्प की सम्भावनाएँ बनेंगी। इस प्रकार हम लोकतंत्र की एक और विशेषता को रेखांकित कर सकते हैं – एक लोकतांत्रिक सरकार संवैधानिक कानूनों और नागरिक अधिकारों द्वारा खींची लक्ष्मण रेखाओं के भीतर ही काम करती है।

आइए, अब तक हुई चर्चा को सारांश में समेटें।

प्रदर्श 1.15 नागरिक की स्वतंत्रता का रक्षक न्यायालय



हमने लोकतंत्र की इस सरल–सी परिभाषा से बात शुरू की थी कि लोकतंत्र सरकार का एक ऐसा रूप है, जिसमें शासकों का चुनाव लोग करते हैं। हमने पाया कि जब तक हम इसके कुछ प्रमुख शब्दों के बारे में और स्पष्ट न हो जाएँ, यह परिभाषा पर्याप्त नहीं है। अनेक उदाहरणों के जरिये हमने शासन के एक तरीके के रूप में लोकतंत्र की चार विशेषताओं को रेखांकित किया। इनके अनुसार लोकतंत्र शासन का एक ऐसा रूप है जिसमें :–

- लोगों द्वारा चुने गए शासक ही सारे प्रमुख फैसले करते हैं;
- चुनाव लोगों के लिए निष्पक्ष अवसर और इतने विकल्प उपलब्ध कराता है कि वे चाहें तो मौजूदा शासकों को बदल सकते हैं;
- यह विकल्प और अवसर सभी लोगों को समान रूप से उपलब्ध हों; और
- चुनाव से बनी सरकार संविधान द्वारा तय बुनियादी कानूनों और नागरिक अधिकारों के दायरे के तहत काम करती है।

लोकतंत्र एक प्रक्रिया के रूप में

किसी संविधान या कानून के बनने से लोकतंत्र बहाल नहीं हो जाता है। आज दुनिया का कोई देश ऐसा नहीं है, जिसे हम परिपूर्ण लोकतंत्र या सच्चे मायने में लोकतंत्र कह सकते हैं लेकिन हर देश इस आदर्श की ओर अग्रसर है और यह लंबे और काफी जटिल संघर्ष और प्रयोगों की मदद से ही आगे बढ़ता है। यह इसलिए कि भीषण आर्थिक असमानता, भेदभाव, सत्ताधारियों का दबदबा, बेलगाम शासन आदि के चलते सही लोकतंत्र की स्थापना आसान नहीं है। यही नहीं, लोकतंत्र के समक्ष कई ऐसी चुनौतियाँ हैं जिनका आसान उत्तर उपलब्ध नहीं है। जब तक सभी लोग लोकतांत्रिक मूल्यों को स्वीकार नहीं करते, तब तक ऐसा भी हो सकता है कि चुनाव के माध्यम से अलोकतांत्रिक सरकारें स्थापित हों; जैसे कि जर्मनी में हिटलर के साथ हुआ था। अमेरिका व ब्रिटेन जैसे देशों में भी लोगों को विनाशकारी युद्धों के लिए उकसाया जा सकता है। इस कारण हमेशा लोकतंत्र को एक सतत विकसित होने वाली प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए और हर दौर में उसके मजबूत और कमज़ोर पक्षों को पहचानना ज़रूरी है।

गतिविधि

पिछले पचास साल के विश्व इतिहास से ऐसे उदाहरण खोजिए जिसमें आपको लगता है कि लोकतांत्रिक तरीकों से चुने गए नेता द्वारा मानवता विरोधी कार्य किए। इन पर कक्षा में चर्चा कीजिए कि यह कैसे संभव हुआ।

नागरिकों की भूमिका व अधिकार – लोकतंत्र की सफलता केवल राजनीतिक कारणों से नहीं, बल्कि इसके सिद्धांतों को मानवीय जीवन में प्रयोग से है।

विश्व में सबसे पहले इंग्लैंड में नागरिकता की धारणा तीन चरणों में विकसित हुई। अठारहवीं शताब्दी मे सबसे पहले व्यक्तिगत स्वतन्त्रता जिसमें अभिव्यक्ति, विचार, धर्म निजी सम्पत्ति एवं सही कानूनी न्याय के शासन के अधिकार प्राप्त किए गए। उन्नीसवीं शताब्दी में दूसरे चरण में राजनैतिक अधिकार – जिसमें मत देने का अधिकार, सत्ता के पद का अधिकार तथा राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार शामिल है। तीसरे चरण में सामाजिक अधिकार बीसवीं सदी के प्रारम्भ में सामने आए, जिनमें विविध कल्याणकारी योजनाओं के तहत व्यक्तियों को शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, पेंशन एवं अन्य सुविधाओं के आधार पर अधिकार मिले। सामाजिक संगठन की शक्ति को बढाएँ तथा नवाचारों को स्वीकार करें। इस प्रकार नागरिकों को अधिकारों की पूर्णता मिलने में तीन शताब्दियाँ बीत गईं और जिसमें लैंगिक समानता, आवास सुविधा, शिक्षा सुविधा आदि के अधिकार प्राप्त होना शेष हैं। अधिकांश लोकतांत्रिक

भारतीय लोकतंत्र में मुख्यतः चार सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं, जो इस प्रकार है – स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व तथा न्याय। भारत के संविधान की उद्देशिका में उल्लेखित है कि–

लोकतंत्र इन मूल सिद्धांतों के अतिरिक्त व्यक्ति की प्रतिष्ठा संबंधी आदर्शों, सहयोग व सहभागिता को सम्मिलित करता है। इसलिए लोकतंत्र में नागरिकों की स्वतंत्रता व अधिकार सुनिश्चित हो, नागरिकों के बीच हैसियत और अवसर की समानता हो, सभी नागरिकों में आपसी सहयोग और विविधता का सम्मान करने की भावना हो और वे सार्वजनिक जीवन में उत्तरदायित्व लेने के लिए तैयार हों।

प्रदर्श 1.16 संविधान की उद्देशिका / प्रस्तावना



भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसंपन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता

प्राप्त करने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26.11.1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हजार छः विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

शासन व्यवस्थाओं में नागरिकों के अधिकार संविधान में लिखित रूप में दर्ज है।

लगभग समानांतर ही संयुक्त राज्य अमेरिका में भी लोकतंत्र और सक्रिय नागरिकों का विकास हुआ। जहाँ ब्रिटेन के समाज में असमानता व्याप्त थी अमेरिका में लोकतंत्र अपेक्षाकृत समतामूलक समाज पर आधारित था जिसमें लगभग सभी लोग मध्यम किसान या छोटे उद्यमी थे। वे अपनी समानता व स्वतंत्रता की रक्षा के लिए बहुत तत्पर थे। इसके लिए लोकतंत्र को वे विशेष महत्त्व देते थे। अतः प्रारम्भ से ही अमेरिका में लोकतांत्रिक नागरिक अधिकार और समान शिक्षा पर ज़ोर था।

अधिकारों का प्रयोग करते समय प्रत्येक नागरिक को अपनी भूमिका का आभास होना चाहिए तभी वह लोकतंत्र को सफल बना सकता है। एक नागरिक होने के नाते–वह समाज के प्रत्येक व्यक्ति का सम्मान व आदर करे तथा अन्य व्यक्तियों के विकास मार्ग में बाधाएँ उपस्थित न करें, बल्कि उसके विकास में पूर्ण सहयोग प्रदान करें। लोकतंत्र का मूल मंत्र है 'जियो और जीने दो'। इसके लिए हमें दूसरे नागरिकों के विचारों, यदि वे उचित हैं, तो स्वीकार करना सीखें तथा परिवर्तन लोकतंत्र का आवश्यक गुण है। सार्वजनिक शिक्षा का दायित्व है कि वह ऐसे लोगों को तैयार करने में मदद करे। आप अगली इकाई में देखेंगे कि किस तरह ब्रिटेन व अमेरिका में लोकतंत्र की स्थापना के साथ साथ सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था का भी विस्तार हुआ और यह माना गया कि बिना शिक्षा के लोकतंत्र सफल नहीं हो सकता है।

प्रदर्श 1.17 कल्याणकारी योजना–स्वास्थ्य सेवा



गतिविधि

स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव के लिए नागरिक अधिकारों की ज़रूरत होती है ? आपकी सहमति/असहमति के कारणों की सूची बनाइए।

1.3.2 लोकतंत्र में शिक्षा

लोकतंत्र में शिक्षा की विशेषताएँ

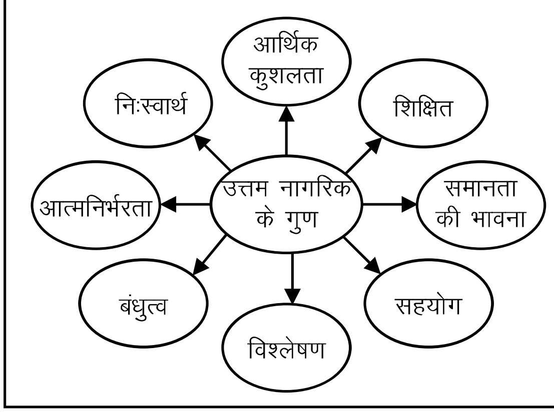
1. जनता की सहभागिता को सुनिश्चित करना।
2. संविधान के मूल्यों को आत्मसात करना।
3. संवेदनशील और सुसस्कृत नागरिक बनाना।
4. विवेकपूर्ण निर्णय में सहायक होना।
5. शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराना।
6. आत्मनिर्भर बनाना।

लोकतंत्र की सफलता सरकार पर नियंत्रण, सरकार की जवाबदेही और जनता की सहभागिता को सुनिश्चित करना, आदि के लिए जनता का जागरूक रहना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। हर नागरिक से अपेक्षा है कि वे सार्वजनिक क्रियाकलापों में सक्रिय भाग लें और शासन के क्रियाकलापों पर निगरानी रखें और देश के संविधान के मूल्यों को आत्मसात किए हों और स्थानीय से देश–विदेश की बातों की समझ विकसित करें....। ऐसे में औपचारिक शिक्षा के महत्त्व को कमतर नहीं आँका जा सकता है। किसी भी लोकतांत्रिक देश के लिए यह महत्त्वपूर्ण सवाल है कि शिक्षा और खासकर उच्च शिक्षा समाज के सभी वर्गों के लिए सुलभ है या नहीं ?

लोकतांत्रिक नागरिक को तैयार करने के लिए उसे केवल सूचनाएँ देना पर्याप्त नहीं है। उसे विवेकशील और पारखी व्यक्ति बनाना होगा जो इन सूचानाओं की समीक्षा कर पाए और उनके अंतर्संबंधों को देख पाए। केवल जानकार व विवेकशील नागरिक अपने स्वार्थ को सर्वोपरि रखकर निर्णय कर सकता है। अतः हमें सामाजिक सरोकारों तथा संवेदनशीलता को विकसित करना होगा। इन बातों के अलावा लोकतांत्रिक नागरिक से सृजनशील और सुसंस्कृत होने की अपेक्षा है, जो वास्तव में साहित्यिक अध्ययनों से विकसित होता है। अगर हम इन सभी अपेक्षाओं को साथ रखकर देखें, तो समझ पाएँगे कि लोकतंत्र एक बहुमुखी और उदारवादी शिक्षा की अपेक्षा करता है।

शिक्षा को केवल बौद्धिक विकास की सीमाओं के अंतर्गत नहीं बँधना चाहिए, अपितु भावनात्मक तत्त्वों को भी ध्यान में रखना चाहिए। यह भी देखना चाहिए कि जीवन के अनुभवों द्वारा व्यक्ति में उचित भावनाओं का निर्माण हो रहा है अथवा नहीं। लोकतंत्र में जो उत्तम नागरिक के गुण होने चाहिए, उन्हें शिक्षा द्वारा विकसित करना चाहिए। वे इस प्रकार है – (1) आत्मानुभूति, (2) मानवीय संबंध, (3) आर्थिक कुशलता, (4) नागरिक उत्तरदायित्व। एक व्यक्ति, जिसको समाज में बहुमुखी शिक्षा नहीं मिली है, एक लोकतांत्रिक राज्य का अच्छा नागरिक नहीं कहलाएगा, क्योंकि वह अपनी इच्छाशक्ति को उचित रूप से प्रयोग नहीं कर सकेगा और झूठे प्रचारों द्वारा प्रभावित हो जाएगा। इस कारण राज्य को विद्यालय द्वारा तथा अन्य अनौपचारिक संस्थाओं द्वारा व्यक्ति को हर प्रकार की सम्भव सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिए, जिससे उचित राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक शिक्षा दी जा सके।

प्रदर्श 1.18 उत्तम नागरिक के प्रमुख गुण



एक ऐसे समाज में जो परिवर्तन की दिशा में है और जिसमें शीघ्र ही सामाजिक परिवर्तन होते हैं, शिक्षा का कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यह आवश्यक है कि ऐसे समाज के सदस्यों को इस प्रकार की शिक्षा दी जाए कि उनमें सामाजिक समस्याओं के संबंध में उचित सूझ का

विकास हो सके तथा वे सरलतापूर्वक अपने आप को नए वातावरण में व्यवस्थित कर लें। शिक्षा को समाज तथा उसके परिवर्तन के साथ परिवर्तित होते रहना चाहिए, क्योंकि शिक्षा समाज सापेक्ष है। विद्यालय में विवादग्रस्त विषयों पर स्वतंत्रतापूर्वक वाद–विवाद होना चाहिए, जिससे छात्रों को उन समस्याओं के संबंध में अंतर्दृष्टि मिल सके। लोकतंत्र के लिए वास्तविक शिक्षा ऐसी ही होनी चाहिए; जो विद्यार्थियों को उनकी न्यूनतम आवश्यकताओं का ज्ञान प्राप्त करने की तथा सत्य और पूर्व धारणाओं मे अंतर ज्ञात करने की, निष्कर्ष तक पहुँचने की तथा उन वस्तुओं को पहचानने की जो सामाजिक परिवर्तन के समय आती है, सहायता प्रदान करें।

उपर्युक्त चर्चा के निष्कर्ष में हम दो महत्त्वपूर्ण बातों को निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैंः –

1. शिक्षा और विशेषकर उच्च शिक्षा तक पहुँच सभी वर्गों को समान रूप में मिले।
2. शिक्षा बहुमुखी व उदार हो जो विवेकशीलता, संवेदनशीलता, सामाजिक ज़िम्मेदारी और सृजनात्मकता को बढ़ावा दे।

प्रश्न

1. अगर भारत लोकतंत्र नहीं अपनाता तो क्या हुआ होता ? क्या ऐसी स्थिति में हम एक राष्ट्र में बने रह सकते हैं ?
2. लोकतंत्र की कौन–कौन सी विशेषताएँ हैं ? लोकतंत्र में मतदाता को कौन–कौन से अधिकार दिए गए है ?

1.3.3 लोकतंत्र में शिक्षा के आदर्श

किसी भी लोकतंत्र में व्यक्ति की भागीदारी आवश्यक होती है। नागरिकता के लिए शिक्षा में व्यक्त किया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को यह पूर्ण अधिकार दिया जाना चाहिए कि स्वयं को एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में विकसित कर सके। इससे वह अपनी योग्यताओं व क्षमताओं आदि का उपयोग सही दिशा में कर सकता है तथा अपने चारों ओर की दुनिया के यथार्थ और सम्भावनाओं के प्रति सजग रह सकता है।

एक लोकतंत्रीय व्यवस्था में व्यक्तियों के चरित्र निर्माण में स्वतंत्रता, समता, समानता, न्याय आदि मूल्यों का समावेश होना चाहिए। इस प्रकार के मूल्यों को व्यक्ति के व्यवहार में उतारना लोकतांत्रिक शिक्षा का उद्देश्य होगा। ये सभी गुण लोकतंत्र की शिक्षा के द्वारा ही व्यवहार में उतारे जा सकते हैं।

लोकतांत्रिक शिक्षा का एक आदर्श यह भी है कि ऐसे नागरिकों को तैयार किया जाए जो सार्वजनिक जीवन में भागीदारी कर सके तथा नागरिक अधिकारों की रक्षा करने में रुचि लें और अपने मतों का विवेकशील तरीके से इस्तेमाल कर सकें। इसके साथ ही लोकतंत्र की शिक्षा के द्वारा नागरिकों में अन्यायपूर्ण व्यवस्था, शोषण तथा अपराधिक व्यवहार के प्रति विरोध प्रकट करने की चेतना और क्षमता विकसित हो सके। लोकतंत्र शिक्षा में नागरिकों को इस योग्य बनाया जाना चाहिए कि वे सामाजिक और राजनैतिक मामलों पर तर्कपूर्ण तरीके से सोच कर निर्णय ले सकें। उसमें वस्तुपरक चिंतन कर सकने के लिए वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विकास होना चाहिए। उसका दिमाग खुला हो और वह नए विचारों के प्रति संवेदनशील हो। लोकतंत्र शिक्षा के द्वारा ही लोगों में जातिवाद वंशवाद तथा विविध प्रकार के पूर्वाग्रह से प्रेरित विचारों का खंडन करने की क्षमता विकसित होती है। उसमें नए विचारों को स्वीकार करते हुए सृजनशीलता और सामाजिक निर्माण की क्षमता विकसित होती है।

समेकन

इस इकाई में प्रस्तुत जानकारी को संक्षेप में पुनः समझ लें। आधुनिक विश्व समाज की तीन प्रक्रियाएँ प्रमुख हैं – औद्योगीकरण, राष्ट्र–राज्यों का निर्माण, एवं लोकतंत्र। इनमें सबसे प्रमुख एवं आधार प्रक्रिया औद्योगीकरण की है, जो औद्योगिक क्रांति के साथ अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ब्रिटेन एवं फ्रांस में सबसे पहले प्रारम्भ होकर बाद में

विश्व के अन्य देशों में फैली। फिर राष्ट्र–राज्यों के निर्माण के साथ ही राष्ट्रवाद की प्रक्रिया भी प्रारम्भ हुई और उसके साथ साथ लोकतंत्र की प्रक्रिया भी प्रबल हुई। इन तीनों नवीन प्रक्रियाओं ने शिक्षा प्रणाली के एक नए स्वरूप को जन्म दिया, जिसे विद्यालयी शिक्षा का नाम दिया गया। विद्यार्थियों को पढ़ना सिखाना एवं गणना के अमूर्त एवं तात्विक ज्ञान को साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित एवं विज्ञान के रूप में एक निश्चित एवं निर्धारित वातावरण में प्रशिक्षित शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों को सिखाने की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि इस मशीनी उत्पादन के युग में वस्तु उत्पादन एवं वितरण को सही रूप में संचालित करने हेतु ज्ञान का निरूपण एवं विस्तार भी व्यवस्थित करने की आवश्यकता महसूस की गई। पूरे विश्व में लगभग 200 राष्ट्र–राज्य बन गए, उनमें लोकतंत्र की प्रक्रिया स्थापित हो रही है तथा विद्यालयी शिक्षा के नए–नए आयाम प्रारंभ किए जा रहे हैं।

औद्योगीकरण और शिक्षा आधुनिक विश्व की एक ऐसी स्थिति रही है जिसने विश्व के पूर्व की स्थिति में उथल–पुथल मचा दी और एक नए विश्व का निर्माण किया। जिसमें प्राचीन परंपराएँ, कार्यों तथा शिक्षा ने नया रूप धारण किया। जिसने मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित कर एक नया आयाम कायम किया। इसने जिन पहलुओं को प्रभावित किया वह विश्व समाज की प्रमुख प्रक्रियाएँ बनीं, जिसे – औद्योगीकरण, राष्ट्रवाद (राष्ट्र–राज्यों का उदय) और लोकतंत्र के नाम से जाना गया।

औद्योगीकरण ने मशीनी युग को तो जन्म दिया ही, साथ ही श्रमिक की जीवन स्थिति को भी बदला। कच्चे माल की आवश्यकता ने नए बाज़ारों का विकास किया। सतत् प्रतिस्पर्धा व तकनीकी बदलाव शुरू हुए। औद्योगीकरण ने जहाँ नई–नई मशीनों के प्रयोग से (कुशल) श्रमिक को रोज़गार उपलब्ध कराए वहीं शिक्षा से वंचित श्रमिकों के हालातों को बदतर भी किया। स्त्रियों को जहाँ रोज़गार उपलब्ध होकर आर्थिक संबलता मिली वहाँ उनके स्वास्थ्य तथा बच्चों की स्थिति को भी हताश किया। तकनीकी बदलाव की इस स्थिति ने कच्चे माल के आयात तथा तैयार माल को बेचने के नए बाज़ार को जन्म दिया, जिससे विश्व के विभिन्न राष्ट्र एक–दूसरे से जुड़े। इसी के चलते ताकतवर देशों ने कमज़ोर राष्ट्रों पर अधिकार जमाना प्रारंभ किया।

इसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्र–राज्य को जन्म मिला। प्रत्येक नागरिक अपने आपको पहचानने के लिए, कि उसका एवं राष्ट्र का जिस पर वह गर्व कर सकता है, के लिए राष्ट्रवाद का उदय हुआ और कई क्राँतियों के बाद अपने को स्वतंत्र करा कर अपना राष्ट्र बनाया। उस राष्ट्र में नागरिक ने चाहा कि एक समान कानून हो, जिसका सब पालन करें उनका एक राष्ट्रीय चिह्न हो, जिससे उसकी पहचान हो, उनको अपने राष्ट्र में अधिकार प्राप्त हो, उसके साथ किसी प्रकार का भेदभाव न हो, सभी क्षेत्रों मे समानता का व्यवहार हो, चाहे वो राजनीति, सामाजिक, शैक्षिक या आर्थिक हो। इस राष्ट्रीय भावना ने लोकतंत्र को जन्म दिया, जिसमें जनता के द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि ही शासन करें और राष्ट्र के संविधान के अनुरूप कानून का पालन करते हुए राष्ट्र के हित के लिए कार्य करें।

यह सब तभी सम्भव हुआ, जब व्यक्ति को शिक्षा प्रदान की गई। ज्ञान प्राप्त करने के फलस्वरूप ही नई मशीनों का निर्माण हुआ, उनके प्रयोग के लिए नए–नए विषयों के अध्ययन द्वारा प्रशिक्षण दिया गया। बाज़ार के प्रति जागरूकता, अधिकार व कर्तव्यों की जानकारी, राष्ट्र के प्रति सम्मान व त्याग की भावना, शिक्षा के प्रचार–प्रसार से ही सम्भव हो सकी। आज स्थिति यह है कि इस सब बदलाव के कारण पूरा विश्व एकजुट हो गया है। इस इकाई के अन्तिम भाग में लोकतांत्रिक प्रणाली को विद्यालयी शिक्षा से जोड़ते हुए उसके आदर्शों की व्याख्या की गई है। ज्ञान के इस निरूपण एवं विस्तार के परिणामस्वरूप वैश्वीकरण के युग का प्रादुर्भाव हुआ। जिसका अध्ययन हम अगली इकाई में करेंगे।

दत्त कार्य

लोकतंत्र में नागरिकों की भूमिका तथा अधिकारों की विवेचना कीजिए। क्या हम अपनी कक्षा, परिवार में लोकतांत्रिक व्यवस्था की बात कर सकते हैं ? यदि हाँ तो उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

इकाई–2
आधुनिक विद्यालयों का स्वरुप और उनकी समीक्षा

- परिचय
- उद्देश्य
- विषयवस्तु

2.1 आधुनिक विद्यालयों का विकास

- 2.1.1 इंग्लैंड में सार्वजनिक शिक्षा का विकास
- 2.1.2 जर्मनी में सार्वजनिक शिक्षा का विकास
- 2.1.3 अमेरिका में सार्वजनिक शिक्षा का विकास
- 2.1.4 तुलनात्मक विवेचना

2.2 सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्थाओं की समीक्षा

- 2.2.1 पाउलो फ्रेरे
- 2.2.2 जॉन होल्ट
- 2.2.3 अध्यापक के नाम पत्र
- 2.2.4 इवान इलिच

- समेकन
- दत्त कार्य

इकाई 2
आधुनिक विद्यालयों का स्वरूप और उनकी समीक्षा

परिचय

विश्व को बदलने वाली प्रमुख प्रक्रियाओं यथा औद्योगीकरण, राष्ट्र–राज्य और लोकतंत्र की जरूरतों के चलते आधुनिक विद्यालयी शिक्षा के स्वरूप ने आकार लिया है। शिक्षा व्यवस्था के स्वरूप को तय करने में कहीं पर राष्ट्रवाद, कहीं पर लोकतंत्र और कहीं पर औद्योगीकरण का प्रभाव अधिक रहा है। जो भी हो इनका प्रमुख प्रभाव यह रहा है कि हर व्यक्ति को अनिवार्य रूप से किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य हो गया है।

इसका पहला चरण स्कूली शिक्षा है। आधुनिक स्कूली शिक्षा इससे पूर्व की शिक्षा व्यवस्थाओं से कई मायनों में अलग है। इसकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह सभी के लिए उपलब्ध है, जबकि इससे पहले की शिक्षा व्यवस्थाएँ आमतौर पर कुछ खास वर्ग के पुरुषों के लिए ही उपलब्ध थी। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि इसमें बड़े पैमाने पर, ज्यादातर राष्ट्र के स्तर पर एकरूपता है, क्योंकि यह राज्य द्वारा स्थापित और संचालित व्यवस्था है। तीसरी विशेषता यह है कि इनमें प्रारंभिक स्तर पर तो सभी बच्चों की शिक्षा में एकरूपता होती है। बाद में उन्हें विभिन्न व्यवसाय जैसे डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, श्रमिक, आदि की शिक्षा पाने के लिए विभाजित किया जाता है।

इस युग में शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक पूँजी बन गई है जिसकी मदद से कोई व्यक्ति अपनी सामाजिक स्थिति बदल सकता है। साथ में शिक्षा उसकी सोच, कल्पना और व्यवहार को भी नियंत्रित करती है। इस तरह शिक्षा सामाजिक गतिशीलता और बदलाव को नियंत्रित करने का एक साधन भी बन गया है। इसके महत्त्व को समझते हुए आधुनिक राज्यों ने सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्थाएँ स्थापित की। उनके समक्ष शिक्षा के संदर्भ में कई प्रश्न थे, जिन पर विचार–विमर्श करते हुए और उत्तर तलाशते हुए विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था का वर्तमान स्वरूप बना।

क. क्या सभी बच्चों का शाला जाना अनिवार्य होना चाहिए ? यदि हाँ तो कितने वर्ष तक ?

ख. शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक विभेद और लैंगिक भेदभाव को बनाए रखना होना चाहिए या इसे खत्म करना ?

ग. शिक्षा का खर्च सरकार को वहन करना चाहिए कि समुदाय या परिवार को ?

घ. विद्यालयों का प्रबंध सरकार को करना चाहिए या निजी होना चाहिए ?

च. विद्यालयों में क्या सिखाया जाना चाहिए ?

18 वीं और 19 वीं सदी में जर्मनी, इंग्लैंड (ब्रिटेन) और अमेरिका में आधुनिक सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ, जो अन्य देशों के लिए सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था के प्रारूप बने। इसलिए हम इन देशों में हुए सार्वजनिक शिक्षा के विकास का इतिहास पढ़ेंगे। इससे हम जान सकेंगे कि किसी भी देश में शिक्षा व्यवस्था के बनने में वहाँ की सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों और लोगों की आकांक्षाओं का क्या प्रभाव होता है ?

इन बातों को जानने से हम भारत और अपने प्रदेश की शिक्षा व्यवस्था को भी गहराई और समालोचनात्मक नजरिये से देख पाएँगे।

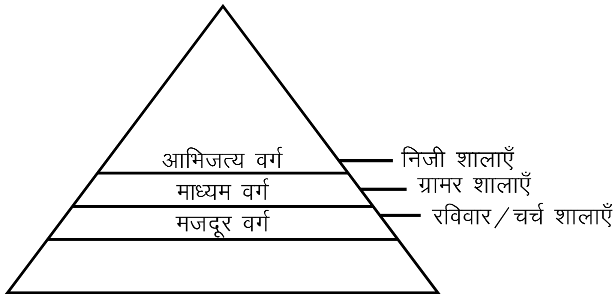
उद्देश्य

1. सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्थाओं के इतिहास को जानना।
2. विभिन्न देशों की शिक्षा व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन कर पाना।
3. सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्थाओं के समालोचकों के विचारों की समीक्षा करना।
4. उपर्युक्त आधार पर वर्तमान शिक्षा व्यवस्थाओं की समीक्षा कर पाना और इसमें सुधार के उपाय सुझा पाना।

2.1 आधुनिक विद्यालयों का विकास

2.1.1 इंग्लैंड में सार्वजनिक शिक्षा का विकास

इंग्लैंड में राष्ट्र राज्य का उदय 16वीं और 17वीं सदी में हुआ था, और राजाओं के निरंकुश शासन की जगह संसदीय प्रणाली स्थापित हुई, लेकिन वहाँ आभिजात्य जमींदार और पूँजीपतियों का नियंत्रण बना रहा और व्यापक लोकतंत्र की स्थापना नहीं हो पाई। संसद के चुनाव में महिलाओं व मजदूरों को 20वीं सदी की शुरूआत तक मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं था।



इन्हीं परिस्थितियों के बीच इंग्लैंड में आधुनिक शिक्षा की शुरुआत हुई।

आभिजात्य वर्ग के लिए निजी शालाएँ

18 वीं सदी में इंग्लैंड में कोई सरकारी विद्यालय नहीं था, ना ही कोई सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली थी। इस समय आभिजात्य वर्ग के लड़के प्रारंभिक शिक्षा के लिए प्रिपरेटरी स्कूलों में जाते थे और उसके बाद चुनिंदा मँहगे आवासीय विद्यालयों में पढ़ने जाते। यह व्यवस्था लगभग आज भी बनी हुई है। मध्यम वर्ग के बच्चे 'ग्रामर विद्यालयों' में जाते थे, जो निजी विद्यालय थे मगर निःशुल्क शिक्षा देते थे। मजदूर वर्ग के बच्चों के लिए विद्यालयों की व्यवस्था नहीं थी, वे अपने माता–पिता के साथ दिन–रात काम में लगे रहते थे। रविवार को वे चर्च जाते थे जहाँ उन्हें कभी–कभी बाइबल सिखाई जाती थी। ग्रामर–शालाएँ और रविवार–शालाएँ बाद में जाकर सार्वजनिक शिक्षा का आधार बनीं, इसलिए इनके बारे में हम विस्तार से जानेंगे।

गतिविधि

आपका क्या अनुमान है कि इंग्लैंड के नेता किस तरह की शिक्षा व्यवस्था बनाना चाहते होंगे और सामान्य लागों की क्या अपेक्षा रही होगी? उपर्युक्त विषयवस्तु को पढ कर अपने विचारों को लिख कर कक्षा में चर्चा कीजिए।

मध्यम वर्ग के लिए ग्रामर शालाएँ

ग्रामर विद्यालयों की शुरूआत 16 वीं सदी में हुई। उस समय उच्च शिक्षा का आशय ग्रीक व लैटिन भाषा और इसके साहित्य का अध्ययन करना था। इसमें बोलकर पढ़ने और याद किए हुए को दोहराने पर विशेष बल दिया जाता था। एक तरह से यह पढ़ने की तैयारी करवाने का तरीका था। पढ़ाई रटंत पद्धति से होती थी। सामान्य वाक्य स्वयं लिखना सीखने में भी बच्चों को सालों लग जाते थे। व्याकरण सीखने में बच्चों को बहुत समय लगता था, वे इसे सातवीं या आठवीं कक्षा तक सीख पाते थे। बच्चों पर प्रधानाध्यापक का बहुत भय था। चूँकि इनमें ग्रीक और लेटिन का व्याकरण सिखाने पर जोर था, इन्हें ग्रामर शालाएँ कहा गया। इनकी वित्तीय व प्रबंधकीय व्यवस्था कुछ विशिष्ट थी। इन्हें कुछ आभिजात्य लोगों ने स्थायी निधि द्वारा स्थापित किया था। उन्होंने शर्त रखी थी कि इनमें किन विषयों को पढ़ाया जाएगा, कैसे पढ़ाया जाएगा? ये शर्तें लिखित और पंजीकृत होती थीं इसलिए विद्यालयों को इनके अनुरूप ही चलाया जा सकता था। इनमें छात्रों को निशुल्क शिक्षा दी जाती थी। इनका संचालन मुख्य रूप से प्रधानाध्यापक द्वारा किया जाता था। इसलिए उनके पास काफी अधिकार होते थे। चूँकि ग्रीक और लेटिन में रुचि रखने वालों की संख्या सीमित थी, इसलिए ग्रामर स्कूलों में सिर्फ वे ही प्रवेश लेते थे, जो चर्च में या उच्च राजकीय

पदों पर जाना चाहते थे। यहाँ गणित व अँग्रेजी आदि के शिक्षण पर जोर नहीं था। कोई विद्यार्थी अगर अंग्रेजी बोले तो उसे दंडित किया जाता था। विज्ञान तो बिल्कुल भी नहीं पढ़ाया जाता था।

प्रदर्श 2.2 ग्रामर शालाओं की विशेषताएँ

- ग्रीक व लेटिन भाषा एवं इससे संबंधित साहित्य का अध्ययन
- रटंत पद्धति पर बल
- लेटिन व ग्रीक का व्याकरण सिखाने पर जोर
- मध्यम वर्ग खासकर व्यवसायी एवं प्रबंधक वर्ग के लिए विकसित
- आभिजात्य लोगों की स्थायी निधि द्वारा स्थापित

प्रश्न

स्कूल के सारे अधिकार प्रधानाध्यापक को देने के क्या प्रभाव हो सकते हैं? इंग्लैंड में ग्रामर–विद्यालयों में सकारात्मक परिणाम हेतु आपके अनुसार किस प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए थी ?

1750 ईस्वी के बाद इंग्लैंड में धनी मध्यम वर्ग पनप रहा था। व्यापार, उपनिवेशों और उद्योगों में प्रशासन आदि का विस्तार हो रहा था। इस कारण ग्रामर स्कूलों पर यह दबाव बनने लगा कि वे अपनी विषयवस्तु को आधुनिक जरूरतों के अनुरूप बनाएँ, लेकिन प्रधानाध्यापक इसके लिए तैयार नहीं थे। कानून भी उनके पक्ष में था। 1802 में इस तरह के एक विवाद में अदालत ने निर्णय दिया कि जिन शर्तों के तहत स्कूल को अनुदान दिया गया है, उन्हें बदला नहीं जा सकता, अतिरिक्त अनुदान या फीस के साथ कुछ विषय जोड़े जा सकते हैं।

गतिविधि

आपके विचार से मध्यम वर्ग के लोग ग्रामर विद्यालयों में किस तरह के विषय शामिल कराना चाहते होंगे ? अपने साथियों से आपस में बातचीत करके उनकी सूची बनाने का भी प्रयास करें। प्रत्येक विषय को लेकर चर्चा करें कि उस समय के मध्यम वर्ग को उस विषय को विद्यालय में शामिल करने से क्या लाभ रहा होगा ?

मध्यम वर्ग के दबाव के चलते 1840 में संसद में एक कानून पारित किया गया। इस कानून से स्कूल के मूल उद्देश्यों को बदलकर नए विषय जोड़ने को संभव बनाया गया। पर इसमें भी शर्त यह थी कि ऐसा करना प्रधानाध्यापक को स्वीकार होना चाहिए। इस बीच कई नए ग्रामर स्कूल खोले गए। इनमें आधुनिक विषय, जैसे– गणित, विज्ञान और अँग्रेजी भी पढ़ाए जाते थे। 1870 में आए एजुकेशन एक्ट को इंग्लैंड के शैक्षिक इतिहास में मील का पत्थर कहा जा सकता है। इस कानून के तहत शासन ने ग्रामर स्कूलों पर काफी नियंत्रण हासिल कर लिया। ग्रामर स्कूल निःशुल्क ना रहकर सशुल्क बन गए। ग्रामर स्कूल से उत्तीर्ण छात्र ही विश्वविद्यालयों में प्रवेश ले सकते थे। पर कठिन प्रवेश परीक्षा और फीस के कारण ग्रामर स्कूल में निम्न वर्ग के बच्चे प्रवेश नहीं ले पाते थे।

ग्रामर शालाएँ मध्यम वर्ग, खासकर व्यापारी, उद्योगपति, वकील तथा राजकीय सेवाकर्मियों के बच्चों के लिए विकसित हुई। उनमें मुख्य संघर्ष इस बात को लेकर था कि शिक्षा की विषयवस्तु विज्ञान और आधुनिक साहित्य हो या प्राचीन भाषा और साहित्य ?

20वीं सदी में ग्रामर स्कूल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के रूप में विकसित हुए और उनसे उत्तीर्ण होने पर कॉलेजों में जा सकते थे। इसकी पहुँच को बढ़ाने के लिए शासन ने नए ग्रामर स्कूल की व्यवस्था की। इनमें निम्न वर्ग के प्रतिभावान बच्चों का प्रवेश सुनिश्चित करने के लिए उन्हें आरक्षण और छात्रवृत्ति दी जाने लगी लेकिन उन्हें भी परीक्षा के परिणामों के आधार पर ही प्रवेश दिया जाता था। फिर भी यह देखा गया कि 1950 तक सभी प्रकार के ग्रामर

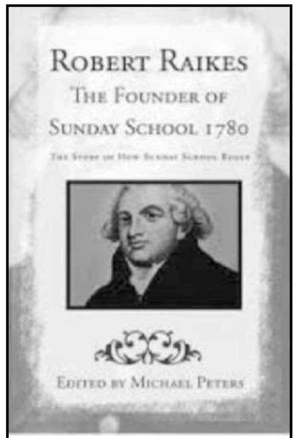
स्कूल में व्यवसायी और प्रबंधक वर्ग के बच्चों का ही बोलबाला था। यानी वे ही बाद में जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। इस बात की कड़ी आलोचना हुई और अंत में 1970 के बाद ग्रामर स्कूलों की जगह सामान्य उच्चतर माध्यमिक स्कूल खोले गये जिनमें सभी को प्रवेश मिलने लगा।

प्रश्न

- मजदूर वर्ग के बच्चे ग्रामर स्कूलों में क्यों नहीं जाते होंगे?
- ग्रामर स्कूल के संचालन में सरकार क्यों हस्तक्षेप करना चाहती होगी?
- उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में परीक्षा परिणामों के आधार पर प्रवेश होनी चाहिए। इस कथन के पक्ष–विपक्ष में तर्क दीजिए ?

मजदूर बच्चों की शिक्षा और सार्वजनिक स्कूल का उदय

18वीं सदी में औद्योगीकरण के फलस्वरूप शहरों में मजदूरों की बसावट तेजी से बढ़ने लगी। लोग बेहद असामान्य परिस्थितियों में रहते थे। इससे उनमें विरोध और विद्रोह की भावनाएँ भी उभरने लगीं और मजदूर वर्ग के लोग क्रांतिकारी विचारों से प्रभावित होने लगे। इंगलैंड का मध्यम वर्ग इन बातों से बहुत चिंतित हुआ। इन परिस्थितियों में 1781 ईस्वी में राबर्ट राइक्स नामक व्यक्ति ने ग्लोसेस्टर नामक शहर में मजदूर बच्चों के लिए रविवार विद्यालयों की व्यवस्था की। ये रविवार को लगती थी, क्योंकि ईसाई धर्म के अनुसार रविवार को काम करना मना था। स्कूल में बाइबल की सहायता से पढ़ना सिखाया जाता था। बाद में इनमें लड़कियाँ भी जाने लगीं।



राबर्ट राइक्स (1735–1811)
रविवार शाला (1780) के प्रवर्तक

राइक्स ने 1784 ईस्वी में पत्रिकाओं में इनके बारे में लिखा कि वह 'मजदूर बच्चों की उद्दंडता, असभ्यता, हैवानियत, गाली गलौच और अपराध के प्रति आकर्षण से चिंतित था। इसको सुधारकर बच्चों को सभ्य बनाने और धार्मिक शिक्षा देने के लिए रविवारीय स्कूल प्रारंभ किए गए। इससे इन 'नन्हें जाहिलों' के आचरण में आश्चर्यजनक परिवर्तन आया है। 'राइक्स ने एक कारखाना मालिक श्रीमान् चर्च, जिनके कारखाने में बड़ी संख्या में बच्चे काम करते थे, के विचार बताते हुए कहा कि 'रविवार स्कूल जा रहे बच्चे अब ज्यादा सुशील, आज्ञाकारी और कम लड़ाकू हो गए हैं। पहले इनके और जंगली जानवरों के आचरण में ज्यादा फर्क नहीं था। मेरे ख्याल से यह परिवर्तन भेड़ियों और शेरों को इंसान में बदलने से ज्यादा विस्मयकारी है। अब कोई आला व्यक्ति उनके पास आकर इन्हें निर्देश देता है, डाँटता है या पुरस्कार देना चाहता है तो वे उस पर अच्छा प्रभाव डालने के लिए तत्पर रहते हैं।

प्रश्न :

- राइक्स के कथनों में मध्यम वर्गीय सोच किस प्रकार झलकती है ?
- आज्ञाकारी, सुशील और अनुशासित बच्चे उद्योगों के लिए किस प्रकार मददगार हो सकते हैं ?
- क्या मजदूर बच्चों की शिक्षा के लिए कोई वैकल्पिक उद्देश्य होना चाहिए ? विवेचना कीजिए।

इंग्लैंड में राइक्स का यह संदेश तेजी से फैला। चार साल के अन्दर रविवार विद्यालयों की संख्या 5,000 हो गई जिनमें लगभग 2,50,000 बच्चे पढ़ रहे थे। रविवार शालाएँ निजी और स्वतंत्र प्रयासों का नतीजा थीं लेकिन उनमें शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बच्चों को धार्मिक बनाना था। इतिहासकार ई.पी. थॉमसन लिखते हैं कि प्रारंभिक रविवार शालाएँ बच्चों में अपराधबोध और हीन भावना विकसित करने का काम कर रही थीं। इनमें बच्चों में धार्मिक डर पैदा किया जाता था। उन्हें बताया जाता था कि मुक शोषित श्रमिक और धर्मभीरू हैं उन्हें सुख और साधन मिलेंगे। जो ऐसे

नहीं हैं, वे पाप के भागी होंगे और उन्हें दंड मिलेगा। इस तरह की शिक्षा पर इतना जोर था कि कई बच्चे पढ़ना लिखना तक नहीं सीख पाते थे।

> **गतिविधि**
> रविवारीय स्कूलों की शिक्षा औद्योगिक व्यवस्था को बनाए रखने में किस प्रकार सहायक रही होगी ? अपनी कक्षा–कक्ष में समूह बनाकर चर्चा कीजिए।

रोचक बात यह है कि इसका विरोध धार्मिक लोगों ने ही किया। अधिकांश रविवारीय स्कूलों के संचालन में इंग्लैंड के राजकीय चर्च का मार्गदर्शन रहता था। राजकीय चर्च (चर्च आफ इंग्लैंड) ईसाई धर्म को मानने वाले एक विशेष प्रोटेस्टेंट समुदाय के चर्च थे। इनको राजकीय संरक्षण मिला हुआ था लेकिन 17 वीं और 18 वीं शताब्दी में इंग्लैंड में एक ज्यादा उदार वैचारिक प्रक्रिया भी चल रही थी। जो धार्मिक स्वतंत्रता के पक्ष में थी। कई अल्पसंख्यक ईसाई पंथ भी इसके समर्थक थे। वे धर्म और शिक्षा में चर्च आफ इंग्लैंड के राजकीय हस्तक्षेप के विरुद्ध थे।

चर्च शालाएँ

1811 में राजकीय चर्च के अंतर्गत हर चर्च की यजमानी में एक शाला खोली गई, इसे चर्च शाला कहा जाता था। इसमें बाइबल और सरकारी तौर पर मान्य ईसाई धर्म की बातें, पढ़ना लिखना, गणित और सदाचार सिखाया जाता था, चूंकि इनका संचालन चर्च द्वारा होता था, इसलिए स्कूल पर होने वाला खर्च स्थानीय चर्च के संसाधनों के अनुरूप होता था।

1833 में सरकार ने चर्च द्वारा संचालित विद्यालयों को भवन निर्माण और मरम्मत आदि के लिए अनुदान देना शुरू किया। विद्यालयों के निरीक्षक नियुक्त हुए। शासन ने 1846 के बाद शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की। इस प्रारंभिक शासकीय हस्तक्षेप के बावजूद रविवार शालाएँ बनी रहीं और उनका खर्च चंदे से चलता रहा।

1850 तक लगभग 20 लाख बच्चे विभिन्न विद्यालयों में पढ़ रहे थे। इनमें से 75 प्रतिशत बच्चे रविवार विद्यालयों में थे। 8 लाख बच्चे ऐसे थे, जो एक साल से भी कम अवधि तक स्कूल जा पाए थे और लगभग 10 लाख बच्चे किसी भी शाला में नहीं जाते थे। ये आँकड़े बताते हैं कि मजदूर वर्ग के लोग बच्चों को शिक्षित करने को लेकर ज्यादा उत्साही नहीं थे। संभव है कि उनको बच्चों का काम पर जाना ज्यादा उपयोगी लगता हो।

> गतिविधि
> चर्च शालाओं की विशेषताओं के महत्त्वपूर्ण बिंदुओं को एक बॉक्स बनाकर प्रदर्शित कीजिए।

बावजूद इसके उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य के दशकों में साक्षरता दर लगातार बढ़ती गई। यह संभव हो सका क्योंकि मजदूरों के वेतन बढ़ रहे थे और बच्चों को काम पर भेजने का दबाव कम था। शासन की तरफ से भी कई योजनाएँ लागू की गई, जिनके तहत बच्चों को स्कूल भेजने पर छात्रवृत्ति दी जाती थी।

प्रदर्श 2.3 इंग्लैंड में साक्षरता दर 1841 से 1871 (प्रतिशत में)

वर्ष / साक्षरता	1841	1851	1861	1871
महिला साक्षरता	51.1	54.8	65.5	73.2
पुरुष साक्षरता	67.3	69.3	75.4	80.6
स्रोत :–	Education in England a brief history - Derek Gillard			

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि इग्लैण्ड में साक्षरता दर 1841 ईस्वी से 1871 ईस्वी में प्रत्येक दशक में बढ़ती रही है चाहे वह महिला साक्षरता का प्रतिशत हो या पुरुष साक्षरता का हो।

उन्नीसवीं सदी के मध्य में आभिजात्य वर्गों के लिए कुछ निजी स्कूल, मध्यम वर्ग के लिए ग्रामर स्कूल और मजदूरों के लिए रविवार या चर्च शालाएँ थीं। इन तीनों तरह की व्यवस्थाओं को मजबूत करने और प्रासंगिक बनाने के लिए शासन ने तीन अलग आयोग बिठाए और उनकी सिफारिशों के अनुरूप विद्यालयों में हस्तक्षेप किए।

रविवार विद्यालयों में बच्चों की संख्या बढ़ रही थी, पर उनके लिए वित्तीय प्रावधान ना होने के कारण शासन पर दबाव बढ़ रहा था। पर चर्च आधारित संस्थाएँ शासकीय हस्तक्षेप के पक्ष में नहीं थीं। राजकीय चर्च के विरोधी ईसाई सम्प्रदाय के लोग भी इसका विरोध कर रहे थे। उनका तर्क था कि शासन का हस्तक्षेप बढ़ने से राजकीय चर्च अपने विचारों का प्रचार विद्यालयों के माध्यम से करेगा।

लोकतंत्र और इंगलैंड में सार्वजनिक शिक्षा की राजकीय व्यवस्था

इंग्लैंड की शासन व्यवस्था का संचालन चुने हुए जनप्रतिनिधियों द्वारा किया जाता था। पर चुनावों में वोट देने का अधिकार सिर्फ उच्च वर्ग के सम्पत्तिवान पुरुषों तक ही सीमित था। काफी विचार–विमर्श के बाद 1832 ईस्वी में कम सम्पत्तिवान पुरुषों को भी सीमित मताधिकार हासिल हुआ। इससे प्रेरित होकर इंग्लैंड के उभरते मजदूर आंदोलन ने पुरुषों के लिए सार्वभौमिक मताधिकार की माँग की, जिसे 1867 में मंजूर कर लिया गया। लोगों की माँग के चलते 1918 ईस्वी में महिलाओं को भी मताधिकार प्रदान किया गया। मताधिकार मिलने के कारण गरीब वर्ग के लोग भी राजनैतिक और सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने लगे। इस भूमिका को निभाने के लिए यह आवश्यक लगा कि सभी नागरिकों को कम से कम प्राथमिक शिक्षा तो मिले।

इंग्लैंड का मध्यम वर्ग मजदूरों की शिक्षा को लेकर काफी असमंजस में था। एक तरफ यह जरूरी लगने लगा कि शिक्षा के माध्यम से उनके सोच पर प्रभाव डाला जा सकता है, और दूसरी ओर यह भी चिंता का विषय बनने लगा कि अगर मजदूर लोग पढ़–लिख जाएँगे तो वे अपनी स्थिति भूल जाएँगे और उच्च वर्गों से बराबरी करने लगेंगे।

गतिविधि

क्या आपने इस तरह की बातें अपने इलाके में भी सुनी हैं? इन लोगों के विचार में सार्वजनिक शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य क्या रहा होगा? कक्षा में चर्चा कीजिए।

इंग्लैंड के उच्च वर्गों ने यह माना कि शिक्षा के अभाव में सार्वभौमिक मताधिकार से समाज में उथल–पुथल और अराजकता फैल सकती है। इन परिस्थितियों के कारण समाज में सार्वभौमिक शिक्षा की माँग जोर पकड़ने लगी।

मजदूर वर्ग की शिक्षा के लिए अन्य कोई विशिष्ट प्रावधान की जरूरत महसूस हो रही थी। स्थानीय स्वयंसेवी संगठन इस खर्च को वहन नहीं कर पा रहे थे और बढ़ती हुई छात्र संख्या के कारण कक्षाएँ भी कम पड़ रही थीं। फिर भी जैसे कि हमने ऊपर देखा कि राजकीय हस्तक्षेप का विरोध धार्मिक समूहों द्वारा होता रहा। इन सब विवादों के चलते 1870 में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कानून पारित हुआ, जिसे फोस्टर कानून कहते हैं। कानून के अनुसार जहाँ विद्यालयों में क्षमता से अधिक छात्र हैं, वहाँ वित्तीय प्रावधान करके अतिरिक्त विद्यालयों को स्थापित किया जा सकता था। इन नए विद्यालयों का संचालन स्थानीय रूप से चुने गए बोर्ड द्वारा किया जाना था। ये शालाएँ चर्च विद्यालयों की जगह नहीं लेने वाली थीं, उनके अतिरिक्त थीं। ये शुरू की राजकीय शालाएँ थीं।

फोस्टर का कहना था कि वर्तमान व्यवस्था द्वारा छूट हुए बच्चों को पढ़ाने के लिए यह व्यवस्था की जा रही है। स्थानीय बोर्ड बच्चों से सीमित मात्रा में शुल्क ले सकते थे। अनिवार्य रूप से शाला में उपस्थित होने के नियम बना सकते थे। सबसे जटिल समस्या थी, धार्मिक शिक्षण की। प्रश्न यह था कि बच्चों को राजकीय धर्म की शिक्षा दी जाए, कि विभिन्न विरोधी संप्रदायों की। अंत में यह तय हुआ कि शाला में किसी एक संप्रदाय की शिक्षा ना दी जाकर सर्वधर्म

समभाव की शिक्षा दी जाए। पहला बोर्ड स्कूल लंदन में 1873 ईस्वी में शुरू हुआ।

1883 ईस्वी से 1900 ईस्वी तक स्कूली शिक्षा सब बच्चों के लिए 5 से 12 वर्ष तक अनिवार्य और निःशुल्क बना दी गई। गरीब वर्ग के बच्चों के लिए संचालित रविवारीय और चर्च विद्यालयों को भारी मात्रा में शासकीय अनुदान दिया गया और इन्हें नवनिर्मित शिक्षा विभाग के अधीन लाया गया। इनके अलावा जरूरत के अनुसार नई विद्यालयों को स्थापित और संचालित करने की जिम्मेदारी स्थानीय निकायों को दी गई। लेकिन अभी भी प्राथमिक शिक्षा की ही व्यवस्था थी। धीरे–धीरे माध्यमिक शिक्षा के लिए शालाएँ खोली गईं लेकिन ये अनिवार्य नहीं थीं।

बीसवीं शताब्दी में

1902 में कानून द्वारा 14 साल तक के सभी बच्चों के लिए सार्वजनिक शिक्षा की व्यवस्था की गई। इस समय बेहतर प्रदर्शन करने वाले थोड़े से गरीब बच्चों के लिए नए ग्रामर स्कूल शासन द्वारा स्थापित किए गए। इनमें प्रवेश परीक्षा पास करने पर ही प्रवेश दिया जाता था। ग्रामर स्कूल से उत्तीर्ण बच्चे ही कॉलेज में दाखिला ले सकते थे। लेकिन ग्रामर विद्यालयों में उच्च मध्यम वर्ग की तुलना में मजदूर वर्ग के बच्चे बहुत कम संख्या में प्रवेश पाते थे।

इस तरह इंग्लैंड में त्रिस्तरीय शिक्षा व्यवस्था (आभिजात्य वर्ग के लिए निजी शालाएँ, मध्यम वर्ग के लिए ग्रामर शालाएँ, तथा मजदूरों के लिए शासकीय प्राथमिक शालाएँ) बनी रहीं।

प्रदर्श 2.4 इंग्लैंड में सार्वजनीक शिक्षा की प्रमुख घटनाएँ

- 1870 फोस्टर कानून पारित
- 1873 पहला बोर्ड स्कूल लंदन प्रारंभ
- 1883–1900 → अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा (5 से 12 वर्ष तक)
- 1902 सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था (14 वर्ष तक)

गतिविधि

हमारे यहाँ की स्कूली शिक्षा व्यवस्था में आप किस तरह का वर्ग विभाजन पाते हैं ? कक्षा में चर्चा कीजिए।

माध्यमिक शिक्षा तक पहुँच

शिक्षा व्यवस्था इस प्रकार थी कि प्राथमिक शिक्षा पूरी होते ही लगभग 11 साल की उम्र में, यह तय हो जाता था कि कौन विज्ञान पढ़ेगा, कौन साहित्य और कौन औद्योगिक काम करेगा? ग्रामर स्कूल या माध्यमिक स्तर में प्रवेश पाने के लिए एक परीक्षा ली जाती थी। इसमें उत्तीर्ण होने वाले ही पढ़ाई के अगले स्तर पर जा सकते थे। इस परीक्षा के अंदर पढ़ाई में कमजोर बच्चे सफल नहीं हो पाते थे। इंग्लैंड के जो लोग इस विभेदकारी व्यवस्था को समझ रहे थे, उनका आग्रह था कि 18 साल की उम्र तक सबको समान शिक्षा मिलनी चाहिए। प्रवेश परीक्षा की व्यवस्था के समर्थकों का तर्क था कि शिक्षा की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए चुने हुए बच्चे ही अगले विद्यालयों में जाने चाहिए। 1960 तक 11 साल की उम्र में विभाजन की यही व्यवस्था बनी रही। इसके बाद शासकीय विद्यालयों के सब बच्चों को 18 साल तक समान शिक्षा देने की व्यवस्था बनी।

इन शासकीय विद्यालयों का अकादमिक संचालन स्थानीय शिक्षाविद और शिक्षक मिलकर करते थे। धीरे–धीरे

उन्होंने इसकी अन्य कमियों को महसूस किया जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा में विद्यालयों की स्वायत्तता, शैक्षणिक स्वायत्तता और बालकेंद्रित शिक्षा के लिए स्थान बना। लगभग 1980 तक यह दौर बना रहा।

1980 के बाद बाजार की ताकतों ने शिक्षा के स्वरूप को प्रभावित करना शुरू किया। इसके फलस्वरूप शिक्षा को लागत और लाभ की तुला पर देखा जाने लगा। बाजार की जरूरतों के अनुसार जानकारी और विषयों को शिक्षा में शामिल किया जाने लगा। एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम लागू करने का दबाव बना और शिक्षा के लिए राजकीय खर्च में कटौती की जाने लगी।

प्रश्न

- बाजार की जरूरतों और राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में क्या रिश्ता है ?
- क्या आप इस बात से सहमत हैं कि उच्चतर माध्यमिक स्तर पर प्रवेश, परीक्षा परिणामों के आधार पर होना चाहिए ? अपना कारण दीजिए ?
- कुछ लोगों का मानना है कि परीक्षा के आधार पर प्रवेश देने से कुछ विशिष्ट समाजिक वर्ग के लोग ही ऐसी शिक्षा तक पहुँच पाते हैं। क्या आप भी यह देखते हैं कि ऐसी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने वाले अधिकांश लोग साधन संपन्न परिवारों से होते हैं ?
- अगर उच्च स्तर पर प्रवेश छात्रों की रुचि पर ही हों और अन्य किसी बात पर न हो तो क्या फायदे व नुकसान होंगे ?

इंग्लैंड की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था

आज के इंग्लैंड में राजकीय विद्यालय पूरी तरह निःशुल्क हैं। लगभग 93 प्रतिशत बच्चे राजकीय विद्यालयों में पढ़ते हैं और केवल सात प्रतिशत बच्चे निजी विद्यालयों में पढ़ते हैं। निजी विद्यालय मँहगे होने के कारण सामान्य जन की पहुँच से बाहर थे।

बच्चे तीन साल की उम्र में नर्सरी विद्यालयों में प्रवेश लेते हैं। प्राथमिक शिक्षा 5 से 11 साल तक और माध्यमिक शिक्षा 11 से 18 साल की उम्र के लिए होती है। हाई स्कूल तक सभी बच्चों को समान रूप में शिक्षा दी जाती है। 5 साल से लेकर 18 साल की उम्र तक सभी बच्चों को शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य है।

गतिविधि :

- आपके अनुसार क्या यह एक उचित व्यवस्था है कि 7 प्रतिशत बच्चे उच्च श्रेणी के निजी विद्यालयों में पढ़ें और बाकी 93 प्रतिशत बच्चे राजकीय शाला में पढ़ें ? इसमें नुकसान किसका हो रहा होगा?
- लंबी लोकतांत्रिक और राष्ट्रवादी परंपरा के बावजूद इंग्लैंड में वर्ग आधारित शिक्षा कायम है। इसका वहाँ के समाज पर क्या असर हो सकता है?
- पता करें, राजस्थान में 6 से 14 साल के कुल बच्चों में से कितने प्रतिशत सरकारी विद्यालयों में पढ़ रहे हैं ?

2.1.2 जर्मनी में सार्वजनिक शिक्षा का विकास

जर्मनी का इतिहास कुछ अलग था। एक तो वह 19वीं सदी के उत्तरादर्ध तक कई छोटी–छाटी रियासतों में बँटा हुआ था। इनमें सबसे बड़ा और शक्तिशाली राज्य प्रशा का था। दूसरा जर्मनी में प्रायः लोकतंत्र कमजोर रहा और राजशाही और सामन्तशाही का प्रभुत्व रहा। यहाँ का मध्यम वर्ग और पूँजीपति वर्ग अपेक्षाकृत कमजोर रहा। जर्मनी के बारे में तीसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वहाँ औद्योगीकरण काफी देर से शुरू हुआ, इस मामले में वह इंग्लैंड की

तुलना में लगभग सौ साल पीछे था। इस कारण जर्मनी का इतिहास बीसवीं सदी के मध्य तक एक अलग ही धारा में चला।

प्रश्या के सामन्ती राज्य ने जर्मनी को एक आधुनिक राष्ट्र और राज्य तथा औद्योगिक शक्ति बनाने का नेतृत्व अपने कंधों पर ले लिया। 1869–71 में जर्मन रियासतों का विलय हुआ और एक केंद्रीय जर्मन साम्राज्य की स्थापना हुई। इस राज्य ने जर्मन लोगों में एक राष्ट्रवादी जुनून भरने का प्रयास किया तथा राज्य के संरक्षण और वित्तीय सहायता से औद्योगीकरण को आगे बढ़ाया। इस कारण जर्मनी में राज्य जीवन के हर स्तर पर हावी रहा, उसने राष्ट्र और उद्योग की जरूरतों को अपनी तरह से सब पर थोपा। जर्मनी में लोकतंत्र (लोगों की भागीदारी, लोकतांत्रिक अधिकार और स्वतंत्रता) काफी कमजोर रहा।

प्रश्या का राज्य पहले विश्व युद्ध के कारण समाप्त हुआ जब चार साल के अभूतपूर्व युद्ध में जर्मनी को हार देखनी पड़ी और उस पर अन्य विजयी राष्ट्रों ने अपनी मनचाही शर्तें लागू की। इन परिस्थितियों में जर्मनी में नाजीवाद उभरा, जिसने एक अति राष्ट्रवादी सिद्धांत को अपने चरम पर पहुँचाया। अडोल्फ हिटलर के नाजीवादी शासन ने एक ओर जर्मनी में औद्योगिक विकास किया (जो मुख्य रूप में शस्त्र उद्योगों पर आधारित था) और दूसरी ओर लोकतंत्र और वैकल्पिक सोच को बलपूर्वक समाप्त किया। साथ ही जर्मन लोगों में नस्लवाद फैलाया और सोची समझी रणनीति के तहत यहूदी और अन्य अल्पसंख्यकों का विनाश किया। हिटलर ने पड़ोसी राष्ट्रों पर हमला बोलकर 1939 इस्वी में द्वितीय विश्व युद्ध शुरू किया। लाखों लोगों तथा दर्जनों देशों की तबाही के बाद यह युद्ध पुनः जर्मनी की पराजय के साथ समाप्त हुआ।

1945 ईस्वी की पराजय के बाद जर्मनी को दो भागों में बाँटा गया, एक भाग सोवियत रूस के प्रभाव क्षेत्र में और दूसरा संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रभाव क्षेत्र में रहा। अंत में 1992 ईस्वी में दोनों भागों का विलय हुआ।

इस परिदृश्य में हम जर्मनी के सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था के विकास की चर्चा करेंगे।

प्रदर्श 2.5 जर्मनी की प्रमुख घटनाएँ

वर्ष	घटना
1869–1871	जर्मनी रियासतों का विलय एवं केंद्रीय जर्मन साम्राज्य की स्थापना
1945	जर्मनी दो भागों में विभाजित (सोवियत रूप एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रभाव क्षेत्र में)
1992	दोनों भागों का पुनः विलय

गतिविधि

आप 1800 ईस्वी से 2000 ईस्वी तक के भारत के इतिहास में जर्मनी की तुलना में क्या मुख्य समानताएँ और क्या अंतर देख पाते हो? वर्ष के आधार पर विवरण संकलित कर कक्षा में समूह चर्चा कीजिए।

प्रारंभ में प्रश्या आदि राज्यों में शिक्षा सामुदायिक और निजी हाथों में थी। ग्रामीण या शहरी समुदायों ने अपने–अपने स्तर पर शालाएँ बना रखी थी जहाँ अभिभावक अपने बच्चों को अपनी रुचि एवं स्थिति के हिसाब से भेजते थे। जैसे–जैसे प्रश्यन राज्य शक्तिशाली बनने लगा, उसने स्कूल को अपने उद्देश्यों के लिए उपयोग करने का प्रयास किया। सबसे पहले तो 1717 ईस्वी में यह कानून बना कि सब बच्चों को अनिवार्य रूप में शाला जाना है। (स्थानीय सामन्त उन बच्चों को छूट दे सकते थे जो खेतों में या कारखानों में काम करते थे।) बाद में यह कानून बना कि सारी शैक्षणिक संस्थाएँ चाहे वे विश्व–विद्यालय हों या स्कूल, राज्य द्वारा स्थापित और नियंत्रित होंगी, लेकिन

इसका क्रियान्वयन और वित्तीय प्रावधान स्थानीय इकाइयों को करना था। स्थानीय इकाइयों के पास इतने साधन नहीं थे कि वे स्कूलों का संचालन कर पाते। वे स्वतंत्रता प्रेमी स्कूलों व शिक्षकों को अपने नियंत्रण में भी नहीं ला पाए, इस कारण ये कानून कागज पर ही बने रहे।

शिक्षा में राज्य की भूमिका को लेकर विचार–विमर्श

प्रश्या–जर्मनी में शुरू से ही शिक्षा में राजकीय हस्तक्षेप को लेकर जोशीली बहस चली। एक तरफ वे लोग थे जो राष्ट्र निर्माण और औद्योगीकरण के लिए राजकीय हस्तक्षेप को जरूरी समझते थे और दूसरी ओर ऐसे लोग थे जो मानते थे कि लोगों की स्वतंत्रता, सामुदायिक और अकादमिक स्वायतत्ता के लिए राजकीय नियंत्रण घातक होगा। किसी न किसी रूप में आज भी विश्व भर में यह बहस चल रही है। आओ, जर्मन विवाद के कुछ नमूनों को देखें।

1787 ईस्वी में प्रश्या के न्याय मंत्री जेडलिट्श ने एक प्रस्ताव रखा कि राज्य द्वारा बड़ी मात्रा में विद्यालयों को स्थापित करना होगा जो उसके पूरे नियंत्रण में चलें। उसने कहा कि जर्मनी में तीन प्रमुख वर्ग हैं, एक बड़े जमींदार, दूसरा, किसान व शहरी मजदूर और तीसरा उच्च व्यवसायिक लोग और पूँजीपति। इनमें से किसानों के बच्चों को ग्रामीण विद्यालयों में जाना चाहिए और मजदूरों को शहरी विद्यालयों में। उच्च वर्ग के बच्चों को विशेष स्कूलों में जाना चाहिए जहाँ उन्हें विशिष्ट भूमिकाओं के लिए तैयार किया जायेगा। सभी प्रकार के स्कूलों की निगरानी करने व उनको नियंत्रित रखने के लिए एक विभाग का गठन हो जो सीधे सम्राट के प्रति जवाबदेह हो। इन प्रस्तावों को राजकीय स्वीकृति मिल गयी और क्रियान्वयन में लाने का प्रयास किया गया। लगभग इसी दौर में राज्य ने विश्वविद्यालय के शिक्षकों व प्राध्यापकों पर कठोर सेंसरशिप (विचार व्यक्त करने व सिखाने पर राजकीय नियंत्रण) लागू की।

इस तरह राज्य के बढ़ते नियंत्रण को लेकर शिक्षाविदों में वाद–विवाद शुरू हुआ। एक ने पूछा –

क्या इससे ऐसा नहीं होगा कि राज्य यह तय करने लगेगा कि किस बच्चे का क्या भविष्य होगा, किसे उच्च पद के लिए तैयार करना है और किसे गरीबी में जीने के लिए धकेलना है ?

क्या इससे माता–पिताओं की जिम्मेदारी और अधिकारों का हनन नहीं होगा ?

क्या यह उचित नहीं होगा कि शिक्षा की बातों को शिक्षाविदों पर ही छोड़ दें ?

इसके जवाब में कुछ विद्वानों का कहना था कि समाज में वर्ग भेद तो होगा ही, राज्य का यह दायित्व है कि वह प्रजा को अपनी–अपनी स्थिति को स्वीकार करने के लिए तैयार करे जो कि राज्य नियंत्रित शाला के माध्यम से हो सकता है। राज्य ही बच्चों के हितों की बेहतर रक्षा कर सकता है न कि माँ–बाप। राज्य परीक्षा के माध्यम से सुनिश्चित करें कि योग्य लोग ही उच्च शिक्षा हासिल करें। नागरिकों की शिक्षा राज्य का एक प्रमुख दायित्व है।

स्वतंत्रता प्रेमी बुद्धिजीवी और शिक्षाविद इसके विरुद्ध थे। जर्मन विश्व–विद्यालय व्यवस्था के संस्थापक और अनेक आधुनिक विषयों (जैसे भूगोल) के पितामह विल्हेम हम्बोल्ट ने अकादमिक और शैक्षणिक स्वतंत्रता और नागरिक स्वतंत्रता के पक्ष में अपनी आवाज बुलंद की। उन्होंने कहा कि इस तरह के अधिकार केवल लोकतांत्रिक राज्यों को दिए जा सकते हैं न कि राजशाही या सामंती राज्य को। शिक्षा का ध्येय व्यक्ति का और उसकी अंतर्निहित क्षमताओं का विकास करना है। इसे पहचानना और उसके अनुरूप शिक्षा देना राज्य की क्षमता के बाहर है, यह केवल स्थानीय शाला, समुदाय या शिक्षक कर सकते हैं। राज्य व्यक्ति को केवल प्रजा के रूप में देखता है न कि एक स्वतंत्र मनुष्य के रूप में। वह एक साँचे में ढले, एकरूप नागरिक तैयार कर सकता है न कि विविधतायुक्त मनुष्यों को। इस कारण राज्य को सार्वजनिक शिक्षा के बाहर ही रखना उचित है। उनकी यह भी मान्यता थी कि स्थानीय समुदायों और लोगों के समूहों को सुगठित होकर राज्य के प्रभाव का प्रतिरोध करना चाहिए और उन्हीं को शिक्षा की जिम्मेदारी भी उठानी चाहिए। सार्वजनिक शिक्षा ऐसी हो जो किसी को उच्च शिक्षा प्राप्त करने से न रोके और सबको उसका मौका

दे। शिक्षा पेस्टोलोजी के सिद्धांतों पर आधारित हो जो छात्र में अंतर्निहित क्षमताओं का विकास करे। जब 1809 में राजा ने उन्हें शाला व विश्वविद्यालयों की व्यवस्था बनाने की जिम्मेदारी दी तब उन्होंने इन नीतियों को लागू करने का प्रयास किया, लेकिन वर्तमान राज्य व्यवस्था में यह संभव नहीं था, अगले ही वर्ष उन्होंने इस्तीफा दे दिया।


हम्बोल्ट (1769–1859)
सार्वजनिक शिक्षा के समर्थक

हम्बोल्ट के विपरीत फिक्ट नामक एक दार्शनिक ने लिखा कि जर्मन राष्ट्र को संगठित करना है और स्थापित करना है तो राजकीय शिक्षा ही इसका साधन हो सकता है। इससे एक राष्ट्र, एक विचार और एक संस्कृति के मूलमंत्र को लेकर नागरिक तैयार होंगे, जो स्थानीयता और पृथकता को छोड़कर राष्ट्र के लिए समर्पित होंगे।

गतिविधि

क्या आप इस बात से सहमत हैं कि शासन को शिक्षा पर नियंत्रण रखना चाहिए और पाठ्यक्रम, परीक्षा आदि तय करना चाहिए। इसके लाभ व हानि की चर्चा करें।

क्या राज्य के हस्तक्षेप और नियंत्रण से शिक्षकों व ज्ञान निर्माताओं की स्वतंत्रता और स्वायत्तता पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। क्या यह लोकतंत्र के लिए हानिकारक होगा, भारतीय परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर चर्चा करें ?

क्या आप भी हमबोल्ट के इस विचार से सहमत हैं कि लोकतांत्रिक शासन को शिक्षा का नियंत्रण दिया जा सकता है। कारण सहित चर्चा करें ?

शिक्षा पर कसता राज्य का शिकंजा

1817 के बाद जर्मनी में रूढ़िवाद का दौर चला, शिक्षा में सामाजिक वर्ग आधारित शिक्षा, तथा धार्मिक शिक्षा प्रधान हुई तथा चर्च की भूमिका बढ़ गई। इसके चलते राज्य नियंत्रित चर्च के पादरी शिक्षक बने। यह माना गया कि गरीब ग्रामीण बच्चों को उदार शिक्षा देने से वे अपने निर्धारित काम छोड़कर दूसरे काम तलाशने लगेंगे और इस तरह समाज में उथल–पुथल मच जाएगी। यहाँ तक कि उन्हें गणित या अन्य विषयों के ऊँचे स्तर के पाठ पढ़ाना बंद हो गया। भूगोल, इतिहास आदि पढ़ाने की तो बात ही समाप्त हो गई।

1848 में प्रश्या के सामंती राज्य के विरुद्ध युवाओं की एक असफल क्रांति हुई जिसमें बुद्धिजीवी, मजदूर, कारीगर और छोटे पूँजीपति शामिल हुए। क्रांति की असफलता के बाद राज्य ने माना कि हो न हो स्कूलों व कॉलेजों में जिस उदारवादी सोच को सिखाया जा रहा है, उसी के कारण ऐसे विद्रोह की भावना पनप रही है। राजा ने स्वयं सभी स्कूलों को आदेश दिया कि आगे से ऐसी शिक्षा न दी जाए। पेस्टोलोजी के उदार सिद्धांतों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। शिक्षकों को आदेश था कि वे केवल साक्षरता और जोड़–बाकी की सीमित शिक्षा दें और अन्य कोई विषय न पढ़ाएँ। बच्चों को जानकारी प्रदान करवाएँ और उन्हें धर्मभीरू और आज्ञाकारी नागरिक बनने की शिक्षा दें।

1871 में प्रश्या के नेतृत्व में जर्मन राज्यों का विलय हुआ और जर्मनी एक राष्ट्र राज्य और साम्राज्य के रूप में उभरा। अब राज्य के संसाधन भी अधिक थे, सो केंद्रीय सरकार ने प्राथमिक विद्यालयों को व्यापक बनाया और उन्हें राजकीय नियंत्रण में ले आए। नये राष्ट्र में तेज औद्योगीकरण पर विशेष बल दिया गया। इसके लिए विज्ञान आदि विषयों के स्नातकों की जरूरत थी। इसके लिए नई विद्यालयों को स्थापित करने का दबाव बना और कई निजी शालाए स्थापित हुईं। उद्योगों में भी शिक्षित मजदूरों की माँग थी, उनके लिए व्यवसायिक शिक्षा का प्रबंध होना था लेकिन दूसरी ओर जर्मन शासन इस बात से आशंकित था कि अगर बहुत सारे लोग उच्च शिक्षा हासिल करके निकलते हैं तो समाज में असंतुलन पैदा हो जाएगा।

गतिविधि

आधुनिक जर्मनी के निर्माण में राष्ट्रवाद और औद्योगीकरण अधिक प्रभावशाली रहे और लोकतंत्र इनकी तुलना में कमजोर रहा। इसके क्या कारण थे ? चर्चा करें।

जर्मन शिक्षा व्यवस्था का प्रारूप

काफी विचार–विमर्श के बाद जर्मन शासन ने एक जटिल शिक्षा प्रणाली विकसित की। प्रारंभिक शिक्षा (6 से 10 साल की उम्र तक) तो सभी के लिए सामान्य थी मगर उसके बाद एक समूह जिसके बारे में मान्यता यह थी कि यह अकादमिक रूप में कमजोर है, को और चार साल के लिए व्यवसायिक शिक्षा दी जाती थी। जिन्हें अकादमिक रूप में अधिक सक्षम माना गया उनके लिए विज्ञान आदि आधुनिक विषय या साहित्यिक अध्ययन के लिए अलग–अलग विद्यालयों की व्यवस्था हुई। बच्चे के दस साल के होने पर अभिभावकों को यह बताना पड़ता था कि वे अपने बच्चे को किस तरह की शिक्षा देना चाहते थे, लेकिन बच्चे को किस दिशा में आगे बढ़ना है, इसका अंतिम निर्णय स्कूल के अधिकारियों का ही था। शासन यह तय करता था कि देश में अब कितने मजदूर चाहिए और कितने वैज्ञानिक या इंजिनीयर या अफसर। उसके अनुरूप बच्चों की आगे की शिक्षा की व्यवस्था होती थी। अधिकांश बच्चे व्यवसायिक शिक्षा में भेजे गये। उन्हें विश्वविद्यालय में प्रवेश नहीं मिल सकता था। केवल अकादमिक शिक्षा पाने वालों को वहाँ प्रवेश मिल सकता था। आमतौर पर मजदूरों व निम्न वर्ग के बच्चों को व्यवसायिक शिक्षा पाने भेजा गया और उच्च वर्ग के बच्चों को अकादमिक शिक्षा में। इस तरह समाज में प्रचलित वर्ग विभाजन को ही शिक्षा ने सुदृढ़ किया। कुछ इसी तरह की बात बालिका शिक्षा के संदर्भ में भी हुई।

जर्मन साम्राज्य मे यह मान्यता थी कि महिलाओं को घर संभालना है, बच्चों को पालना है और पुरुषों के सहायक के रूप में काम करना है। उनके लिए कुछ सीमित नौकरियाँ थीं जैसे शिक्षिका या नर्स। इस भूमिका को बनाए रखने के लिए लड़कियों के लिए अलग तरह के स्कूल थे जहाँ साक्षरता के अलावा स्त्रियोचित विषय (जैसे– पाकशास्त्र, सिलाई आदि) पढ़ाए जाते थे। इन्हें प्रायः उच्च अकादमिक विषयों की शिक्षा में प्रवेश उपलब्ध नहीं था, मगर धीरे–धीरे महिला आंदोलनों के दबाव में यह खोलना पड़ा। इस प्रकार जर्मनी में राज्य के नियंत्रण में उद्योगों की जरूरत को पूरा करने के लिए एक वर्ग आधारित शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ।

जर्मन राज्य ऐसी व्यवस्था चाहता था जो समाज के वर्तमान ढाँचे को न असंतुलित करे और न उथल–पुथल लाये। इसलिए उसने ऐसी शिक्षा व्यवस्था का निर्माण किया जो उन ढाँचों व असमानताओं को बनाए रखे। इसके लिए यह भी जरूरी था कि विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में जिस विषयवस्तु की चर्चा हो रही थी उस पर राज्य का नियंत्रण हो और शासन विरुद्ध किसी विचार के लिए अनुमति न हो। यह सीधे–सीधे लोकतांत्रिक सोच के विपरीत था।

गतिविधि

- किस उम्र में एक व्यक्ति का व्यवसाय और भविष्य निर्धारित किया जा सकता है, 10 वर्ष में, 16 वर्ष में, 18 वर्ष में या 21 वर्ष में ?
- क्या आपको लगता है कि एक बार किसी का व्यवसाय तय होने पर उसे आजीवन उसी व्यवसाय को करते रहना चाहिए, क्या कोई खेत मजदूरी से शुरू करके डॉक्टर या अफसर या कवि नहीं बन सकता है ?
- क्या नर्स आदि व्यवसाय केवल महिलाएँ अपना सकते हैं, पुरुष नहीं। क्या ऐसे कुछ व्यवसाय महिलाओं के लिए अधिक उपयुक्त हैं, कारण सहित चर्चा करें।

हिटलर के दौर में शिक्षा



हिटलर (1889– 1945)
''जर्मनी या तो एक विश्व शक्ति हो जाएगा या बिल्कुल भी नहीं होगा।''(अतिराष्ट्रवादी प्रशासन तथा शिक्षा के हिमायती)

प्रथम विश्व युद्ध में हार के बाद जो संकट जर्मनी में उत्पन्न हुआ उससे राष्ट्र को उभारने का वादा करते हुए 1933 में हिटलर सत्ता में आया। उसने एक उग्र राष्ट्रवाद को अपनाया और विपक्ष को हत्या व जेल आदि बल प्रयोग से समाप्त किया। उसका कहना था कि जर्मन नस्ल मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ है और उसे पूरी धरती पर शासन करना है। अन्य लोगों (जैसे यहूदी) के प्रति घृणा, और अन्य विचारधाराओं जैसे साम्यवाद या उदारवाद के प्रति असहनशीलता उसके सिद्धांतों में निहित था। उसकी नीतियों का परिणाम यह हुआ कि दूसरे विश्व युद्ध में अप्रत्याशित विनाश हुआ, लाखों यहूदी, समाजवादी और साम्यवादी मारे गये और अंत में 1945 में जर्मनी की हार और उसका विभाजन हुआ।

दुनिया में सार्वजनिक शिक्षा के विकास के इतिहास में जर्मनी के तानाशाह हिटलर (1933 से 1945) द्वारा अपनाई गई शिक्षा व्यवस्था सबसे अलग है क्योंकि यह नस्लीय आधार पर समाज को बाँटने और घृणा फैलाने वाली व्यवस्था थी, इसलिए इसको जानना आवश्यक है। यह घोषित रूप से कथित जर्मन नस्ल की श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए थी। हिटलर मानता था कि एक शक्तिशाली नात्सी समाज की स्थापना के लिए बच्चों को नात्सी समाज की घुट्टी पिलाना आवश्यक है। इसलिए स्कूल के भीतर और बाहर बच्चों पर नियंत्रण होना चाहिए। अतएव सभी स्कूलों में शुद्धीकरण की मुहिम चलाई गई। यहूदी या अन्य राजनैतिक सोच वाले शिक्षकों को पहले नौकरी से हटाया गया, फिर मौत के घाट उतार दिया गया। बच्चों को अलग–अलग बिठाया जाने लगा। जर्मन और यहूदी बच्चे ना तो एक साथ बैठ सकते थे, ना खेल सकते थे। बाद में यहूदी, जिप्सी और विकलांग बच्चों को स्कूल से निकाल दिया गया।

कथित रूप से शुद्ध जर्मन नस्ल के बच्चों को नात्सी शिक्षा प्रक्रिया से गुजारा जाता था। नस्लीय विचारों को सही ठहराने के लिए नस्ल विज्ञान नाम से एक नया विषय पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। बच्चों को सिखाया जाता था कि वे वफादार और आज्ञाकारी बनें। यहूदियों से घृणा करें और हिटलर की पूजा करें। बच्चों में हिंसा और आक्रामकता भरने के लिए खेलकूद का उपयोग किया जाता था।

14 साल की उम्र में सभी लड़कों को नात्सियों के युवा संगठन हिटलर यूथ की सदस्यता लेनी पड़ती थी। यहाँ वे युद्ध की उपासना, आक्रामकता और हिंसा, लोकतंत्र की निंदा और यहूदियों, कम्युनिस्टों और जिप्सियों से घृणा का सबक सीखते थे। 18 साल की उम्र में वे श्रम सेवा में शामिल होते थे। इसके बाद उन्हें सेना में काम करना होता था और किसी नात्सी संगठन की सदस्यता लेनी पड़ती थी। विद्यालयों में बताया जाता था कि औरतें बुनियादी तौर पर मर्दों से भिन्न होती हैं। इसलिए औरत और मर्दों के लिए समान अधिकारों की बात करना गलत है। लड़कियों को कहा जाता था कि उनका कर्तव्य एक अच्छी माँ बनना, शुद्ध नस्ल वाले बच्चों को जन्म देना और उनका पालन–पोषण करना है।

दूसरे विश्व युद्ध में हिटलर की हार तक वहाँ की शिक्षा व्यवस्था इसी तरह की बनी रही।

जर्मनी की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था

जर्मनी की वर्तमान व्यवस्था कुछ इस प्रकार है। इसका दायित्व प्रमुख रूप से प्रांतीय शासन का रहता है। सभी बच्चों के लिए शासन की ओर से पूर्व प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था है लेकिन यह सब के लिए अनिवार्य नहीं है। 6 साल से 17 साल की आयु तक सबको अनिवार्य शिक्षा के लिए स्कूल जाना पड़ता है। प्रथम चरण में सारे बच्चे एक साथ प्राथमिक शाला में छः से दस साल की उम्र तक पढ़ते हैं।

प्राथमिक शिक्षा पूर्णतया अनिवार्य और निःशुल्क है, और छात्रों को जरूरी सह अधिगम सामग्री (जैसे, पुस्तक, कैल्कुलेटर आदि) स्थानीय शासन द्वारा निःशुल्क या कम कीमत पर दी जाती है। घर से शाला पहुँचाने के लिए भी शासन द्वारा निःशुल्क परिवहन व्यवस्था की जाती है। प्राथमिक स्तर पर लगभग सभी बच्चे राजकीय विद्यालयों में जाते हैं और केवल तीन प्रतिशत बच्चे निजी विद्यालयों में जाते हैं।

चार साल की प्राथमिक शिक्षा के बाद शैक्षणिक योग्यता व रुचि के हिसाब से अभिभावक और विद्यालय तय करते हैं कि वे आगे किस तरह की शिक्षा प्राप्त करेंगे और कौन से माध्यमिक विद्यालय में प्रवेश लेंगे। माध्यमिक शिक्षा 10 से 18 वर्ष की आयु तक की होती है। माध्यमिक शालाएँ मुख्यतः तीन तरह की होती हैं :–

- पहली, सामान्य अकादमिक शिक्षा वाले स्कूल जहाँ बच्चों को कठिन अकादमिक परीक्षा के लिए तैयार करते हैं। इस परीक्षा से उत्तीर्ण होकर ही कोई विश्वविद्यालयों में प्रवेश पा सकता है और वहाँ से उच्च प्रबंधकीय नौकरियाँ पा सकता है।
- दूसरी, ऐसे बच्चों के लिए जिन्हें मध्यम वर्गीय नौकरियों के लिए तैयार किया जाता है। इनमें सामान्य विषयों के साथ–साथ मध्यम वर्गीय व्यवसायों से संबंधित शिक्षा दी जाती है।
- तीसरी, वे शालाएँ हैं जो औद्योगिक काम के लिए बच्चों को तैयार करती हैं। इनमें पाठ्यक्रम व्यवसाय केंद्रित होते हैं। (व्यवसाय कई तरह के होते हैं, औद्योगिक, कारीगरी, कृषि, आदि)

दूसरी व तीसरी प्रकार की विद्यालयों में दसवीं कक्षा की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर नवयुवक एक विशेष व्यवस्था में शामिल होते हैं। इसे व्यवसायिक प्रशिक्षु व्यवस्था कह सकते हैं। इसके अंतर्गत छात्र किसी कंपनी में प्रशिक्षु के रूप में दाखिला ले लेते हैं और साथ–साथ हफ्ते में दो दिन शासन द्वारा संचालित व्यवसायिक शिक्षा संस्थानों में भी जाते हैं। इस दौरान कंपनी में उन्हें कई तरह के कामों में भाग लेने का अवसर मिलता है और प्रशिक्षु भत्ता भी मिलता है। दो–तीन साल के इस पाठ्यक्रम को पूरा करने के बाद वे किसी भी कंपनी में काम करने के लिए तैयार हो जाते हैं। इससे आगे वे औद्योगिक काम से संबंधित उच्च शिक्षा के डिप्लोमा लेकर कुशल मजदूर बन सकते हैं। जर्मनी के उच्च शिक्षा संस्थानों में से आधे से अधिक तकनीकी व औद्योगिक शिक्षा से संबंधित हैं। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि जर्मनी की शिक्षा व्यवस्था समाज में कुशल कारीगर व मजदूर तैयार करने पर काफी जोर देती है। इसी कारण पूरे विश्व में जर्मन मजदूरों की कार्यकुशलता प्रसिद्ध है। यही नहीं, यहाँ औद्योगिक मजदूरों का वेतन स्तर काफी अधिक है और एक कुशल मजदूर की कमाई किसी विश्वविद्यालय शिक्षित व्यक्ति की कमाई के बराबर या अधिक भी हो सकती है।

सन् 2000 के आँकड़ों के अनुसार लगभग 55 प्रतिशत छात्र तीसरी (व्यवसायिक) धारा में पढ़ रहे थे, जबकि 34 प्रतिशत छात्र दूसरी (मध्यम व्यवसाय) धारा में पढ़ रहे थे और केवल 11 प्रतिशत अकादमिक धारा में थे।

पिछले कई दशकों से जर्मन शिक्षा प्रणाली की आलोचना इस बात को लेकर हुई है कि वह कम उम्र से ही बच्चों के बीच व्यवसायिक चयन का दबाव डालती है और आगे जाकर व्यवसाय बदलने या चुनाव करने के लिए जगह नहीं देती है। इस आलोचना के चलते आज यह प्रयास है कि विभिन्न तरह के विद्यालयों के बीच आने–जाने की संभावना बने और बच्चों को विभिन्न स्तरों पर अपनी धारा बदलने के मौके मिलें।

धार्मिक शिक्षा

जर्मन संविधान में हर नागरिक को किसी भी धर्म को मानने या न मानने की स्वतंत्रता दी गई है और यह भी कहा गया है कि राज्य किसी विशेष धर्म के प्रति रुझान नहीं रखेगा। फिर भी राजकीय विद्यालयों में सभी स्तरों पर धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था है। अभिभावकों को यह अधिकार है कि वे तय करें कि अपने बच्चों को विद्यालय में धार्मिक शिक्षा देना चाहते हैं या नहीं, और अगर देना चाहते हैं तो किस धर्म की शिक्षा देना चाहते हैं। विद्यालयों में यथासंभव उस

धर्म की शिक्षा भी दी जायेगी लेकिन 12 या 14 साल के उम्र के बाद छात्रों को यह स्वतंत्रता होगी कि वे धार्मिक शिक्षा लेना चाहते हैं कि नहीं, और अगर हाँ तो किस धर्म की।

प्रश्न :

- भारतीय शिक्षा प्रणाली और जर्मन प्रणालियों में आपको क्या समानता व अंतर दिखते हैं ?
- क्या आप यह कह सकते हैं कि जर्मनी में राष्ट्रवाद और औद्योगीकरण की जरूरतें शिक्षा पर हावी रहे हैं? जर्मनी की शिक्षा व्यवस्था में वे कौन से तत्व हैं, जो आपके अनुसार भारत को अपनाना चाहिए, कारण सहित बताएँ ?
- संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद जर्मनी में कई अल्प संख्यक धर्मों (जैसे– इस्लाम, हिंदू आदि) की शिक्षा की व्यवस्था नहीं हो पाती है। ऐसे में क्या स्कूल में धार्मिक शिक्षा का यह प्रावधान धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंघन नहीं होगा, विचार करें ?

2.1.3 अमेरिका में सार्वजनिक शिक्षा का विकास

उत्तरी अमेरिका में 16 वीं शताब्दी से यूरोप के लोग बसने लगे। वहाँ पर इंग्लैंड और अन्य यूरोपीय देशों के उपनिवेश विकसित हुए। इनमें यूरोप के विभिन्न देशों से आए किसान, कारीगर, व्यापारी आदि थे, जो विभिन्न ईसाई सम्प्रदायों को मानने वाले थे। ये अमरीका की धार्मिक स्वतंत्रता और खेती की जमीन की उपलब्धता से आकर्षित होकर यहाँ बसे। इन लोगों ने यहाँ बसे आदिवासियों को उनकी जमीन से खदेड़ दिया और खुद बस गए। इसी दौरान अमेरिका में अफ्रीका महाद्वीप से लाए गए अश्वेत दासों को बसाने की प्रक्रिया भी शुरू हुई। इस तरह लाखों अफ्रीकी लोगों को गुलामी करने के लिए जबरन लाकर अमेरिका में बसाया गया। इस तरह अमेरिका में तीन तरह के लोग हुए। स्वतंत्र यूरोपियन लोग, गुलाम अफ्रीकी लोग और खदेड़े गए अमरीकन आदिवासी।



होरेस मान(1796–1859)
मानवतावाद के समर्थक

सन 1776 में इंग्लैंड के उपनिवेश से मुक्त होकर स्वतंत्र संयुक्त राज्य अमेरिका का गठन हुआ। यह स्वतंत्र राज्य राजतंत्र ना होकर प्रजातांत्रिक था, जिसमें धार्मिक और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। पर यह स्वतंत्रता अफ्रीकन दासों और अमेरिकन आदिवासियों को उपलब्ध नहीं थी।

अमेरिका के प्रजातंत्र के सिद्धांत में नागरिक को सर्वोच्च अधिकार प्राप्त थे, जिसमें अपने बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था अपनी रुचि के अनुरूप करना सम्मिलित था। छोटे समुदाय खुद तय करते थे कि वे किस तरह की शिक्षा चाहते हैं लेकिन राष्ट्र निर्माण की जरूरतें कुछ अलग भी थी। अमेरिका में लोगों के अलग–अलग संस्कृतियों और ईसाइयत के विभिन्न पंथों में बँटे होने के कारण नए राष्ट्र को एकसूत्र में बाँधना एक चुनौती थी। सभी नागरिकों को एक सूत्र में बाँधने के लिए एक जैसी शिक्षा की भी जरूरत थी।

सभी नागरिकों को एक सूत्र में बाँधने के लिए अमेरिका के संविधान में यह प्रावधान रखा गया कि राज्य किसी प्रकार धर्म के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा और न ही वह किसी धर्म को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मदद करेगा। यानी किसी राजकीय शाला में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती थी। साथ ही हर नागरिक को यह स्वतंत्रता थी कि वह किसी भी धर्म को माने या न माने। इन प्रावधानों से यह तो सुनिश्चित हुआ कि किसी भी धर्म को मानने वाले अमेरिका में समान व्यवहार की अपेक्षा कर सकते थे, लेकिन सब को एक सूत्र में बाँधने के लिए और कदमों की

जरूरत थी।

इसी कश्मकश के बीच अमेरिका में सार्वजनिक शिक्षा के विकास की प्रक्रिया शुरू हुई। 1830 ईस्वी से 1860 ईस्वी का समय अमेरिका के इतिहास में स्कूल सुधार का समय माना जाता है। इससे पहले विभिन्न संप्रदायों को मानने वाले समुदाय अपने अपने चर्च और निजी प्रयासों के माध्यम से अपने बच्चों को शिक्षित करते थे। स्कूल व्यवस्थाएँ कम समय के लिए, अनियमित और अव्यवस्थित थीं। शिक्षकों को विशेष प्रशिक्षण प्राप्त नहीं था और शैक्षणिक सामग्री का अभाव था। इसकी जगह एक सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली स्थापित करने का श्रेय मेसाचुसेटस राज्य के नेता होरेस मान (1796–1859) और उनके सहकर्मियों को जाता है।

वे विभिन्न सम्प्रदायों के बीच व्याप्त आपसी वैमनस्य और संघर्ष की संभावनाओं से और अव्यवस्थित स्कूल व्यवस्था से चिंतित थे। होरेस मान ने कहा कि धार्मिक पंथ और संस्कृतियों के बीच मतभेद लोकतंत्र के सिद्‍धांत और राष्ट्रीय विकास में बाधा हैं। उन्होंने इसके हल के रूप में 'कॉमन स्कूल' का विचार दिया, जिसमें सारे सम्प्रदाय के बच्चे एक साथ पढ़ेंगे। इनको सामुदायिक प्रशासन स्थानीय करों की मदद से चलाएगा। वे शिक्षक प्रशिक्षण और सहायक पठन सामग्री की व्यवस्था भी करेंगे। चर्च से अलग होकर शिक्षा देने पर इसमें सभी विचारधारा के बच्चों का समावेश किया जा सकता है। होरेस मान के विचारों का विरोध भी हुआ। स्कूल को चर्च से अलग करने का विरोध करते हुए चर्च के नेताओं ने कहा कि चर्च से अलग होकर स्कूल ईश्वरहीन और अनैतिक हो जाएँगे।

कामन स्कूल का संचालन स्थानीय नागरिकों द्‍वारा चुने गए प्रतिनिधि करते थे। इसके लिए सभी नागरिकों से कर लिया जाता था। इस कर के पीछे यह तर्क था कि शिक्षा का फल केवल उस व्यक्ति को ही नहीं, बल्कि पूरे समाज को मिलता है और इसलिए पूरे समाज को इसका वहन करना चाहिए। इसका भी विरोध हुआ।

फिर भी मेसाचुसेटस में होरेस मान द्‍वारा किए गए स्कूल सुधार के काम का सकारात्मक प्रभाव धीरे–धीरे पूरे अमेरिका पर पड़ा। और उनके द्‍वारा प्रतिपादित समान स्कूल प्रणाली अमेरिका की सार्वजनिक शिक्षा का आधार बनीं।

प्रदर्श 2.6 अमेरिका में शिक्षा के प्रवसन की अवस्थाएँ

अवसर भूमि के रूप में प्रवसन (माइग्रेशन)
↓
धार्मिक शिक्षा का प्रचलन (समस्या ग्रस्त)
↓
संयुक्त राज्य अमेरिका का गठन (संविधान / लोकतंत्र)
↓
धर्म निरपेक्षता आधारित शिक्षा का सार्वजनीकरण

गतिविधि

- अमेरिका में लोकतंत्र और राष्ट्रवाद ने किस तरह वहाँ की शिक्षा व्यवस्था को रूप दिया, कक्षा में चर्चा करें ?
- राज्य के स्कूलों में धार्मिक शिक्षा देने से वहाँ की राष्ट्रीय एकता को क्या खतरा था? अपने सुझाव समूह चर्चा में प्रस्तुत करें।

अमेरिकन आदिवासियों की शिक्षा

अमेरिकन आदिवासियों के लिए शिक्षा एक व्यापक अनौपचारिक प्रक्रिया थी। ये उनके रोज के काम और जिंदगी का अविभाज्य हिस्सा थी। आदिवासियों के बच्चे वयस्कों के साथ शिकार व अन्य काम करते हुए सीखते थे। उनके

वयस्क उनके विश्वासपात्र शिक्षक की तरह थे। बच्चे उनसे अपने पुरखों की कहानियाँ सुनते हुए इतिहास जानते थे। अपने आस–पास की सामाजिक, राजनैतिक और प्राकृतिक परिघटनाओं में भागीदारी और उचित व्यवहार करने के तरीके सीखते थे।

जब यूरोपियन उनके इलाके में आए, तब आदिवासियों और उनमें लड़ाइयाँ हुई, जिनमें आदिवासी हार गए। इन लड़ाइयों में बहुत से आदिवासी मारे गए। उन्हें जबरन एक अलग आरक्षित इलाके में रहने के लिए धकेल दिया गया। विजेता यूरोपियनों ने देखा कि आदिवासियों की जीवन शैली और मूल्य औद्योगिक समाज से अलग हैं। उनकी जिन्दगी में सामूहिकता की जगह सबसे ऊपर है। इस स्थिति ने विजेता यूरोपियनों को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे आदिवासियों की जीवन शैली और विश्वासों को पूरी तरह बदल दें। उनकी पारंपरिक संस्कृति का उन्मूलन कर उन्हें आधुनिक जीवन मूल्य सिखाए जाएँ। इस उद्देश्य को पाने का तरीका यह था कि आदिवासियों के बीच आक्रामक शिक्षा अभियान चलाया जाए। इसके लिए ईसाई मिशनरियों ने उनके बीच स्कूल शुरू किए। इनमें उन्हें व्यवसायिक कौशल और बुनियादी साक्षरता सिखाई जाती थी। अमेरिकी सरकार की शांति नीति के अनुसार 1824 ईस्वी में ब्यूरो आफ इंडियन अफेयर की स्थापना की गई। इसको आदिवासियों की शिक्षा के संचालन की जिम्मेदारी भी दी गई।

1870 ईस्वी में इसके द्वारा संचालित 150 स्कूलों में कई हजार आदिवासी बच्चे पढ़ रहे थे। 18वीं सदी में आदिवासियों की शिक्षा के लिए अन्य प्रयोग भी हुए। पर इसमें से ज्यादातर को सीमित सफलता ही मिली। इनमें से एक तरीका उनके लिए बोर्डिंग स्कूल चलाना था।

बोर्डिंग स्कूल

आदिवासियों के जो बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, उनमें से लगभग 80 प्रतिशत बच्चे उस समय बोर्डिंग स्कूल में पढ़ रहे थे। उनको दी जा रही शिक्षा का चरित्र समझने के लिए इनका उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। 1879 ईस्वी में एक पूर्व सेना अधिकारी रिचर्ड हेनरी प्राट ने आदिवासी अमेरिकनों के लिए बोर्डिंग स्कूल शुरू किया। यह बोर्डिंग स्कूल जल्दी ही एक 'मॉडल' बन गया और पूरे अमेरिका में इसकी तर्ज पर कई बोर्डिंग स्कूल खुल गए।



बुकर टी वाशिंगटन
(1856–1915)
''ताकत प्रदर्शित करने के दो तरीके है ; या तो किसी को गिराना अथवा किसी को उठाना।''
(वे दूसरे पक्ष के हिमायती)

इन स्कूलों में बच्चों को उनके परिवारों से और सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश और क्रियाकलापों से दूर रखा जाता था। बच्चों से अपेक्षा की जाती थी कि वे अपनी भाषा और संस्कृति छोड़कर यूरोपियन अमेरिकनों की तरह बनें। इसके लिए बच्चों को एक–एक महीने के लिए यूरोपियन परिवारों के साथ भी रखा जाता था। इन परिवारों में कई बच्चे शोषण का शिकार होते थे। बहुत से बच्चे रात के अँधेरे में स्कूल छोड़कर भाग भी जाते थे। बावजूद इसके अभिभावक अपने बच्चों को इन स्कूलों में भेजते थे। उनको लगता था कि इन स्कूलों में पढ़कर उनका जीवन बेहतर हो सकेगा।

गतिविधि

- राजस्थान में रह रहे आदिवासियों की शिक्षा को लेकर किस तरह के विचार प्रचलित हैं, इनमें और बोर्डिंग स्कूल में आप किस तरह की समानता देखते हैं ?
- मान लें कि आप एक ऐसे बोर्डिंग स्कूल के विद्यार्थी हैं, जहाँ पर आपकी भाषा और रहन–सहन का प्रवेश वर्जित है, कल्पना के आधार पर यहाँ बिताए एक दिन की डायरी लिखें।

अश्वेत अमेरिकनों की शिक्षा

अमेरिका में सार्वजनिक शिक्षा के विकास के बारे में पढ़ते हुए हमने जाना कि अफ्रीका से आए अश्वेत अमेरिका में बस गए थे। 1860 ईस्वी में दास प्रथा के उन्मूलन के बाद भी उनकी स्थिति नहीं बदली। वे दूसरे दर्जे के नागरिक बने रहे। गोरे अमेरिकनों को प्राप्त नागरिक अधिकारों से वे वंचित थे। जब गुलामी की प्रथा समाप्त की गई तो अश्वेतों लिए अलग स्कूल स्थापित हुए। नागरिक अधिकार आंदोलन के दबाव में 1954 में अश्वेतों के लिए अलग स्कूल होने को न्याय विरुद्ध घोषित किया गया। इसके बाद हर वर्ग के बच्चे को एक ही शाला में प्रवेश मिलने लगा।

अश्वेतों की शिक्षा कैसी हो ?

अश्वेतों की शिक्षा के बारे में 19 वीं सदी के अंत तक बहस चलती रही। उनकी शिक्षा को आकार देने में दुबोइस और बुकर टी. वाशिंगटन के परस्पर विरोधी विचारों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। दुबोइस एक उच्च शिक्षा प्राप्त अफ्रीकी अमरीकन थे। वे लोकतंत्र और समानता के पक्षधर थे। उनका मानना था कि नैतिक और व्यवसायिक शिक्षा अश्वेतों के लिए अभिशाप है, क्योंकि इस तरह की शिक्षा के कारण वे अपनी सामाजिक राजनैतिक स्थिति को समझ नहीं पाते। दुबोइस चाहते थे कि अश्वेतों में जागरूक और विचारवान नेतृत्व उभरे, जो उनके साथ नस्लीय आधार पर हो रहे अत्याचार और अन्याय को समझते हुए अश्वेतों के जीवन स्तर को उठाने में भूमिका निभा सके। इसके विपरीत वाशिंगटन अश्वेतों में नैतिक विकास और व्यवसायिक शिक्षा पर जोर देते थे। उसका कहना था कि अश्वेतों को अपनी स्थिति को स्वीकार करना चाहिए। उनको अपने विकास के लिए गोरों की तरफ देखना चाहिए। वाशिंगटन का मत था कि शारीरिक श्रम के बल से विद्यार्थियों में आत्म अनुशासन और आत्मविकास की प्रवृत्ति आती है। अश्वेतों की यथास्थिति को बनाए रखने वाले वाशिंगटन के विचार गोरों में बहुत लोकप्रिय हुए। कुछ ही दशकों में वह अश्वेतों की शिक्षा का प्रमुख प्रस्तावक बन गया।



दुबोइस (1868–1963)
सामाजिक न्याय के समर्थक

लोकतंत्र और समानता के पक्षधर दुबोइस और उसके जैसे अन्य लोग वाशिंगटन के शिक्षा दर्शन के विरुद्ध थे। इन्होंने 1909 में असमानता के विरुद्ध लोगों को जागरूक करने के लिए 'नियाग्रा अभियान' शुरू किया। जल्द ही इसने 'नेशनल एसोसिएशन फार द एडवांसमेंट आफ कलर्ड पीपुल' (एनएएसीपी) नामक नागरिक अधिकार संगठन का रूप ले लिया। अश्वेतों द्वारा किए गए बहुत लम्बे और कठोर संघर्ष के बाद 1954 ईस्वी में अश्वेतों के नागरिक अधिकार बहाल किए गए। जिससे शिक्षा में अश्वेतों के साथ किया जाने वाला भेदभाव सिद्धांत रूप में समाप्त हो गया।

गतिविधि

आपके क्षेत्र में रह रहे वंचित समुदाय के विकास में, वाशिंगटन और दुबोइस में से किसका सुझाया तरीका प्रभावी होगा ? कारण सहित समूह चर्चा करें।

माध्यमिक स्कूलों का उदय

मान जैसे लोगों के प्रयास से 19वीं सदी के अंत तक लगभग सभी बच्चे किसी न किसी सार्वजनिक शाला में नामांकित थे लेकिन अभी भी माध्यमिक शिक्षा सीमित ही रही क्योंकि करदाता इस बात को लेकर सहमत नहीं थे कि उनके पैसों का उपयोग इसके लिए किया जाये। उस समय जो माध्यमिक स्कूल बने थे उनमें केवल पैसे वाले जा पाते थे और प्रवेश के लिए कठिन परीक्षा देनी पड़ती थी लेकिन जैसे–जैसे 19 वीं सदी में औद्योगीकरण तेज हुआ

माध्यमिक शिक्षा की जरूरत सब लोग महसूस करने लगे और माध्यमिक स्कूल स्थापित होने लगे। ये हाईस्कूल सभी बच्चों के लिए थे। इनका संचालन स्थानीय समुदाय से कर व अनुदान लेकर किया जाता था।

अमेरिका की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था

अमरीका के स्कूल स्थानीय समुदाय द्वारा संचालित किए जाते हैं। हर क्षेत्र की एक जिला शिक्षा समिति होती है, जिसके पास स्कूल संचालन के व्यापक अधिकार होते हैं। स्कूल में क्या पढ़ाया जाएगा व कैसे पढ़ाया जाएगा, यही समिति तय करती है। इनके संचालन का खर्च स्थानीय समुदाय से कर लेकर तथा राज्य और केन्द्र सरकार के अनुदान से जुटाया जाता है। इस कारण अमीर वर्ग के क्षेत्रों के स्कूल ज्यादा सुविधा संपन्न होते हैं, क्योंकि उनको स्थाानीय समुदाय से ज्यादा अनुदान मिलता है। एक क्षेत्रों के सभी बच्चे, चाहे उनकी आर्थिक व सामाजिक स्थिति अलग–अलग हो, एक ही स्कूल में पढ़ते हैं। ज्यादातर बच्चे, लगभग 90 प्रतिशत इन स्कूलों में पढ़ते हैं। निजी स्कूल बहुत महंगे हैं। कुछ बेहद संपन्न लोग ही इनका खर्च वहन कर पाते हैं।

सभी बच्चे उच्चतर माध्यमिक स्तर तक एक सी शिक्षा पाते हैं। वर्तमान में अमेरिका के लगभग 85 प्रतिशत बच्चे उच्चतर माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा पाते हैं। लगभग 75 प्रतिशत बच्चे आगे की पढ़ाई के लिए कॉलेज में प्रवेश लेते हैं।

पिछले कुछ सालों से स्कूल संचालन के काम में राज्य और केंद्र सरकार का हस्तक्षेप बढ़ने लगा है। सरकार का तर्क है कि शैक्षणिक स्तर में गुणवत्ता और समानता लाने के लिए स्कूल संचालन के काम में सरकार की भूमिका आवश्यक है–

1960 के दशक से अमेरिका में यह चिंता बनी हुई है कि सबके लिए समान शिक्षा का सिद्धांत जो कि लोकतंत्र के लिए आवश्यक है, उस देश में कायम नहीं हो पा रहा है। 1954 ईस्वी में वहाँ के सर्वोच्च न्यायालय ने अश्वेत और गोरे बच्चों के लिए अलग स्कूल की बात को अस्वीकार करते हुए आदेश दिया कि समानता का अधिकार तभी व्यावहारिक हो सकता है जब सबके लिए समान स्कूल हो। इस निर्देश के तहत स्कूलों के प्रवेश में भेदभाद समाप्त किया गया।

1983 में, राष्ट्र खतरे में, शीर्षक से अमेरिकी शिक्षा की एक समीक्षा प्रकाशित हुई, जिसमें यह कहा गया कि अमेरिकी शिक्षा में उपलब्धि स्तर बहुत निम्नतर है और अगर इसका निदान नहीं किया जाता तो अमेरिका को विश्व स्तर पर पराजित होना पड़ेगा। इस रपट के चलते कई कदम उठाए गए, और 1989 में एक कानून पारित हुआ जिसमें सन् 2000 तक पूरे देश में स्कूली शिक्षा के स्तर में सुधार की रणनीति की घोषणा हुई। इसके तहत उठाए कदमों के बावजूद 2000 तक यह स्पष्ट हुआ कि अमेरिका में अच्छी शिक्षा तक बहुत से बच्चों की पहुँच ही नहीं है, गरीब व अल्पसंख्यक समुदायों के बच्चे बहुत पिछड़ रहे हैं। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण यह बताया गया कि वे जिस तरह के स्कूलों में जा रहे हैं वहाँ उनके विरूद्ध भेदभाव किया जाता है और तो और उन स्कूलों के पास पर्याप्त धनराशि नहीं है क्योंकि उन गरीब क्षेत्रों में स्थानीय करों से पर्याप्त धन इकट्ठा नहीं हो रहा है। इन सब बातों को देखते हुए केंद्रीय सरकार ने 2002 में एक कानून पारित किया जिसका नाम था, कोई बच्चा पीछे न रह जाए। इसके तहत उठाए गए कदमों में दो तरह के प्रयास थे– पहला, पालकों को वैकल्पिक विद्यालयों में अपने बच्चों को भेजने के लिए वित्तीय सहायता देना। अगर पालकों को यह लगता है कि उनके बच्चे खराब स्कूल के कारण पिछड़ रहे हैं, वे अपने बच्चों को किसी

प्रदर्श 2.7 अमेरिका में सार्वजनिक शिक्षा की प्रमुख घटनाएँ

- 1954 समान स्कूल की आवश्यकता पर बल
- 1983 'राष्ट्र खतरे में' शीर्षक से समीक्षा प्रकाशित
- 1989 स्कूली शिक्षा के स्तर में सुधार की रणनीति की घोषणा
- 2002 'कोई बच्चा पीछे न रह जाए' नाम से कानून पारित

अच्छे स्कूल में प्रवेश दिला सकते हैं। इसका खर्च (परिवहन सहित) केंद्र सरकार उठाएगी। दूसरा यह कि बच्चों की उपलब्धि के आधार पर स्कूलों व शिक्षकों की मानीटरिंग करना, ताकि वे योजनाबद्ध तरीके से बच्चों की शैक्षणिक उपलब्धि को बढ़ा पाएँ।

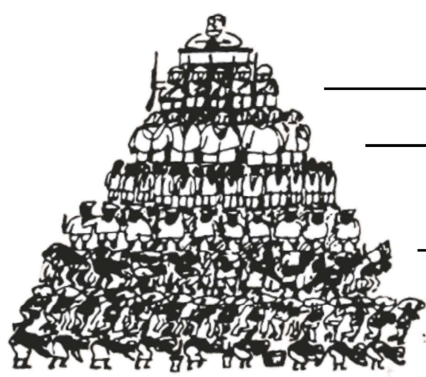
इन कार्यक्रमों के कारण धीरे–धीरे केंद्र सरकार का हस्तक्षेप शिक्षा में बढ़ते जा रहा है। यह एक तरह से अमेरिका की लोकतंत्रात्मक शिक्षा व्यवस्था के मूल तत्त्वों के विरुद्ध है।

गतिविधि

क्या आप इस कथन से सहमत हैं कि शैक्षणिक स्तर में गुणवत्ता और समानता लाने के लिए स्कूल संचालन के काम में केंद्रीय सरकार की भूमिका आवश्यक है ? कारण सहित कक्षा में चर्चा करें।

2.1.4 तुलनात्मक विवेचना

प्रदर्श 2.8 विभिन्न व्यवसायगत वर्गों में विभाजन का पिरामिड़



एक जैसी प्रक्रियाओं (राष्ट्रराज्य, लोकतंत्र और औद्योगीकरण) से निकलकर विकसित होने के बावजूद शिक्षा व्यवस्थाओं में भिन्नता दिखाई देती है। इनके बीच जो महत्त्वपूर्ण अंतर हैं, उन्हें निम्नलिखित पाँच आधारों पर देखा जा सकता हैं–

1. विद्यार्थियों का उच्च और निम्न शिक्षा में जाने के लिए विभाजित किया जाना है।
2. विभिन्न देशों के बीच वह अनुपात जिसमें विद्यार्थी अकादमिक या व्यवसायिक शिक्षा पाना।
3. वह सीमा जिस तक व्यवसायिक शिक्षा श्रम बाजार से मजबूती से या कमजोरी से जुड़ना।
4. विद्यार्थी विश्वविद्यालय स्तर की उच्च शिक्षा पाना।
5. वह सीमा जिस तक श्रेष्ठ विश्वविद्यालयों का एक अलग समूह उच्च स्तर की नौकरियों से जुड़ना।

सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्थाओं के परिणामों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि बच्चों को शिक्षा की विभिन्न धाराओं में विभाजित करना एक तरह का व्यवसायगत विभाजन भी है। अगर कहीं पर व्यवसाय के आधार पर लोगों से भेदभाव किया जाता हो तो यह सामाजिक विभाजन भी बन जाता है। इस नजरिये से देखने पर हम पाते हैं कि जर्मनी की शिक्षा प्रणाली में लगभग 10 साल की उम्र में बच्चों को विभिन्न श्रेणियों में बाँट दिया जाता है। पर वहाँ पर तकनीकी काम करने वाले लोगों का वेतन भी अकादमिक काम करने वाले प्रोफेसर या विषय विशेषज्ञ चिकित्सक के समकक्ष है, इसलिए व्यवसाय के आधार पर लोगों का जीवन स्तर तय नहीं होता।

प्रश्न : क्या आप जर्मनी की शिक्षा व्यवस्था को वर्ग विभाजन की व्यवस्था मानेंगे?

इसकी तुलना में अमेरिका की प्रणाली दुनिया की सबसे अधिक विस्तारी व खुली प्रणाली है। इससे वहाँ का लोकतंत्र मजबूत हुआ। पर अमरीका और इंग्लैंड में भी भारत की तरह शिक्षा व्यवस्था समाज में वर्ग विभाजन को बढ़ावा देते हैं। वहाँ प्रतिष्ठित व सामान्य महाविद्यालय और विश्वविद्यालय हैं, जो अलग–अलग सामाजिक वर्ग बनाते हैं। जर्मनी की शिक्षा प्रणाली का नौकरियों से मजबूत रिश्ता है, जबकि अमेरिका और इंग्लैंड की शिक्षा प्रणालियों का नौकरियों से संबंध कमजोर है।

शिक्षा पर इस बात का प्रभाव भी पड़ता है कि उसके लिए वित्त की व्यवस्था कहाँ से की जाती है, और उस पर नियंत्रण किसका है। अमेरिका में नियंत्रण और वित्त दोनों ही स्थानीय समुदाय से जुटाए जाते हैं। इसलिए अमेरिका के विद्यालय समुदाय की रुचियों और सरोकारों के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। पर स्थानीय समुदाय से शिक्षा का खर्च जुटाने का असर यह होता है कि जिस शैक्षिक जिले में अमीर लोग रहते हैं, वहाँ शिक्षा पर अधिक कर मिलता है। जिससे वे स्कूलों के लिए बढ़िया साजोसामान, सुविधाएँ वगैरह जुटा पाते हैं। गरीब इलाकों में इससे उल्टा होता है। पर जर्मनी जैसे एक केंद्रीयकृत शिक्षा प्रणाली में इसकी संभावना कम हो जाती है, क्योंकि कम हो या ज्यादा, पर सभी जगह एक सा खर्च किया जा रहा होता है।

समय के साथ अलग–अलग शिक्षा प्रणालियाँ समान होने की तरफ जा रही हैं। पूरे औद्योगिक जगत में यह अनिवार्य है कि बच्चे 6 से 15 साल तक अनिवार्य रूप से स्कूल की पढ़ाई करें। विभिन्न देशों से यह आग्रह भी है कि वे उच्चतर शिक्षा को सबके लिए सुलभ बनाएँ, जिससे गरीब वर्ग के छात्रों को अधिक अवसर मिल सकें।

गतिविधि

अमेरिका और इंग्लैंड में शिक्षा व्यवस्था में खुलापन होने के बाद भी ये किस प्रकार सामाजिक वर्ग को बढ़ावा देती हैं? अपने विचार प्रस्तुत करें।

2.2 सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्थाओं की आलोचना

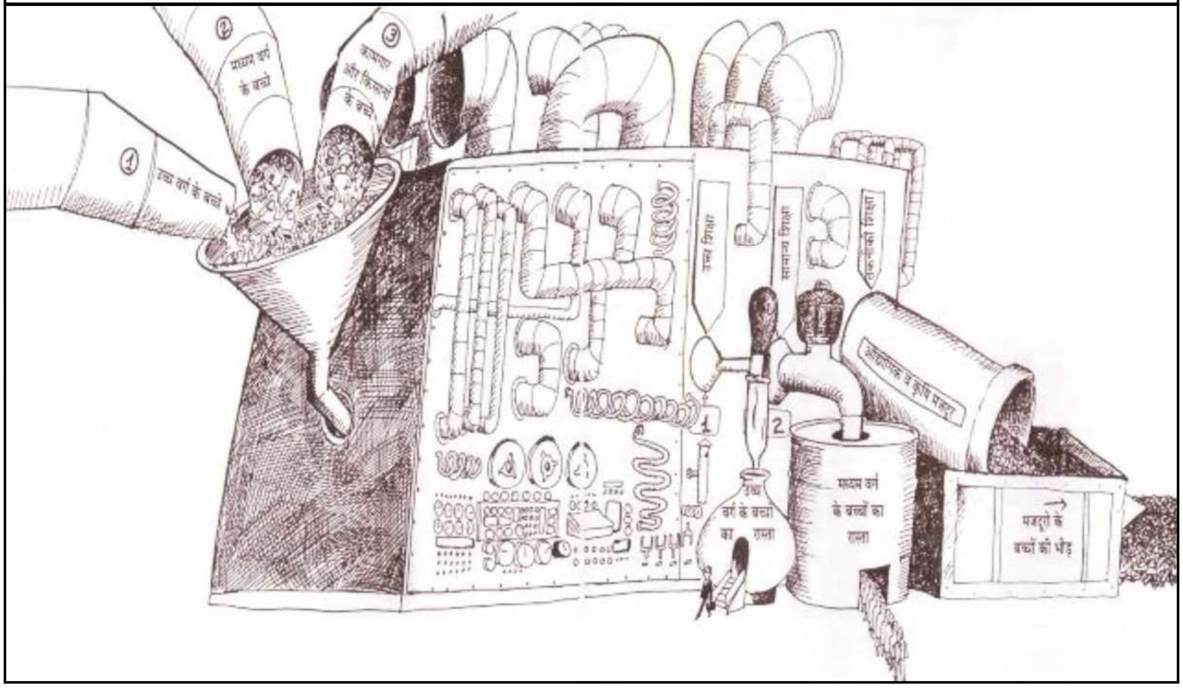
स्कूली शिक्षा से यह अपेक्षा रही है कि वह समाज में सबको समान अवसर तथा लोकतांत्रिक व राष्ट्रीय मूल्यों को बढ़ावा देगी। यह भी अपेक्षा रही कि वह हर बच्चे में स्वतंत्र चिंतन अभिव्यक्ति तथा सृजनशीलता को कायम रखते हुए उन्हें बदलती हुई दुनिया में जीविकोपार्जन के लिए तैयार करेगी लेकिन क्या वास्तव में हमारी शिक्षण व्यवस्था ऐसा कर पा रही है ?

कोई भी शिक्षा व्यवस्था अपने समाज के सामाजिक राजनैतिक ढाँचे से स्वतंत्र रहकर संचालित नहीं की जा सकती। अगर समाज में असमानता और भेदभाव है तो वह शिक्षा व्यवस्था को भी प्रभावित करेगा। बावजूद इसके शिक्षा ने सामाजिक और राजनैतिक ताने–बाने को प्रभावित करने और बदलने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसने लोगों को मध्यकाल की जकड़न से आजाद किया है। भले ही अपर्याप्त हों, पर हर वर्ग के लोगों के लिए प्रगति के रास्ते खोले हैं। जाति और धर्म जैसे संकुचित दायरे से लोगों को निकालकर उन्हें कहीं ज्यादा व्यापक, आधुनिक और लोकतांत्रिक जीवन मूल्यों के आधार पर जोड़ने का काम किया है।

इससे पहले हमने सार्वजनिक शिक्षा के प्रमुख लक्षण राष्ट्र के स्तर पर एकरूपता, प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा में बँटे होने और एक स्तर के बाद विद्यार्थियों को शिक्षा के विभिन्न स्तरों– व्यावसायिक, अकादमिक आदि में विभाजित करने का उल्लेख किया है। किसी भी सार्वजनिक और औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के संचालन के लिए शायद ये आवश्यक बातें हैं। इन बातों की गहराई में जाने पर हम पाते हैं कि विद्यालयी शिक्षा व्यवस्थाएँ सामाजिक स्तरीकरण व असमानताओं को बनाए रखने, सुदृढ़ करने और नए रूप देने का काम करती हैं। वे स्वतंत्र व्यक्तियों को नियंत्रित जीवन के लिए तैयार करने का काम करती हैं। व्यक्तियों की क्षमताओं और अभिरुचियों को नजर अंदाज

करके सबको एक जैसी चीजें सिखाती हैं, उन पर बना बनाया पाठ्यक्रम थोपती हैं।

प्रदर्श 2.9 मशीनीकृत/यांत्रिक शिक्षा व्यवस्था



जब बीसवीं शताब्दी में सामाजिक चिंतक और शिक्षाविद आधुनिक स्कूली शिक्षा की समीक्षा करने लगे तो कई प्रकार की बातें उभरकर आईं। इस बात को तो किसी ने नहीं नकारा कि इन विद्यालयों ने विभिन्न सामाजिक तबकों के बहुत से बच्चों को आगे बढ़ने के अवसर दिए और बच्चों की नई क्षमताओं में वृद्धि की लेकिन साथ–साथ यह भी देखा गया कि शालाएँ विभिन्न तरीकों से सामाजिक स्तरीकरण और भेदभाव को बनाए रखने में मदद कर रही हैं।

समाज में ऊँचा दर्जा या ऊँची आय वाला पेशा अपनाने के लिए ज़रूरी ज्ञान केवल कुछ आभिजात्य बच्चों को दिया जाता है जबकि सामान्य बच्चों को केवल सीमित ज्ञान दिया जाता है। यही नहीं, बच्चों में सृजनशीलता, स्वतंत्र चिंतन व संवेदनशीलता विकसित करने की बजाए उन्हें दिए गए ज्ञान को बिना सवाल किए स्वीकार करने की प्रवृत्ति विकसित की जा रही है। इस तरह के चिंतकों में महात्मा गाँधी, रवींद्रनाथ टैगोर, जॉन डीवी, लूनाचार्स्की, इवान इलीच, पॉलो फ्रेरे आदि प्रमुख हैं। भारत के चिंतक गिजुभाई ने मांटेसरी पद्धति को भारतीय परिवेश में साकार करके दिखाया। समरहिल स्कूल के संस्थापक ए. एस. नील मनोविश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षों को व्यवहार में लागू करके दिखाया। इनमें से कुछ चिंतकों के विचार हम इस खंड में पढ़ेंगे।

बीसवीं शताब्दी की शुरूआत में यूरोप में मज़दूर आंदोलन और साम्यवादी आंदोलन उत्कर्ष अवस्था में थे। इन आंदोलनों से जुड़े लोगों का विचार था कि यूरोपीय देशों में ऐसी शिक्षा व्यवस्था बनी हुई है कि गरीबों के लिए केवल अक्षर ज्ञान प्राथमिक स्तर पर सिखाया जाता है और केवल अमीरों के लिए उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध हैं। उच्च शिक्षा खर्चीली होती थी जो सामान्य श्रमिक परिवारों के पहुँच के बाहर थी। मज़दूर आंदोलनों ने यह माँग उठाई कि सबको समान शिक्षा मिलनी चाहिए और सभी के लिए शासन द्वारा निःशुल्क व्यवस्था बननी चाहिए। साम्यवादी विचारकों की एक और आलोचना यह थी कि इस शिक्षा के माध्यम से बौद्धिक और शारीरिक श्रम में विभेद और दूरी पैदा की जा रही है। स्कूली शिक्षा में केवल बौद्धिक श्रम पर ज़ोर होता है और शारीरिक श्रम को निम्न दृष्टि से देखा जाता है।

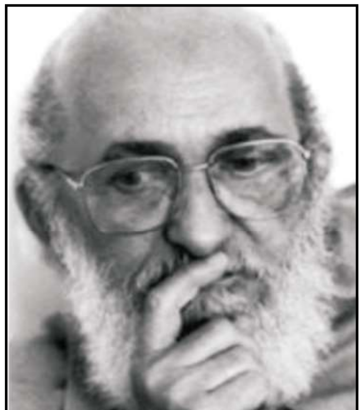
इस कारण समाज में एक वर्ग शासन करने के लिए तैयार होता है और दूसरा वर्ग केवल श्रम करने के लिए इससे दोनों के बीच आवागमन का मौका न्यूनतम हो गया। साम्यवादियों का मानना था कि समाज के हर व्यक्ति में शारीरिक श्रम करने, साहित्य और कला का आनंद लेने तथा शासन में भाग लेने की क्षमताओं का विकास होना ज़रूरी है ताकि एक वास्तविक लोकतांत्रिक समाज की रचना हो सके। उनका आग्रह था कि विद्यालयों में बौद्धिक व शारीरिक श्रम दोनों को साथ लाकर बच्चों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने का प्रयास हो। भारत में गाँधीजी भी कुछ इसी तरह कारीगरी को शिक्षा के केंद्र में रखना चाहते थे। रवींद्रनाथ टैगोर का आग्रह था कि बच्चों के स्वतंत्र विकास के मौके कला, प्रकृति और साहित्य के माध्यम से हो।

बीसवीं सदी में इन आलोचनाओं का प्रभाव तो पड़ा, मगर शिक्षा तक पहुँच या फिर शिक्षा की विषयवस्तु समतामूलक अभी भी नहीं है। साथ ही शिक्षा की विषयवस्तु बच्चों की अभिरुचि या उनकी संस्कृति के अनुरूप भी नहीं है। इस सदी के उत्तरार्द्ध में कई विचारक हुए जिन्होंने इसकी समालोचना की है, जिनमें से पाउलो फ्रेरे, जान होल्ट, ए एस नील आदि प्रमुख हैं।

गतिविधि

क्या आपको लगता है कि हमारे समाज में भी बौद्धिक काम को शारीरिक काम से अधिक महत्त्व दिया जाता है, उदाहरण सहित कक्षा में अपने विचार प्रस्तुत करें।

2.2.1 पाउलो फ्रेरे



पाउलो फ्रेरे (1921–1997)
उत्पीड़ितों के शिक्षाशास्त्र के लेखक

प्रथम वर्ष में आप फ्रेरे के शैक्षिक दर्शन का विस्तार से अध्ययन कर चुके हैं (किस विषय में), यहाँ पर फ्रेरे द्वारा की गई आधुनिक विद्यालयी शिक्षा की आलोचना पर चर्चा की जाएगी।

सन 1921 में ब्राज़ील में जन्मे फ्रेरे का बचपन उत्पीड़न एवं दरिद्रता में बीता। सन 1961 से सन 1964 के दौरान ब्राज़ील की लोकप्रिय सरकार ने साक्षरता अभियान चलाया, जिसमें पाउलो फ्रेरे ने भी काम किया। सन 1964 में लोकतांत्रिक सरकार का तख्ता पलट हुआ और ब्राज़ील में सैन्य शासन स्थापित हुआ जो सन 1985 तक चला। इसलिए सन 1964 से सन 1980 के बीच फ्रेरे ने निर्वासत जीवन बिताया। इस दौरान वे चिली, क्यूबा, निकारागुआ, पुर्तगाल, अंगोला, तंजानिया आदि देशों में रहे और अनेक देशों के साक्षरता अभियान में भूमिका निभाई। निर्वसन के दौरान ही उन्होंने सन 1970 में पैडागॉजी ऑफ द ऑप्रेस्ड (उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र) लिखी। यह किताब अँग्रेज़ी, हिंदी समेत दुनिया की अनेक भाषाओं में अनुवादित हो चुकी है।

उत्पीड़न और मुक्ति

पाउलो फ्रेरे का मुख्य विचार है कि जिस समाज में प्रभुत्वशाली उच्च वर्ग के लोगों का एक अल्पतंत्र बहुसंख्यक जनता पर शासन करता है, वह अन्यायपूर्ण और उत्पीड़नकारी समाज होता है। ऐसे समाज में व्यवस्था मनुष्यों को अमानुष बनाती है, जबकि मनुष्यों के जीवन का लक्ष्य पूर्णतर मनुष्य बनना है। फ्रेरे का मानना है कि ऐसी व्यवस्था में उत्पीड़क और उत्पीड़ित दोनों ही अपना मनुष्यत्व खो देते हैं। उत्पीड़कों का अस्तित्व चूँकि प्रभुत्व पर ही निर्भर है, अगर उसे छोड़ दें तो उन्हें लगता है कि वे अपना सब कुछ खो देंगे, इसलिए वे प्रभुत्व स्थापित रखने की कोशिश करते हैं। इस कोशिश में वे और अधिक अमानुषिक होते जाते हैं। फ्रेरे का मानना है कि उत्पीड़न करने वालों को

मनुष्य बनाने का ज़िम्मा उत्पीड़न के शिकार उत्पीड़ितों पर हैं, जो स्वयं को अमानुषीकरण से मुक्त करते हुए उत्पीड़कों को भी उससे मुक्त करेंगे। यह मुक्ति सामाजिक रूपान्तरण से होगी और उस रूपांतरण में शिक्षा की एक प्रमुख भूमिका है। शिक्षित होने का मतलब उत्पीड़नकारी व्यवस्था में ही अपनी एक जगह बना लेना नहीं है, बल्कि मनुष्य बनना है। पूर्णतर मनुष्य तभी बना जा सकता है जब अमानुषिक बनाने वाली उत्पीड़नकारी यथार्थ को बदला जाए।

गतिविधि

पाउलो फ्रेरे कहते हैं कि उत्पीड़क और उत्पीड़ित दोनों ही अपनी मनुष्यता खो देते हैं। इस विषय में आपकी क्या राय है ? अपनी राय कक्षा में प्रस्तुत करें।

समस्या निदानात्मक शिक्षा

मनुष्य जिन समस्याओं का सामना करते हैं, उन्हें साझे रूप में समझने का प्रयास ही समस्या निदानात्मक शिक्षा है। इसमें समस्याओं को केन्द्र में रखा जाता है न कि जानकारी के संग्रहों को। अपनी पीड़ा को टटोलकर देखना, उसे दूसरों से साझा करना, उसके कारण व निदान को पहचानना और उससे मुक्ति पाने के लिए योजना बनाना ही शिक्षा का सार्थक मकसद हो सकता है।

समस्या–निदानात्मक शिक्षा हेतु फ्रेरे संवाद विधि को प्रभावी माना है। संवाद के द्वारा ही शिक्षक एवं छात्रों के परस्पर संबंध पुनर्भाषित होते हैं। अब शिक्षक मात्र पढ़ाने वाला नहीं रह जाता, बल्कि संवाद करते समय वह स्वयं भी सीखता है।

संवाद के बारे में फ्रेरे कहते हैं –

> *''मनुष्यों के प्रति गहरे प्रेम के बिना संवाद संभव नहीं।....संवाद आशा के बिना भी संभव नहीं। आशा की जड़ें मनुष्यों के अधूरेपन में होती है, जहाँ से वे सब एक अनवरत खोज में आगे बढ़ते हैं। ....संवाद के लिए एक और चीज़ ज़रूरी है – मनुष्य में उत्कट विश्वास, निर्माण और पुनर्निर्माण की उसकी शक्ति में विश्वास ....''*

संवाद के लिए फ्रेरे आलोचनात्मक चिंतन को जरूरी मानते हैं और साथ ही वे कहते हैं कि संवाद ही आलोचनात्मक चिंतन पैदा करता है। आगे वे कहते हैं कि संवाद के बिना कोई संप्रेषण नहीं हो सकता और संप्रेषण के बिना कोई सच्ची शिक्षा नहीं हो सकती। यानी शिक्षा, और उसके माध्यम सामाजिक रूपांतरण संवाद के माध्यम ही हो सकता है। संवाद आधारित शिक्षा में शिक्षक–छात्र का असमान रिश्ता पूरी तरह बदल जाता है और वे दोनों एक समान धरातल पर आ जाते हैं।

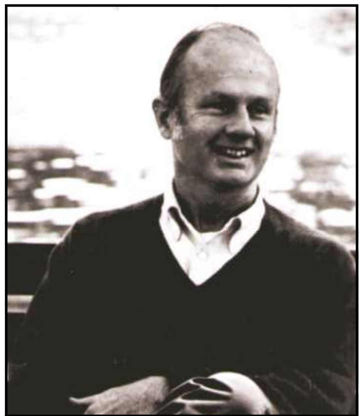
गतिविधि

- आलोचनात्मक चेतना विकसित करने वाली शिक्षा की क्या विशेषताएँ हो सकती हैं, कुछ उदाहरण दीजिए।
- संवाद और आलोचनात्मक चेतना के विकास में क्या रिश्ता है ?

नीचे कुछ सामाजिक मिथकों के उदाहरण दिए गए हैं। आप इस तरह के कुछ अन्य मिथक खोजें और कक्षा में उन पर चर्चा करें।

- शिक्षित होने का अधिकार सबको प्राप्त है।
- वास्तविकता यह है कि प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश लेने वाले तमाम बच्चों में से बहुत कम उच्च शिक्षा तक पहुँच पाते हैं।
- गलियों में फेरे लगा कर सामान बेचने वाला भी किसी कारखाने के मालिक की तरह व्यावसायिक है।

2.2.2 जॉन होल्ट



जॉन होल्ट (1923—1985)
सीखने की मानव क्षमता पर विश्वास रखने वाले

जॉन होल्ट का जन्म न्यूयार्क सिटी में 1923 में हुआ था। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान वे अमेरिकी नौसेना में रहे। युद्ध के बाद वे विश्व सरकार आंदोलन से जुड़े। बाद में उन्होंने कॉलरेडों और मेसाचुसेटस के विभिन्न स्कूलों में पढ़ाया। साथ ही वे हार्वर्ड ग्रेजुएट स्कूल आफ एज्युकेशन और कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी, बर्कले में विजिटिंग लेक्चरर भी रहे। वे 'घर पर शिक्षा आंदोलन' (हॉम स्कूलिंग मूवमेंट) के अग्रणी प्रवक्ता रहे, और तमाम वैधानिक संस्थाानों के समक्ष इस हेतु ठोस सबूत भी रखते रहे। अपने बच्चों को घर पर ही शिक्षा दे रहे अभिभावकों के लिए वे "ग्रोइंग बिदाउट स्कूलिंग" नामक पत्रिका भी निकालते थे। हालाँकि वे इसके पहले कई सालों तक शिक्षा में सुधार करने, इसे ज्यादा प्रभावी, कार्यक्षम और मानवीय बनाने पर काम करते रहे। इसी प्रक्रिया में जान होल्ट ने महसूस किया कि शिक्षा को ज्यादा कारगर बनाने के लिए काम करने का मतलब इसे और बदतर, और अधिक नुकसानदायक बनाने में मदद करना होगा। उन्होंने माना कि शिक्षा में सुधार नहीं किया जा सकता। इसे विवेकपूर्ण और मानवीय ढंग से नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसका उद्देश्य ना तो विवेकपूर्ण है, ना मानवीय!

उन्होंने शिक्षा सम्बंधी कई पुस्तकें लिखीं, जिसमें "बच्चे कैसे सीखते हैं?", "बच्चे असफल कैसे होते हैं", "बचपन से पलायन" और "शिक्षा की बजाय" आदि उल्लेखनीय हैं।

स्कूल, शिक्षा, बच्चे और सीखने के बारे में उनके विचार एक शिक्षक के तौर पर बच्चों को पढ़ाते हुए और बच्चों के साथ वयस्कों द्वारा किए जाने वाले व्यवहार को देखते हुए विकसित हुए हैं। यहाँ यह बताना प्रासंगिक होगा कि जॉन होल्ट के विचार सभी बच्चों के बारे में हैं, सिर्फ किसी कमजोर स्कूल के प्रतिभाहीन और पिछड़े बच्चों के बारे में नहीं हैं। ये ऐसे निजी स्कूल के बच्चों के बारे में भी हैं, जो विख्यात हैं और इनके स्तर भी ऊँचे हैं। उन्होंने जिन बच्चों का वर्णन किया है, वे भी मेधा में सामान्य बच्चों से श्रेष्ठ थे।

जॉन होल्ट कहते हैं कि बच्चे स्वयं अपना पक्ष रखने की स्थिति में नहीं हैं इसलिए वे बच्चों के बिन बुलाए प्रवक्ता बन गए हैं। वे इस उम्मीद में लिखते हैं कि जो पाठक यह मान लें कि वे बच्चों का आदर करते हैं और उनके शुभचिंतक हैं, वे उनकी बात, भले ही वह कितनी भी विचित्र और डरावनी क्यों ना लगे, ज्यादा खुलेपन से सुनेंगे।

गतिविधि

1. क्या आपने जॉन होल्ट की कोई पुस्तक पढ़ी है? अपने आस—पास के किसी पुस्तकालय से लेकर उनकी कोई पुस्तक पढ़ें, व उसमें कही गई बातों का सार कक्षा में प्रस्तुत करें।
2. हमारे परिवारों व विद्यालयों में वे कौन सी परिस्थितियाँ और कारण है, जिनके चलते बच्चे स्वयं अपना पक्ष रखने की स्थिति में नहीं है? अपने विचार प्रस्तुत करें।

सीखने के बारे में अलग दृष्टिकोण

जॉन होल्ट के अनुसार "सीखना" शब्द से लगता है कि सीखना शेष जीवन से कोई अलग बात है। इसमें एक और आम गलतफहमी यह छिपी है कि सीखना और करना दो अलग—अलग बातें हैं। स्कूल में पढ़ा हर व्यक्ति यह मानने लगता है कि उसे यदि कोई भी महत्त्वपूर्ण बात सीखनी है तो उसे स्कूल जाना पड़ेगा और शिक्षक ढूँढ़ना पड़ेगा, जो उसे यह सिखाएगा कि यह प्रक्रिया उबाऊ और कष्टदायक होगी, तथा वह शायद सीख नहीं पाएगा।

जॉन होल्ट सीखने के बारे में व्याप्त इस गलतफहमी का खंडन करते हुए कहते हैं कि वे जो कुछ भी जानता है,

उनमें से अधिकांश उन्होंने स्कूल में नहीं सीखा है। इतना ही नहीं, यह सब उन्होंने उन स्थितियों में भी नहीं सीखा है जिन्हें लोग "सीखने की स्थितियाँ" कहते हैं। उन्होंने संगीत व संगीत रचना के बारे में जो कुछ सीखा है, वह रिहर्सलों और कार्यक्रमों में जा–जाकर सीखा है। मगर वे वहाँ संगीत के बारे में सीखने नहीं जाते। वे तो वहाँ इसलिए जाते है क्योंकि वहाँ जो कुछ देखते सुनते है वह उन्हें अच्छा लगता है। अन्य देशों और अपने ही देश के अन्य इलाकों की यात्राओं के दौरान उन्होंने उन जगहों के बारे में काफी कुछ सीखा है। मगर वे वहाँ "सीखने" नहीं लोगों से मिलने–जुलने और काम करने गये थे। पिछले एक दो वर्षों से उन्होंने अपने शहर बोस्टन में अन्य नागरिकों के साथ मिलकर एक खराब व कुटिल नगर विकास योजना को रुकवाने के लिए काम किया है। इसमें उन्होंने कानून, राजनीति और नगर की सरकारों व अर्थव्यवस्था के बारे में काफी कुछ सीखा। मगर वे इस काम में यह सब सीखने के लिए नहीं बल्कि अपने नगर को लूट और तबाही से बचाने के लिए जुडे थे। वे कई किताबें और पत्रिकाएँ पढ़ते है , किन्तु उनमें जो कुछ है उसे "सीखने" के लिए नहीं। वे इन्हें पढ़ते है क्योंकि उन्हें लगता है कि ये शायद दिलचस्प, मददगार और रोमांचक होंगी। कभी–कभार वे कुछ पता करने के लिए भी पढ़ते है मगर वे सीखेगें या नहीं, यानी वह चीज उन्हें याद रहेगी या नहीं, यह इस बात पर निर्भर है कि वह उनके काम में, या उनके जीवन में या जीवन का आनंद उठाने में सहायक है या नहीं!

गतिविधि

- ऊपर जॉन होल्ट ने काम करते हुए सीखने के कुछ उदाहरण दिए हैं। आपने पिछले कुछ वर्षों में क्या क्या नया सीखा ? इसमें से स्कूल या कालेज में क्या क्या सीखा ?
- सीखने के बारे में जॉन होल्ट के विचार और एन. सी. एफ. 2005 में सीखने के बारे में कही गई बातों में क्या समानताएँ हैं ? समूह चर्चा में अपने विचार स्पष्ट करें।

शिक्षा के बारे में विचार

जॉन होल्ट कहते हैं कि आज दुनिया भर में शिक्षा उसको माना जाता है जो कुछ लोग, अन्य लोगों पर उनके भले के लिए करते हैं, उन्हें आकार देते हैं, ढालते हैं और वह सिखाने की कोशिश करते हैं जो उनकी नजर में अन्य लोगों को जानना चाहिए। जॉन होल्ट कहते हैं कि वे पूरी तरह इसके विरुद्ध हैं। वे शिक्षा को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि "शिक्षा वह है जो व्यक्ति स्वयं को देता है, यह वह वस्तु नहीं है जो कोई और उसे दे।"

जॉन होल्ट कहते हैं कि समस्त पारितोषिकों, दण्डों, ग्रेड, डिप्लोमा प्रमाण पत्रों आदि से लैस शिक्षा शायद मानव जाति का सबसे तानाशाहीपूर्ण और खतरनाक सामाजिक आविष्कार है। यह आधुनिक व विश्वव्यापी गुलाम राज्य की सबसे गहरी बुनियाद है जिसमें अधिकांश लोग स्वयं को उत्पादनकर्ता, उपभोक्ता, दर्शक, प्रशंसक से अधिक कुछ नहीं समझते और जीवन के हर क्षेत्र में लालच, हिंसा व भय से संचालित होते हैं। उनका सरोकार शिक्षा को श्रेष्ठ बनाने से नहीं, बल्कि उससे मुक्ति पाने से है। लोगों को ढालने के इस विकृत व मानवविरोधी कारोबार को समाप्त करने से है। लोगों को स्वयं को ढालने की छूट देने से है।

गतिविधि

क्या आप इस बात से सहमत/असहमत कि पारितोषिकों, दण्डों, ग्रेड, डिप्लोमा प्रमाण पत्रों आदि से युक्त शिक्षा मानव जाति का सबसे तानाशाहीपूर्ण और खतरनाक सामाजिक आविष्कार है ? कैसे ?कक्षा में समूह चर्चा करें।

बचपन के प्रति दृष्टिकोण

जॉन होल्ट का मानना है कि बचपन की वर्तमान अवधारणा ऐसी है जिसमें देखभाल और सुरक्षा की चिंता के नाम

पर बच्चों की जिज्ञासा और ऊर्जा का दमन किया जाता है। इसमें बच्चा होने का मतलब पूरी तरह अधीन और परावलंबी होना है। बड़ों द्वारा बच्चों को एक महंगे सिरदर्द, एक गुलाम या पालतू जीव के रूप में देखा जाना, उन्हें फायदे से अधिक नुकसान पहुँचाता है। इसलिए वे सिफारिश करते हैं कि वयस्क नागरिकों के अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व और जिम्मेदारियाँ उन बच्चों को भी उपलब्ध कराना चाहिए, जो उन्हें उठाना चाहते हों। फिर उनकी आयु कुछ भी क्यों ना हो। इसमें निम्नांकित बातें शामिल होंगी—

- कानून से समान व्यवहार पाने का अधिकार, अर्थात बच्चों से किसी भी स्थिति में किसी वयस्क से अधिक खराब व्यवहार न किया जाए।
- मत देने और राजनैतिक मामलों में पूर्ण भागीदारी का अधिकार।
- अपने जीवन तथा कृत्यों के लिए कानूनी रूप से जिम्मेदार होने का अधिकार।
- पैसों के लिए काम करने का अधिकार।
- एकांतता (प्राइवेसी) का अधिकार।
- सम्पत्ति रखने, खरीदने, बेचने, ऋण लेने, साख स्थापित करने और अनुबंध करने का अधिकार।
- अपनी शिक्षा को स्वयं निर्देशित करने व प्रबंधित करने का अधिकार।
- यात्रा करने, घर से अलग रहने, अपना घर स्वयं चुनने या बनाने का अधिकार।
- सरकार जो न्यूनतम आय वयस्कों को उपलब्ध कराती है, ठीक वही आय प्राप्त करने का अधिकार।
- अपने माता–पिता के अलावा किसी व्यक्ति को अपने अभिभावक के रूप में चुनने और कानूनी रूप में उस पर निर्भर बनने का अधिकार।
- वह सब करने का अधिकार जो कोई वयस्क कानूनी रूप से कर सकता है, इत्यादि।

इस प्रकार जॉन होल्ट ने अपनी किताब "बचपन से पलायन" में कई तर्क देते हुए यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि बच्चे इन सब जिम्मेदारियों को उठाने में सक्षम हैं।

गतिविधि

कुछ उदाहरण दें जिनके बारे में आपको लगता हो कि इनमें देखभाल और सुरक्षा की चिंता के नाम पर बच्चों की जिज्ञासा और ऊर्जा का दमन किया जा रहा है ?

स्कूल के प्रति दृष्टिकोण

जॉन होल्ट के अनुसार स्कूल की सीमा यह है कि बच्चे सीखने, समझने और रचने के अपने जन्मजात और असीम सामर्थ्य का केवल एक छोटा सा भाग ही स्कूलों में विकसित कर पाते हैं, जबकि जीवन के दो–तीन प्रारंभिक वर्षों में वे इस सामर्थ्य का भरपूर उपयोग करते रहे थे। इसका कारण जॉन होल्ट मानते है कि स्कूल बच्चों के प्राकृतिक ढंग से सीखने को बाधित करते हैं, वे बच्चों के लिए सम्मानजनक, भयमुक्त व आनंदमयी वातावरण उपलब्ध नहीं करा पाते हैं।

स्कूल ऐसी जगह होनी चाहिए, जहाँ बच्चा वह सीखे, जो वह सबसे ज्यादा जानना चाहता हो, बजाय इसके कि जो हमें लगता है कि उसे जानना चाहिए। अगर बच्चा वास्तव में कुछ जानना या सीखना चाहता है, तो वह उसे याद भी रखता है, उस ज्ञान का उपयोग कर सकता है। बच्चा जो कुछ दूसरों को खुश या शांत रखने के लिए सीखता है, उसे वह उसी वक्त भूल जाता है, जब खुश या शांत करने की जरूरत खत्म हो जाती है।

अगर छात्र कुछ नहीं सीख पाते तो उन्हें या उनके परिवारों को, उनकी पृष्ठभूमि को या उनके मोहल्ले को, उनके

दृष्टिकोण को या उनके स्नायुतंत्र को या ऐसे ही किसी बाहरी कारण को छात्रों की असफलता के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जाए। जब भी कोई विधि कक्षा में प्रभावी ना हो तो उसे त्यागकर किसी दूसरे तरीके से काम करना चाहिए। होल्ट का यह भी सुझाव है कि हमेशा पद्धति, उपाय या तरीके ही असफल होते हैं, बच्चे नहीं।

ऐसे स्कूल हों, ऐसी कक्षाएँ हों जहाँ बच्चे अपनी तरह से अपनी जिज्ञासाओं को संतुष्ट करें। स्वयं ही निजी क्षमताओं व गुणों को विकसित करें। अपनी रुचियों व रुझानों को पनपाएँ। अपने आस–पास के वयस्कों के जीवन की विविधता और संपन्नता की झलकियाँ पाते रहें। संक्षेप में स्कूल बुद्धि, कला, रचना, खेलकूद का ऐसा विशाल मंच बने जिसमें प्रत्येक बच्चा जो चाहे व जितनी मात्रा में चाहे स्वयं चुन सके।

विद्यालयी शिक्षा का वैकल्पिक स्वरूप – हॉम स्कूलिंग

हॉम स्कूलिंग जॉन हॉल्ट विद्यालयी शिक्षा तंत्र को समाप्त करने को कहते हैं। हॉल्ट में इस संदर्भ में हॉम स्कूलिंग की संकल्पना को जन्म दिया व प्रायोगिक रूप से प्रचलित भी किया। जॉन हॉन्ट बालक की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हॉम स्कूलिंग के माध्यम से रखने की पुरजोर वकालात करते हुए लिखते हैं।

'' मैंने हॉम स्कूलिंग'' शब्द का प्रयोग यह बताने के लिए कि इस प्रक्रिया में प्राथमिक स्तर पर बच्चे आगे बढ़ने और बिना स्कूल गये या बहुत अधिक स्कूल गये।......संसार में बढ़ते हुए बच्चों के लिए 'घर' सबसे महत्वपूर्ण व बहुमूल्य आधार रूप है। घर किसी भी अन्य स्कूल से बढ़िया स्कूल है परंतु स्कूल तो यह बिल्कुल भी नहीं है। 'घर सीखने' के लिए ढांचागत कृत्रिम जगह नहीं है, यहाँ 'सीखने' के अलावा कुछ होता भी नहीं है। यह प्राकृतिक, जैविक, केंद्रिय, मौलिक व मानवीय सस्था है, जहाँ कोई भी आदमी आसानी व ठीक से कह सकता है कि घर अन्य सभी संस्थाओं की नींव है।''

Teach your own. The john Holt borleng Homs schooling. Chep.-3

पाठ्यक्रम के प्रति दृष्टिकोण

जॉन होल्ट का मानना है कि पाठ्यक्रम तथा आवश्यक ज्ञान के विचार को उपयुक्त बनाने की आवश्यकता है। इस पर कई शिक्षाविद एक मत नहीं हैं। हरेक व्यक्ति जो किसी खास क्षेत्र का विशेषज्ञ है, स्वाभाविक रूप से यह चाहेगा कि उसका विषय भी पाठ्यक्रम में लिया जाए। हरेक अपनी विशेषज्ञता को इस आवश्यक ज्ञान की श्रेणी में लाना चाहेगा। यह बच्चों की वास्तविक जरूरत या सामाजिक आवश्यकताओं पर निर्भर न होकर इस बात पर निर्भर करेगा कि जनसंपर्क में कौन कुशल है, किसके पास अच्छे शैक्षिक मध्यस्थ हैं जो उन घटनाओं का फायदा उठाने में भी दक्ष हैं, जिनका शिक्षा से कोई लेना देना ना हो।

हम यह जान ही नहीं सकते कि भविष्य में हमें किस तरह के ज्ञान की आवश्यकता पड़ने वाली है। सो उसे पहले से पढ़ाना तो बेकार ही होगा। अच्छा हो कि हम अपना समय ऐसे लोग तैयार करने में लगाएँ, जो सीखने से प्यार करते हैं। जो इतना भर सीख लें कि जिस भी विषय को सीखने की आवश्यकता पड़े, वे उसे स्वयं सीख लें।

गतिविधि

किसी भी कक्षा के पाठ्यक्रम का अध्ययन करके तर्क सहित चर्चा करें कि आप इसमें से क्या–क्या हटाना और क्या शामिल करना चाहेंगे ?

बेहतर समाज के प्रति दृष्टिकोण

जॉन होल्ट का मानना है कि अगर हम एक ऐसा समाज, ऐसी दुनिया बनाना चाहते हैं, जिसमें लोग न केवल जी पाएँ, बल्कि खुश होकर जिएँ, जिसमें जीना अपने आप में उन्हें अधिक जिम्मेदार, समझदार और सक्षम बनाए, तो फिर कुछ चीजों को हमें एकदम अलग तरह से करना सीखना ही होगा। स्पष्ट है जॉन होल्ट के अलग तरह से करना सीखने से आशय बच्चों को स्वतंत्रता और जिम्मेदारी देने तथा शिक्षा और सीखने के बारे में दृष्टिकोण बदलने से है।

2.2.3 अध्यापक के नाम पत्र – बारबियाना स्कूल के बच्चे

बारबियाना (इटली) स्कूल के छात्रों द्वारा लिखे गए अध्यापक के नाम पत्र, राजकीय शिक्षकों को उनका मूल दायित्व – गरीब से गरीब बच्चों को शिक्षित करना – बहुत तीखे अंदाज में याद दिलाता है कि 1960 के दशक में लिखा गया यह पत्र आज विश्व शिक्षा साहित्य का एक अहम दस्तावेज़ बन गया है। ये छात्र सरकारी स्कूलों में फेल होने के कारण इन स्कूलों से निकाल दिए गए थे। इसके बाद इन्होंने बारबियाना के एक वैकल्पिक स्कूल में शिक्षा प्राप्त की जहाँ पर इन फेल हुए बच्चों में प्रतिभा का विकास किया गया और इन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया गया। यह पत्र उन्होंने अपने पुराने स्कूल के अध्यापकों के नाम लिखा है। इसमें बारबियाना के बच्चों ने समस्त साक्ष्यों का सहारा लेते हुए यह सिद्ध किया है कि स्कूल की पाठ्यचर्या और कक्षा का दैनिक कार्यक्रम संपन्न वर्गों के वर्चस्व को बनाए रखने की भूमिका निभाता है। इन छात्रों का मानना है कि आम तौर पर गरीब बच्चे ही वो बच्चे हैं जो अनुत्तीर्ण होते हैं और शिक्षा को त्यागकर मज़दूरी करने पर विवश हो जाते हैं। वे न केवल फेल किए जाने की प्रथा पर सवाल उठाते हैं, बल्कि यह भी स्थापित करते हैं कि इसके पीछे जो शिक्षा की धारणा है वह त्रुटिपूर्ण है। भारत में शिक्षा के अधिकार अधिनियम के तहत बच्चों को अनुत्तीर्ण न करने की जो नीति अपनाई गई है, उसमें इस पुस्तक की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। चलिए उनके पत्र की शुरूआत को पढ़ेः

आदरणीय अध्यापिकाजी,

आप मुझे या मेरे नाम को भूल गई होंगी। आपने मेरे जैसे न जाने कितनों को अनुत्तीर्ण किया है। परंतु मैं अकसर आपको, और दूसरी अध्यापिकाओं को, उस संस्था को जिसे आप स्कूल के नाम से पुकारते हैं, और इन लड़कों को जिन्हें आप अनुत्तीर्ण करती हैं, याद करता हूँ। आप फेल करके हम लोगों को सीधे खेतों में या फैक्ट्रियों में धकेलकर हमें बिलकुल भूल जाती हैं।

संकोचः दो वर्ष पहले जब मैं माध्यमिक कक्षा में था, तब आपको देखकर मुझे बहुत डर लगता था। सच पूछिए तो मैं शुरू से ही थोड़ा झेंपू किस्म का हूँ। जब मैं बहुत छोटा था तो मैं अपनी दृष्टि सदा जमीन की ओर रखता था। मैं दीवार के किनारे सटा हुआ चलता था, शायद यह मेरे परिवार की, एक प्रकार की बीमारी है। मेरी माँ भी इसी प्रकार की है कि टेलिग्राम देखते ही घबरा जाती हैं। मेरे पिता सब कुछ सुनते और समझते हैं, पर बोलते कम हैं। बाद में मैंने सोचा कि झेंपना शायद हमारे पहाड़ी समुदाय का रोग है। ...गरीब लोगों का संकोच बहुत प्राचीन है और मैं उसके रहस्य को समझा नहीं सकता, यद्यपि मैं स्वयं गरीबी से घिरा हुआ हूँ। शायद यह न तो किसी प्रकार की कायरता है और न किसी प्रकार की वीरता। यह केवल आत्माभिमान की कमी है।

गतिविधि

अपनी कक्षाओं में इस तरह झेंपने वाले बच्चों को याद कीजिए। उनकी मानसिक व्यथा पर कुछ समय विचार कीजिए।

यह संकोच बुद्धिहीनता का संकेत है या सशक्त न होने का संकेत है? विस्तार से कक्षा में चर्चा करें।

इस असंवेदनशील शाला के विकल्प में ये बच्चे एक अलग शैक्षणिक व्यवस्था की बात करते हैं जो बच्चों पर विश्वास करता है। उनके पत्र का एक और अंश पढ़ेः

''जब मैं बारबियाना पहुँचा तो वह स्कूल की तरह नहीं लगता था। न तो कोई अध्यापक था, न कोई डेस्क था, न काली तख्ती थी और न कोई बेंच थी। बस बड़ी–बड़ी मेजें रखी थीं जिनके चारों ओर हम लोग पढ़ते थे और वहीं पर खाते भी थे। प्रत्येक किताब की बस एक प्रति थी। सब लड़के उसे घेरकर खड़े हो जाते थे। इस पर ध्यान ही नहीं जाता था कि उन्हीं लड़कों में से एक थोड़ा आयु में बड़ा था और वहीं पढ़ा रहा था। इन पढ़ाने वाले 'अध्यापकों' में से सबसे बड़ा सोलह वर्ष का था। सबसे छोटा बारह वर्ष का था और उसे देखकर मेरा मन प्रशंसा से भर उठा। मैंने शुरू से ही तय कर लिया कि मैं भी आगे चलकर पढ़ाऊँगा।...

एक लड़का था जो अति साधारण परिवार का था। उसकी बुद्धि मंद थी...। परंतु उसके साथ ऐसा व्यवहार किया जाता था मानो वही अध्यापकों का प्रिय पात्र हो। जैसे आप लोग अपनी कक्षा में सर्वोत्तम विद्यार्थी से व्यवहार करती हैं, वैसा उसके साथ किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता था मानो स्कूल उसी के लिए बनाया गया है। जब तक वह नहीं समझ लेता था, दूसरे लड़के आगे नहीं पढ़ सकते थे।

वहाँ कभी छुट्टी नहीं होती थी – इतवार को भी नहीं परंतु इससे हमें कोई परेशानी नहीं थीं। छुट्टी में हमें मज़दूरी करनी पड़ती थी जो स्कूल जाने से अधिक बुरा होता। ... एक बार ... लूसियो ने, जिसके घर पर 36 गायें हैं, कहा, 'गाय का गोबर उठाने से तो स्कूल आना कहीं अच्छा है।'

आपके स्कूलों के सामने वाले दरवाजों पर इस वाक्य को लिखवाया जा सकता है। लाखों किसानों के बच्चे इसका समर्थन करने को तैयार हैं। आप कहते हैं कि लड़कों को स्कूल बिलकुल अच्छा नहीं लगता है और उन्हें खेलने से प्रेम है। हम किसानों से आपने नहीं पूछा, लेकिन लाखों–करोड़ों हम जैसे हैं। संसार के प्रत्येक दस बच्चों में से छह लूसियो की ही तरह सोचते हैं। बाकी के चार क्या चाहते हैं, यह हम नहीं जानते।''

गतिविधि

आपके अनुसार बारबियाना की वैकल्पिक शाला की तीन प्रमुख विशेषताएँ क्या होंगी ?

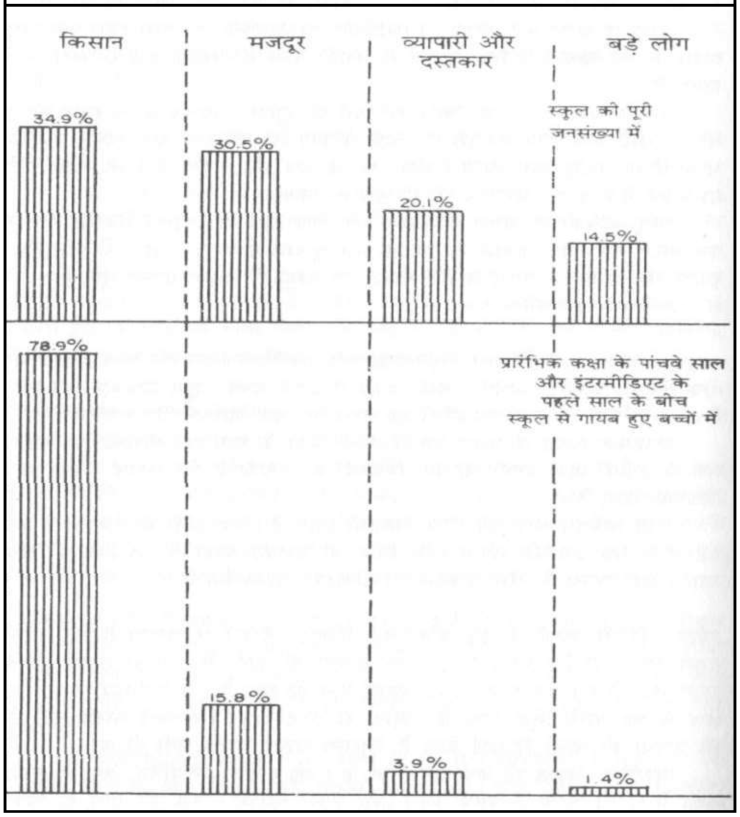
क्या बच्चे ही एक–दूसरे को पढ़ा सकते हैं ?

पत्र लेखकों के विचार में शिक्षकों को धीमी गति से अध्ययन करने वाले बच्चों पर सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए। क्या आप इस कथन से सहमत हैं? इस विचार को व्यवहार में लाने पर एक शिक्षक को क्या करना होगा और क्या नहीं ?

इस पत्र से लगता है कि गरीब किसानों व मज़दूरों के बच्चे इसलिए शिक्षा के प्रति आकृष्ट होते हैं, क्योंकि वे कमरतोड़ काम से मुक्त होना चाहते हैं। इसलिए वे अच्छी शिक्षा पाना चाहते हैं और उसके लिए मेहनत करना भी चाहते हैं। क्या यह आपके अनुभव से मेल खाता है? इस पर चर्चा करें।

अपने पत्र में ये बच्चे स्कूल के शैक्षणिक विषयों की प्रासंगिकता पर भी प्रश्न उठाते हैं – क्या निरर्थक व्याकरण सीखना या भूगोल और इतिहास में जानकारियों की सूचियाँ याद करना और उच्च कोटि की भाषा का उपयोग कर पाना ही शिक्षा है ?

प्रदर्श 2.10 बारबियाना के बच्चों द्वारा प्रस्तुत विभिन्न सामाजिक वर्ग के बच्चों की शिक्षा के समंक



इन आँकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि, जैसे – जैसे कक्षा का स्तर बढ़ता है वैसे–वैसे ही बच्चों की संख्या वर्गवार घटती जाती है। इस ड्रॉप आउट निम्नलिखित कारण माने जा सकते हैं

- पढ़ाई का रुचिकर न होना।
- स्थानीय भाषा की उपेक्षा
- परिणाम अथवा अंक प्रधान मूल्यांकन व्यवस्था

भाषा के बारे में बच्चे क्या कहते हैं

हम पहले यह निश्चय कर लें कि सही भाषा क्या है। भाषा का निर्माण गरीब लोग करते हैं और वे सदा नवीन बनाते रहते हैं। अमीर लोग उसे एक निश्चित ठोस रूप दे देते हैं, ताकि उससे ज़रा भी भिन्न बोलने वाले को वे अपने से अलग कर सकें। या उसके कारण वे परीक्षा में बच्चों को अनुत्तीर्ण कर सकें।.

1. जब बड़े उम्र के बच्चों को फेल करके उन्हें छोटे बच्चों की कक्षाओं में बिठाया जाता है तो उन्हें किस–किस तरह की समस्याएँ होती होगी ? आपके अनुसार क्या यह ज़रूरी है ?
2. एक किसान या कारीगर के लिए प्राचीन काल का इतिहास या दूर–दराज़ की भौगोलिक जानकारी क्या निरर्थक होती हैं ?
3. गियान्नी को प्राचीन ग्रीक व लैटिन के प्रति नफरत थी मगर उसे विश्व युद्ध में बहुत दिलचस्पी थी। इसका क्या यह मतलब है कि प्राचीन विषयों की जगह बच्चों को आधुनिक विश्व के बारे में पढ़ाया जाना चाहिए ? समूह चर्चा करें।

पत्र को लिखने वाले बच्चे अकसर शिक्षकों के व्यवहार पर सवाल उठाते हैं – कम समय पढ़ाना, गरीब तथा अमीरों बच्चों से अलग–अलग व्यवहार करना, ट्यूशन पढ़ाना आदि। वे कहते हैं कि अध्यापकों को काम के आधार पर वेतन दिया जाए। प्रत्येक बच्चे को एक विषय सिखाने का इतना पारिश्रमिक, या इससे भी अच्छा यह होगा कि प्रत्येक बच्चे को विषय नहीं सिखा पाने का इतना जुर्माना। ऐसी स्थिति में अध्यापकों का ध्यान ऐसे बच्चों पर रहेगा जिन्हें उनकी सबसे ज़्यादा ज़रूरत है।

"लेखक स्पष्ट करने की कोशिश करते हैं कि किस तरह वर्तमान शिक्षा मानवता को नष्ट कर देती है – अमीर बच्चों को मानवता रहित और सच्चाई से दूर ज्ञान का दंभ देता है और गरीबों जो वास्तविकता से परिचित हैं, को अपने अनुभवों को व्यक्त करने से रोकता है।

परंतु आपके सफल छात्र ... दिन–रात नंबरों के लिए, अच्छी रिपोर्ट के लिए और डिप्लोमा के लिए पढ़ते रहते हैं और इस बीच इन विषयों में, जिन्हें वे पढ़ रहे हैं उनकी सारी रुचि खत्म हो जाती है। भाषाएँ, विज्ञान, इतिहास में सब अच्छी चीज़ें केवल पास होने के नंबर बनकर रह जाती हैं।

इस सारी पढ़ाई के पीछे उन्हें केवल अपने वैयक्तिक लाभ की इच्छा है। डिप्लोमा का अर्थ है पैसा। कोई इसे स्पष्ट शब्दों में नहीं कहता परंतु इस व्यवस्था का परिणाम यही होता है। आपके स्कूल में किसी विद्‌यार्थी को सफलता पाने के लिए बारह वर्ष की अवस्था से ही समाज में ऊपर चढ़ने की महत्त्वाकाँक्षा रखनी चाहिए परन्तु ऐसे बहुत कम विद्‌यार्थी हैं जिनमें बारह वर्ष की अवस्था में ऐसी महत्त्वाकांक्षा उत्पन्न हो जाती है। अतः अधिकांश विद्‌यार्थी स्कूल से घृणा करते हैं।

हमने जिस स्कूल का वर्णन किया, वह चन्द चुने हुए बच्चों के लिए बना है, और वह संस्कृति नष्ट कर देता है। वह गरीबों को भाषा सीखने से वंचित करता है, जिसके द्‌वारा वे अपने को व्यक्त कर सकें। वह अमीरों को वास्तविक स्थिति का ज्ञान नहीं होने देता।

गियान्नी अभागा है, क्योंकि वह अपने को व्यक्त नहीं कर सकता परंतु गियान्नी भाग्यवान भी है क्योंकि वह सारे संसार से जुड़ा हुआ है। सारे एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका के बच्चे उसके भाई हैं और वह अधिकांश मानवता की ज़रूरतों को जानता है।

(आपका सफल छात्र), पियरीनो भाग्यवान है, क्योंकि वह अच्छी भाषा बोल सकता है परंतु यह उसका दुर्भाग्य है कि वह बहुत अधिक बोलता है। उसके पास कोई विशेष बात कहने के लिए नहीं है। उसी के समान दूसरों की लिखी हुई पुस्तकों की बातों को वह केवल दोहराता है। वह सुसंस्कृत लोगों के छोटे से घेरे में कैद है और इतिहास तथा भूगोल से एकदम कट गया है।

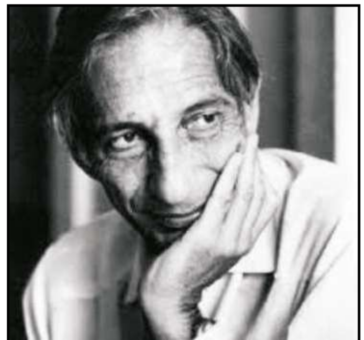
चुने हुए थोड़े से लोगों के लिए स्कूल चलाना भगवान के और मानवता के प्रति पाप है...। आपने गरीबों को गूँगा बनाना चाहा, तो भगवान ने आपको अंधा बना दिया।

यह पठन सामग्री अध्यापक के नाम पत्र, बार्बियाना स्कूल के बच्चे (ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली, 200) पर आधारित है।

गतिविधि

1. पत्र लेखकों के अनुसार आधुनिक शालाएँ सफलता से पूरा करने वाले तथा फेल होकर छोड़ने वाले बच्चे दोनों को व्यापक नुकसान पहुँचाती हैं। वे इस बात के पक्ष में क्या तर्क देते हैं ? आप इनसे कहाँ तक सहमत या असहमत हैं ? अपने विचार प्रस्तुत करें।
2. 'आपने गरीबों को गूँगा बना दिया' से लेखकों का क्या तात्पर्य रहा होगा?'भगवान ने आपको अंधा बना दिया' से लेखकों का क्या तात्पर्य रहा होगा ?
3. शिक्षा अधिकार कानून में पहली से आठवीं तक बच्चों को फेल न करने तथा बच्चों की उम्र के अनुरूप कक्षा में रखने के पीछे क्या तर्क हैं ? सभी बच्चों को शिक्षित करने में ये किस प्रकार मदद करेंगे ? इससे किस तरह की समस्याएँ हो सकती हैं ? स्पष्ट करें।

2.2.4 इवान इलिच



इवान इलिच (1926–2002)
डि स्कूलिंग के प्रणयता

आपने इवान इलिच के बारे में प्रथम वर्ष में शिक्षा के उद्देश्य ज्ञान एवं पाठ्यचर्या में इकाई 4 में पढ़ चुके हैं। वहाँ इवान इलिच का जीवन परिचय एवं शैक्षिक दर्शन के बारे में कुछ चर्चा हुई है। यहाँ हम शैक्षिक जगत के बारे में इवान इलिच द्वारा व्यक्त किए गए क्रांतिकारी विचारों का अध्ययन करेंगे।

स्कूल व अन्य संस्थाओं का संस्थागत स्वरूप

इलिच ने स्कूल को इस अवधारणा में व्यक्त किया कि स्कूल आर्थिक व्यवस्था का स्वरूप है, जिसमें शिक्षा व्यवस्था भी अन्य संस्थाओं की तरह औद्योगिक समाज का ही प्रतिफल है। उन्होंने माना कि जिस प्रकार कारखानों में बिकाऊ चीजें या जिन्स बनती हैं, उसी तरह स्कूल मे ज्ञान का उत्पादन होता है, जिसमें शिक्षक व स्कूल व्यवस्था उत्पादनकर्ता तथा विद्यार्थी उपभोक्ता है। ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया यांत्रिक है जो संपूर्ण व्यवस्था के औद्योगिक स्वरूप को सदृढ़ करता हैं। इस प्रकार की व्यवस्था में सीखना मानवीय व व्यक्तिगत इच्छा न होकर औद्योगिक व्यवस्था के अनुसार है। इसमें छात्र, उसकी जिज्ञासा, उसकी अपनी सीखने की प्रक्रिया एवं आवश्यकता, रुचि व मानवीय संवेदनाओं का कोई स्थान नहीं है। इलिच ने माना कि शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी का स्वभाव व व्यक्तिगत विकास में सहायक नहीं, बल्कि उसे औद्योगिक समाज का हिस्सा बनाने का संस्थागत प्रयास है। वे कहते हैं, ''स्कूलमय' होकर छात्र, 'ज्ञान प्राप्ति' को 'शिक्षण' में, 'विद्या प्राप्त करने' को 'कक्षा पास करने में', 'क्षमता हासिल करने' को 'डिग्री सर्टिफिकेट लेने में' और 'कुछ नया कह पाने की योग्यता' को – 'वाक्चातुर्य बनाने' मे भ्रमित कर देता है।'' वास्तव में हम स्वाभाविक रूप से जीवन में काम करते हुए सतत सीखते हैं, केवल स्कूल की कक्षाओं में नहीं। स्कूल के प्रभाव में आकर यह मानने लगे हैं कि जिसने अधिक कक्षाएँ पास की है वह उतना ज्यादा ज्ञान में पारंगत हुआ है, जबकि हर व्यक्ति अपने अपने स्तर पर ज्ञानवान होता है। इसी तरह हम योग्यता का मूल्यांकन किसी की कार्यकुशलता से नहीं, बल्कि उसके डिग्री से आँकते हैं।

छात्र व शिक्षक की भूमिका का आलोचनात्मक विवेचन

छात्र व शिक्षक के संदर्भ में डि–स्कूलिंग सोसाइटी में इलिच ने कहा है कि सीखना सतत और जीवन के हर पल होने वाली प्रक्रिया है और उसे केवल बचपन या स्कूल तक सीमित करना अनुचित है लेकिन स्कूलमय होने के कारण हम मानने लगते हैं कि सीखना केवल बचपन में हो सकता है और स्कूल में ही सीख सकते हैं और शिक्षक ही सिखा सकता है। यह शिक्षकों के लिए शिक्षा बाजार की तरह जरूरत बन जाता है और हम मानने लगते हैं कि स्कूल का दिया प्रमाण पत्र ही सीखने का मानदंड है और ज्ञान स्कूली शिक्षण का ही प्रतिफल है। इस प्रकार का स्थापित सोच स्कूल की इस स्थिति की स्वयं सिद्धि को अनवरत मानता है।

इलिच कहते हैं कि स्कूल अपने छात्रों के समय व ऊर्जाओं पर पूर्ण अधिकार जताने का प्रयास करता है जिस कारण शिक्षक एक संरक्षक, उपदेशक व चिकित्सक की भूमिका हथिया लेता है।

संरक्षक शिक्षक – (Teacher as custodian) के रूप में :– सदाचारों–शिष्टाचारों के पूर्ण मालिक की भूमिका निर्वाह करता है। वह दिशा निर्देश देता है, वह नियमों का पालन करवाता है, और छात्रों को आधारभूत दिनचर्याओं के कठोर अभ्यास में बाँधे रखता है।

उपदेशक–शिक्षक (Teacher as moralist) के रूप में :– अध्यापक इस रूप में माता–पिता, ईश्वर व राज्य का स्थान ले लेता है। वह अपने अनुसार अपने छात्रों के मस्तिष्क में अच्छे–बुरे का उपदेश भरता है जो ज्ञान केवल स्कूल ही नहीं संपूर्ण समाज के बारे में होता है।

चिकित्सक –शिक्षक (Teacher as Therapist) के रूप में :– इस रूप में शिक्षक छात्र पर इतना अधिकार महसूस करता है कि वह उसकी निजी जिंदगी में हस्तक्षेप कर उसके जीवन का दिशा निर्धारण करता है।

इलिच की धारणा के अनुसार बच्चे को पूर्णकालीक छात्र के रूप में परिभाषित करने पर शिक्षक बालक के मन पर इस तरह सत्ता का प्रयोग करता है जिससे बालक अपने सहज विकास की प्रक्रिया में बाधा अनुभव करता है। इस प्रकार शिक्षकों को असीमित अधिकार मिलते हैं जिसका इवान इलिच आलोचना करते हैं और वैयक्तिक स्वतंत्रता का उल्लंघन मानते हैं।

इलिच जब स्कूल जैसी सामाजिक व राजनैतिक संस्थाओं – अस्पताल, पुलिस, न्यायालय, चर्च आदि के बारे में कहते हैं कि ये सभी संस्थाएँ व्यक्ति के विकास की अपेक्षा उसका विमानवीकरण –मानवीय गुणों से रहित करती जा रही हैं। इस प्रकार की संस्थाओं में सुधार की कोई संभावना नहीं बची है, इसलिए उन्हें जड़ से नष्ट कर देना ही व्यक्ति के स्वतंत्र विकास एवं समाज के विकास की जरूरत है।

इलिच जब वर्तमान शिक्षा व्यवस्था पर आक्रमण करते हैं तो वह आक्रमण पूर्णतः सामाजिक व राजनैतिक संस्थाओं एवं उनकी व्यवस्था पर आक्रमण होता है। चूँकि इस प्रकार की संस्थाओं का शिक्षा के माध्यम से पोषण होता है शिक्षा न केवल इन संस्थाओं का आवश्यक अंग है, बल्कि शिक्षा के द्वारा ही वर्तमान में सभी संस्थाएँ अपने अस्तित्व को बनाये रखने का प्रयास करती है। इवान इलिच ने शिक्षा व्यवस्था उद्योग, चिकित्सा, सामाजिक एवं राजनैतिक संस्थाओं का पूर्णतः उन्मूलन की वकालत की है। वे कहते हैं ''स्कूल के द्वारा सार्वभौमिक शिक्षा संभव नहीं है। वह उन वैकल्पिक संस्थाओं से भी संभव नहीं होगी जो वर्तमान स्कूलों के आधार पर बने हों।'' उनका आशय यह है कि किसी भी तरह का स्कूल सभी बच्चों की वास्तविक जरूरतों को समझकर उसके अनुरूप उन्हें शिक्षा नहीं दे सकती है। अतः वह कुछ ही बच्चों के लिए सार्थक हो सकता है सब के लिए नहीं।

गतिविधि

1. शिक्षक की संरक्षक, उपदेशक व चिकित्सक की भूमिका से क्या समस्या हो सकती है, इलिच के कथन की विवेचना कीजिए ?
2. ''स्कूल के द्वारा सार्वभौमिक शिक्षा संभव नहीं है।'' इलिच के इस कथन से क्या आप सहमत हैं ? अपने विचारों को तार्किक आधार पर स्पष्ट करें ?

ज्ञान प्राप्ति के वैकल्पिक ताने–बाने (opportunity web)

इलिच बालक के ज्ञान प्राप्ति के संस्थागत सभी प्रयासों के उन्मूलन करने की वकालत करते हुए वैकल्पिक तौर पर चार समुच्चयों का उल्लेख करते हैं, जिन्हें वे अवसर जाल/अवसर नेटवर्क की संज्ञा देते है। उनका मानना है कि इन सुनिश्चित प्रणालियों में या शैक्षणिक आदान प्रदानों में सच्ची ज्ञान प्राप्ति के सारे साधन मिल सकते हैं।

शिक्षा संस्थानों में सामान्यता शिक्षा के आयाम पाठ्यचर्या उद्देश्यों के अनुसार नामांकित किया जाता है। इसके विपरीत इलिच ने चार विभिन्न दृष्टिकोणों को रखा जिससे विद्यार्थी को शिक्षा संबंधी स्रोत तक पहुँचने योग्य बना दे

विभिन्न तरह की बातों को सीखने के लिए उपयुक्त माध्यम व प्रक्रियाओं तक पहुँच की जानकारी देने हेतु औपचारिक सेवाएँ –

जैसे – पुस्तकालय, प्रयोग शाला, खेल मैदान, म्यूजियम, थियेटर, अन्य चीजें जैसे फैक्ट्रियाँ, हवाई अड्डे, खेत व वन। वस्तुएँ– पुस्तक, गणक, कम्प्यूटर व अन्य जो शैक्षिक उद्देश्यों हेतु आवश्यक उपकरण हैं।

इन सभी साधनों व वस्तुओं पर गरीब–अमीर बिना भेदभाव के पहुँच सहज सुलभ हो।

दक्षता का आदान–प्रदान/हुनर विनिमय केन्द्र (Skill exchange Centre)

कोई भी व्यक्ति अपनी दक्षताओं (Skill) की सूची तथा उन्हें सिखाने के लिए अपनी शर्तो के साथ सूचना उपलब्ध करावें। शिक्षार्थी भी उपलब्ध विकल्पों में से स्वयं अपनी मर्जी के समय, स्थान और विधि को तय करते हुए अपने लिए उपयुक्त शिक्षक चुनें।

जैसे–भाषा पाठ, मोटर–ड्राइविंग, संचार उपकरण चलाना, कम्प्यूटर, फिल्म, रेडियो मेकेनिक, टी. वी., व आधुनिक उपकरण मैकेनिक..

जटिल दक्ष प्रशिक्षण–शल्य चिकित्सक के यांत्रिक पक्ष सारंगी वादक, संगीतज्ञ, शिस्य कौशल, कृषि विशेषज्ञ।

इसमें दक्षता का आदान–प्रदान ऐसे माध्यमों के अस्तितव पर निर्भर रहेगा जो विवरण सूचना, पुस्तिकाओं के विनिमय सुगम बनाए। इस व्यवस्था में आवश्यक तत्त्व यह भी हो कि दक्ष प्रशिक्षण जाँचे – परखे हुनरों के बाद सार्वजनिक नियंत्रण आवश्यक है।

समकक्षों का सुमेल (Peer Matching)

प्रत्येक शिक्षार्थी अपने संपूर्ण जानकारी सहित, गतिविधि का विवरण दे सकता है और वह अपने लिए सीखने के लिए समकक्ष योग्य साथी का चुनाव कर सकता है।

शिक्षकों की एक ऐसी व्यापक संदर्भ सेवा केंद्रों का विकास जहाँ ऐसी सूची तैयार हो जिसमें शिक्षा देने योग्य व्यावसायिक, अद्र्ध व्यावसायिक एवं फ्रीलांसर के पते ठिकाने हो एवं शर्ते दर्ज हों जिन शर्तो के अधीन अपनी सेवाएँ उपलब्ध करा सकते हैं। इस प्रकार विद्यार्थी अपनी रुचि अनुसार स्वतंत्र रूप में मार्गनिर्देशन हेतु सहज शिक्षाकारों से विधिवत पथ प्रदर्शन व दिशा निर्देश प्राप्त कर सकते हैं।

लेकिन संपूर्ण स्कूल व्यवस्था तथा सामाजिक व राजनैतिक संस्थाओं के उन्मूलन की अपेक्षा सबसे पहले ऐसी व्यवस्थाओं को पर्याप्त रूप से स्थापित करना उचित होगा जिनके माध्यम (जैसे–सार्वजनिक पुस्तकालय, प्रयोगशाला, थियेटर, कंप्यूटर एवं इंटरनेट सेवा आदि) से हर व्यक्ति अपनी रुचि और जरूरत के अनुसार सीख सके। समय और परिस्थिति के अनुसार संस्थाओं के स्वरूप, ढाँचागत व्यवस्थाओं में और प्रक्रिया में परिवर्तन की आवश्यकता है, बजाय इसके कि सभी संस्थाओं को बिलकुल ही नष्ट कर दिया जाए।

इवान इलिच सभी (हर वर्ग) को यह अधिकार देते हैं कि वे अपने तरीके से अपनी पसंद के अनुसार शिक्षा ग्रहण कर सकें। इलिच के विचार वर्तमान परिदृश्य में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे विचार के लिए शिक्षा का ऐसा स्वरूप प्रदान करते हैं जो मानवीय है और व्यक्ति को सीखने पर नियंत्रण और पूरी स्वतंत्रता देता हैं।

सारांशतः हम देखते हैं कि इवान इलिच अपनी रचना 'डिस्कूलिंग सोसाइटी' में निश्चित रूप से न केवल वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में स्कूल व्यवस्था पर आक्रमण करते है, अपितु यह आक्रमण पूर्णतः सामाजिक व राजनैतिक संस्थाओं एवं उनकी व्यवस्था पर है। इलिच के क्रांतिकारी विचारों में स्कूल व्यवस्था अथवा संपूर्ण निकाय के अस्तित्व पर ही प्रश्नवाचक दृष्टिकोण प्रतीत होता है। इलिच बिना किसी लाग–लपेट के स्कूल के अस्तित्व पर 'स्कूल क्यों हैं ? उसे भंग करो' अर्थात संपूर्ण रुप से स्कूलिंग निकाय के उन्मूलन का ही विचार रखते हैं। इलिच के इस तरह के प्रस्तावों पर कई शिक्षा शास्त्रियों ने अपने विचार व्यक्त किये जिनमें रोनाल्ड ग्रॅास, आर्थर पर्ल तथा नील पोस्टमैन आदि प्रमुख हैं।

यदि हम व्यापक दृष्टिकोण के साथ विचार करें तो पाएँगे कि शिक्षा व्यवस्था में स्कूल प्रक्रिया की इलिच द्वारा आलोचना बहुत ही गंभीर व पैनापन लिए हुए है तथा स्कूल प्रक्रिया के सम्पूर्ण प्रक्रियागत दोषों को तार्किक दृष्टिकोण से सप्रमाण प्रस्तुत किया है। इस प्रक्रिया में पड़ने वाले व्यापक परिणामों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। इन सभी शिक्षाशास्त्रियों ने इलिच द्वारा सुझाये गए हल तथा विकल्प को स्वीकार नहीं किया है, इन शिक्षाशास्त्रियों की राय में डिस्कूलिंग(विस्कूलीकरण) संपूर्ण व्यवस्था हेतु कोई आदर्श हल नहीं है।

इवान इलिच अपनी रचना 'डिस्कूलिंग सोसाइटी' में वैकल्पिक स्वरूप में बालक के ज्ञान प्राप्ति के आधारभूत ताने–बाने में अवसर जाल / अवसर नेटवर्क (Opportunity web) विकल्प के तौर पर प्रस्तुत करते हैं।

डिस्कूलिंग (विस्कूलीकरण) संपूर्ण स्कूल व्यवस्थाविहिन तथा सामाजिक व राजनैतिक संस्थाओं का उन्मूलन की अपेक्षा समय और परिस्थिति के अनुसार संस्थाओं के स्वरूप, ढाँचागत व्यवस्थाओं में और प्रक्रिया में परिवर्तन की आवश्यकता है, बजाय इसके कि सभी संस्थाओं को बिलकुल ही नष्ट करना। डिस्कूलिंग (विस्कूलीकरण) से अधिकांश गरीब, अशिक्षित व पिछड़े लोगो का प्रभावित हो सकते हैं, क्योंकि ऐसी स्थिति में ढाँचागत व्यवस्था टूटने पर सामान्यतया निम्न वर्ग बहुत अधिक प्रभावित होता है।

इवान इलिच अपनी रचना 'डि–स्कूलिंग सोसाइटी' में इलिच सभी (हर वर्ग) को यह अधिकार देता है कि प्रत्येक व्यक्ति व वर्ग अपने तरीकं से अपने पसंद के अनुसार शिक्षा ग्रहण कर सकें। इलिच के विचार वर्तमान परिदृश्य में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि इस आधार पर ऐसा मानदंड प्रदान करते हैं जो शिक्षा प्रक्रिया में सब की पहुँच हों तथा नई दिशा के साथ अधिक मानवीय बना सकें।

गतिविधि

अपने क्षेत्र के ऐसे लोगों के बारे में जानें, जिन्होंने अवसर जाल/अवसर नेटवर्क से सीखा हो ? आप अपने परिचित ऐसे लोगों की सूची बनाइए जिन्होंने अपने जीवन क्षेत्र में सफलता के श्रेय विद्यालय को नहीं दिया है।

समेकन

आधुनिक काल में सार्वभौमिक शिक्षा का जो स्वरूप बना वह राष्ट्रराज्य,, लोकतंत्र और औद्योगीकरण की जरूरतों से प्रभावित था। देशों को एक सूत्र में पिरोने के लिए शिक्षा का संचालन राष्ट्र के स्तर पर औपचारिक रूप से किया जाने लगा। चूँकि सभी लोग शिक्षा का खर्च वहन नहीं कर सकते थे इसलिए इसे एक स्तर तक अनिवार्य और निःशुल्क रखा गया। लोग देश की औद्योगिक प्रगति में योगदान करें और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में भाग ले सकें, इसके लिए यह दृष्टि रखी गई कि शिक्षा से बालक बालिकाओं के व्यक्तित्व में अंतर्निहित क्षमताओं में वृद्धि हो। जिससे कि हर एक का व्यक्तिगत विकास हो और उसके लिए प्रगति के रास्ते खुलें। इसी से समाज में व्याप्त असमानता और सामाजिक स्तरीकरण की जकड़न ढीली हो सकती थी, और सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा मिल सकता था। लोग अपने वर्ग से ऊपर उठ सकते थे।

शिक्षा के इस स्वरूप में एक प्रमुख बात यह थी कि यह प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा में बँटी हुई थी। इसके स्वरूप को राष्ट्रराज्य, लोकतंत्र और औद्योगीकरण की जरूरतों और प्रभाव से उपजी सामाजिक राजनैतिक परिस्थितियों ने भी प्रभावित किया। अगर हम इंग्लैंड का उदाहरण लेकर देखें तो पाएँगे कि वहाँ औद्योगीकरण की प्रक्रिया में हो रहे मजदूर वर्ग के बच्चों के शोषण और इससे उपजे असंतोष को दबाने तथा बच्चों में बुनियादी साक्षरता विकसित करने के लिए रविवारीय शालाएँ और चर्च विद्यालयों जैसे प्रयास किए गए। इसके साथ ही समाज के उच्च मध्य वर्ग के स्तर को बनाए रखने के लिए ग्राम शालाएँ बनाई गई। पर बाद में जाकर सभी तरह के बच्चों को एक स्तर तक समान शिक्षा देने की व्यवस्था की गई। इसलिए सार्वभौमिक शिक्षा के विकास को हम समाज में यथास्थिति को बनाए रखने और इसे बदलने की इच्छा रखने वालों के बीच हुए वैचारिक संघर्ष का परिणाम भी कह सकते हैं।

आधुनिक विश्व में सार्वजनिक शिक्षा के विकास के बारे में पढ़ते हुए हमने जाना कि सरकार द्वारा इसका संचालन हाथ में लिए जाने की अपेक्षा प्रारंभ में इसके पीछे यह मंशा नहीं थी कि सबको अच्छी व एक सी शिक्षा मिले, पर सारी दुनिया में लोकतंत्र ओर स्वतंत्रता के विचार का असर प्रारंभिक शिक्षा व्यवस्था पर पड़ा। इस कारण शिक्षा व्यवस्था को ज्यादा समावेशी बनाने का प्रयास किया गया। इससे इस विचार को भी बल मिला कि एक स्तर तक की शिक्षा सबके लिए उपलब्ध होनी चाहिए। इस कारण 6 से लगभग 15 साल तक की मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था ज्यादातर देशों में की गई।

सभी शिक्षा व्यवस्थाओं में एक उम्र के बाद बच्चों को विभिन्न व्यवसायों में बाँटने की व्यवस्था बनी, ताकि राज्य

और समाज की जरूरतों के अनुसार श्रमिक, लिपिक, चिकित्सक, प्रशासक तैयार करने में शिक्षा व्यवस्था सहायक हो सके, क्योंकि किसी भी देश की औद्योगिक, प्रशासनिक या सेवा आधारित व्यवस्थाओं को चलाए रखने के लिए कुशल श्रमिक से लेकर प्रशासक तक हर स्तर के व्यक्तियों की जरूरत होती है। शिक्षा व्यवस्था ने इस तरह के बँटवारे को स्वीकार्य बनाने का काम भी किया। विद्यालयों की परीक्षाओं का भी ऐसा स्वरूप बना जिसमें समाज के प्रभुता संपन्न वर्ग की भाषा, मान्यताओं, ज्ञान और संस्कृति का बोलबाला रहा। इस कारण समाज के कमजोर वर्ग के लोग, और सांस्कृतिक और भाषाई आधार पर अल्पसंख्यक लोग आमतौर पर उच्च शिक्षा से वंचित रहे। कमोबेश शिक्षा व्यवस्था के इस चरित्र के लक्षण हम भारत की, आज की व्यवस्थाओं में भी पाते हैं।

शिक्षा से अपेक्षा थी कि वह पहले से चली आ रही असमानताओं को दूर करेगी। उसने एक सीमा तक यह काम किया भी। पर कुछ आलोचकों के विचारों को पढ़ते हुए हमने जाना कि बड़े पैमाने पर व्याप्त सामाजिक असमानताओं को कम करने में वह सफल नहीं हो सकी।

यह भी देखा गया कि सीखने के अस्वाभाविक तरीकों, पढ़ाई और परीक्षाओं का दवाब, प्रतियोगिता और एक कक्षा में सबको एक स्तर का मानकर पेश आने के औद्योगिक तरीकों ने मानवीय मूल्यों को क्षति पहुँचाई। सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था की इन खामियों की तरफ कई शिक्षाविदों ने ध्यान दिलाया और कहीं ज्यादा मानवीय और हितकारी शिक्षा के विकल्प सुझाए।

विद्यालयी शिक्षा में यह द्वंद्व हमेशा बना रहा है कि उसके उद्देश्य क्या हों ? उसमें किसके दृष्टिकोण को प्रमुखता मिले, विद्यार्थी के, समुदाय के, बाजार के, किसानों के या देश और सरकार के ? यह प्रश्न भी रहा है कि शिक्षा की विषयवस्तु और भाषा स्थानीय जरूरतों के अनुसार अलग–अलग हों, या इसमें पूरे देश के स्तर पर एकरूपता हो ?

किसी भी समाज में इस तरह के सवालों पर विचार–विमर्श होते रहना अच्छी बात है। इसी से ज्यादा बेहतर शिक्षा का स्वरूप उभर सकता है।

प्रश्न

इंग्लैंड में धार्मिक शिक्षा को लेकर क्या विडंबनाएँ थीं ? इसका निराकरण किस प्रकार हुआ ? क्या आपको यह निर्णय भारत में भी प्रासंगिक लगता है ?

दत्त कार्य

1. अमेरिका व भारत की शिक्षा व्यवस्था की तुलना करें – दोनों में क्या समानताएँ व अंतर हैं ? अगर अमरीका की शिक्षा को और अधिक समतामूलक बनाना हो तो क्या करना होगा? भारत की शिक्षा व्यवस्था को अधिक समतामूलक बनाना हो तो क्या करना होगा ? अपने विचार लिखें।
2. जर्मनी, अमेरिका तथा इंग्लैंड में लगभग दस प्रतिशत लोग निजी विद्यालयों में पढ़ते हैं – आपके प्रदेश में यह अनुपात कितना है ? यह किस तरह समाज को फायदा या नुकसान पहुँचाता है ? अपने विचार लिखें।
3. इंग्लैंड, जर्मनी, और अमेरिका की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में से आपको कौन–सी शिक्षा अधिक पसंद है ? उसका निरूपण करते हुए कारण सहित समझाएँ।
4. इंग्लैंड, जर्मनी और अमरीका की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के समस्त सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विभेदों को ध्यान में रखते हुए राजस्थान की स्कूली शिक्षा व्यवस्था के लिए एक प्रस्तावित प्रारूप तैयार करें।
5. इवान इलिच और जॉन होल्ट के विचारों का तुलनात्मक विवेचन करें। दोनों के विचारों में किस तरह के अंतर व समानताएँ हैं ?

इकाई–3
वैश्वीकरण और शिक्षा

इकाई–3
वैश्वीकरण और शिक्षा

- परिचय
- उद्देश्य
- विषयवस्तु

3.1 वैश्वीकरण का आशय व प्रमुख विशेषताएँ

 3.1.1 पूंजी का प्रवाह

 3.1.2 उत्पाद का प्रवाह

 3.1.3 श्रमिकों का प्रवाह

3.2 वैश्वीकरण का राष्ट्र–राज्य पर प्रभाव

 3.2.1 औद्योगिक नीतियों पर प्रभाव

 3.2.2 वैश्वीकरण का सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव

 3.2.3 किसानों व असंगठित क्षेत्रों के कामगारों पर वैश्वीकरण का प्रभाव

3.3 वैश्वीकरण का शिक्षा पर प्रभाव

 3.3.1 पाठ्यक्रम पर प्रभाव

 3.3.2 शिक्षक की भूमिका में बदलाव

 3.3.3 भारतीय संदर्भ में वैश्वीकरण और शिक्षा

- समेकन
- दत्त कार्य

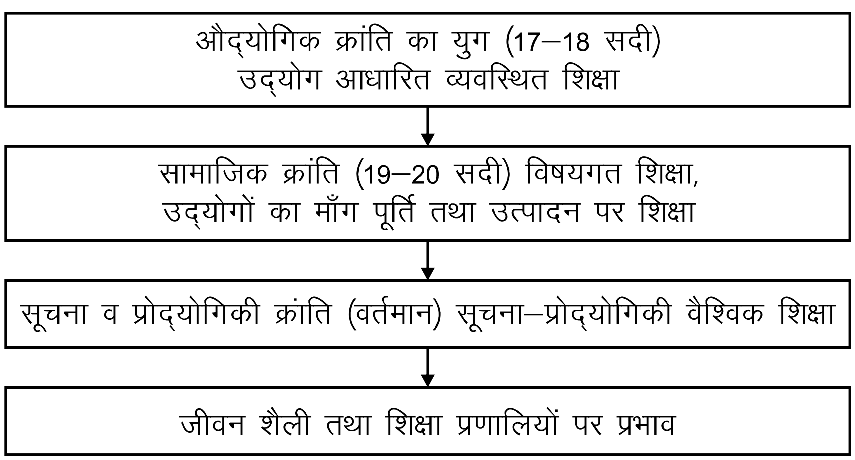
इकाई 3 वैश्वीकरण और शिक्षा

परिचय

इकाई 1 व 2 में आधुनिक युग की प्रक्रियाएँ औद्योगीकरण, राष्ट्र–राज्य और लोकतंत्र के संदर्भ में विस्तार से चर्चा की गई है। इनमें हमने विद्यालयी शिक्षा के विकास के बारे में भी जाना। आधुनिक युग के प्रारम्भ से औद्योगीकरण का व्यापक प्रभाव दिखाई देता है। विभिन्न मशीनों का निर्माण, उससे उत्पादन में वृद्धि, श्रम की बचत एवं तकनीकी विस्तार से विश्व के अनेक देशों में उत्पादित वस्तुओं की सहज सुलभता एवं विश्व अर्थव्यवस्था में तेजी से बढ़ती प्रतिस्पर्धा आधुनिक युग की देन है। 20वीं सदी के अंत तक आते–आते वैश्वीकरण की प्रक्रिया तेज हुई और उसका वर्तमान में दिखाई देने वाला स्वरूप उभरा।

1990 के दशक में उदारवाद व निजीकरण तेज़ी से राष्ट्र–राज्यों की अर्थव्यवस्थाओं को अपने प्रभाव में ले रहे थे जिसके अंतर्गत विभिन्न देशों में आयात–निर्यात पर लगे अंकुश को कम किया गया। जिन उद्योगों और सेवाओं का संचालन सरकार करती रही थी, उनको निजी कंपनियों को सौंपा जाने लगा तथा श्रम कानूनों को लचीला बनाया गया, ताकि बहुराष्ट्रीय कंपनियों का निर्बाध व्यापार व पूँजी निवेश इन राष्ट्र–राज्यों में बिना किसी भय व रुकावट के हो सके। इस तरह सरकारों ने अर्थव्यवस्था पर राज्य के नियंत्रण को ढीला किया और उसे निजी हाथों में सौंपने की प्रक्रिया तेज हुई। परिणामस्वरूप बहुराष्ट्रीय कंपनियों को विविध राष्ट्र–राज्यों में प्रवेश करने का मौका मिला, इसे हम वैश्वीकरण का वर्तमान दौर कह सकते हैं। जिसके उत्पन्न होने में सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् की परिस्थितियाँ खासकर विश्व व्यापार संगठन की उत्पत्ति, मुक्त व्यापार, निष्पक्ष व्यापार, अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा ऋण के नाम पर कुछ शर्तों को अपनाये जाने जैसे कारण प्रमुख रहे हैं, जिसमें औद्योगीकरण व सूचना एवं तकनीकी के विकास ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया को और तेज़ किया। इस प्रकार, से वैश्वीकरण आर्थिक क्षेत्र में आए तीव्र प्रवाह के कारण समस्त विश्व को एक सूत्र में पिरोने का आधार बन सका। इसलिए कहा जा रहा है कि विश्व एक ग्राम बन गया है क्योंकि आज सूचना, तकनीक, उत्पादन का प्रवाह अत्यंत आसान और व्यापक हो गया है।

प्रदर्श 3.1 विकास की प्रमुख स्थितियाँ



इस इकाई में पूँजी, श्रम व उत्पाद का विविध राष्ट्र–राज्यों में आदान–प्रदान, राजकीय उद्यमों का तीव्र गति से विनिवेश, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का पूरे विश्व में फैलाव आदि को समझने का हम प्रयास करेंगे। इसके साथ ही, हम बढ़ते आर्थिक प्रवाह में पूँजी के बदलते स्वरूप तथा श्रम एवं उत्पादन की गतिशीलता में आए परिवर्तन व उसके कारणों को समझने का प्रयास करेंगे। साथ ही वैश्वीकरण से राष्ट्र–राज्यों की भूमिका में आए परिवर्तनों एवं उनकी संप्रभुता पर होने वाले कथित आघात तथा कैसे वैश्वीकरण ने राष्ट्र–राज्यों की अतिराष्ट्रवादिता को कम किया और

राष्ट्रों की सीमाओं को शिथिल किया, यह भी हम देखेंगे। साथ ही, वैश्वीकरण से तेज़ी से हो रहे परिवर्तन ने लोगों की जीवन शैली, आपसी व्यवहार, सामाजिक ढाँचे एवं सांस्कृतिक पहचान को किस तरह प्रभावित किया है, इसका भी इस इकाई में अध्ययन किया जाएगा। शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य व्यवहार को भी वैश्वीकरण के प्रभाव से अछूता नहीं माना जा सकता। इसलिए शिक्षार्थी के बदलते दृष्टिकोण एवं व्यवहार को समझने हेतु शिक्षकों को भी आज की आवश्यकताओं को जानना होगा।

उद्देश्य

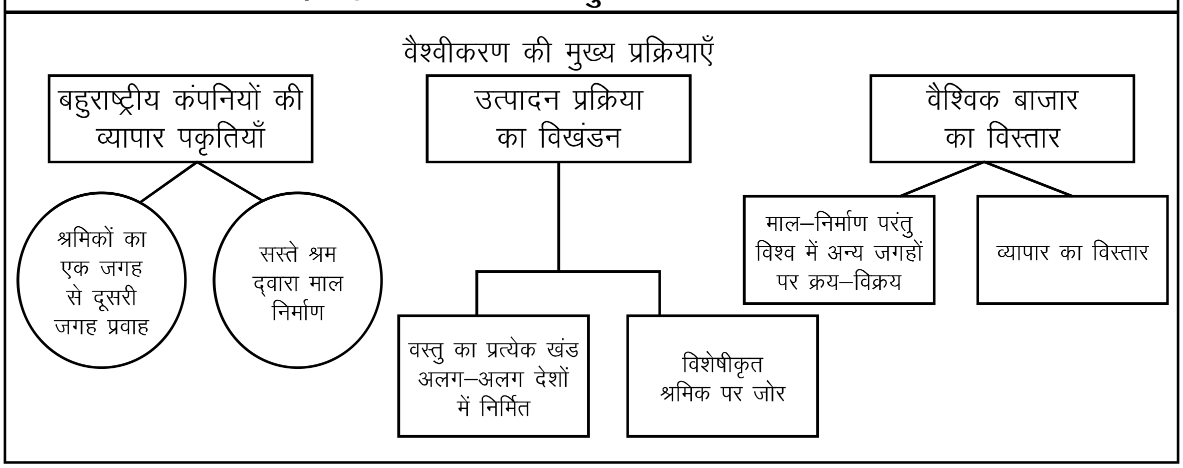
- वैश्वीकरण की विशेषताओं को समझते हुए विश्व के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों पर वैश्वीकरण के प्रभाव को समझना।
- वैश्वीकरण की प्रक्रिया को समझना।
- वैश्वीकरण व शिक्षा के अंतर्सबंधों को समझना।

3.1 वैश्वीकरण का आशय व प्रमुख विशेषताएँ

> राधा अपने तीन बच्चों के साथ जयपुर में रहती है, आज वह बहुत खुश हैं, क्योंकि उसकी बड़ी बेटी को आई.आई.टी से इंजीनियरिंग के बाद एक बहुराष्ट्रीय कंपनी, जो कि अमेरिका में हैं, में नौकरी मिल गई हैं तथा उसे अमेरिका जाना है। राधा का बेटा अपने मोबाइल से खेले जा रहा है, थोड़ी देर बाद अपनी बहिन को आश्चर्य से बताता हैं कि दीदी इस मोबाइल की बेटरी कोरिया में बनी हैं लेकिन यह मोबाइल वियतनाम में बना हैं जबकि इसका मेमोरी कार्ड चीन में बना हैं। राधा की छोटी बेटी अपनी बड़ी बहिन को अमेरिका जाने से पहले कुछ उपहार देना चाहती है इसलिए वह बाज़ार गई वहाँ उसने अपनी बहिन के लिए एक जींस खरीदी तो दुकानदार ने उससे कहा कि यह जींस अमेरिका में बनी है। यह सुनकर उसने अपनी बहिन से कहा हैं कि अमेरिका जाने से पहले ही आपको वहाँ की बनी जींस यहीं भारत में उपहार में दे रही हूँ।

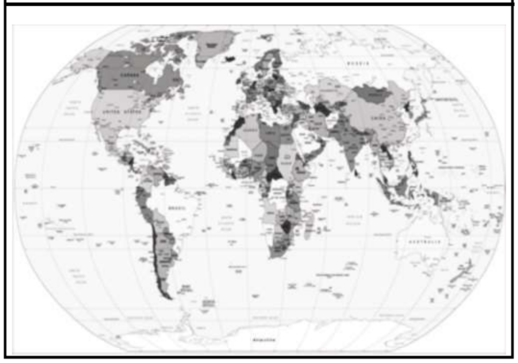
उपर्युक्त उदाहरण को विश्लेषित करने पर हमें मुख्य रूप से तीन प्रक्रियाएँ परिलक्षित होती हैं – पहली, रोज़गार के लिए राज्य या राष्ट्र की सीमा को लांघना; दूसरी, उत्पादन प्रक्रिया का विखंडन और उसका प्रत्येक खंड अलग–अलग देशों में होना; तीसरी, उत्पादित वस्तु की वैश्विक बिक्री। ये प्रक्रियाएँ मोटे तौर पर वैश्वीकरण को दर्शाती हैं। हालाँकि वैश्वीकरण की अवधारणा में और भी कई प्रक्रियाएँ निहित हैं, जिनकी चर्चा आगे अन्य उदाहरणों में करेंगे।

प्रदर्श 3.2 वैश्वीकरण की मुख्य प्रक्रियाओं का ग्राफिक



वैश्वीकरण का आशय

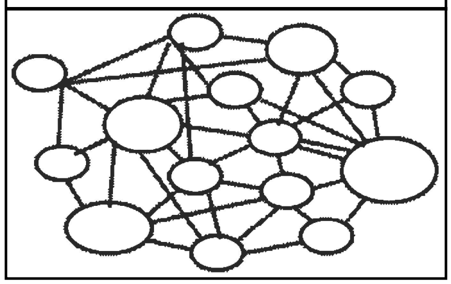
प्रदर्श 3.3 : विश्व मानचित्र



आज विभिन्न कंपनियों के टेलीविजन, स्कूटर, मोटर साइकिल, कार, रेफ्रिजरेटर, एयर कंडिशनर, कम्प्यूटर, वाटर प्यूरीफायर, मोबाइल फोन, विभिन्न ब्रांड के कपड़े, बैग व अन्य वस्तुएँ कई विविधताओं के साथ देखने को मिलती हैं। ये सब चीजें आज से लगभग 2–3 दशक पहले सीमित कंपनियों द्वारा उपलब्ध हुआ करती थी, किन्तु आज ये उत्पादन उच्च तकनीक के साथ सहज ही हमारे स्थानीय बाज़ारों में उपलब्ध हैं। एक ही उत्पाद के कई भाग विभिन्न देशों में बनते हैं। यह सब वैश्वीकरण की प्रक्रिया के प्रभाव से सम्भव हुआ है।

शाब्दिक तौर पर वैश्वीकरण या 'ग्लोब्लाइज़ेशन' एक प्रचलित शब्द हैं। वास्तव में वैश्वीकरण हाल ही की कोई परिघटना नहीं हैं। हज़ारों वर्षों से व्यापार, पर्यटन, संस्कृति व ज्ञान का आदान–प्रदान विश्व के देशों में होता रहा है, जिसके प्रमाण भी उपलब्ध हैं परंतु वर्तमान वैश्वीकरण की प्रक्रिया वर्तमान के अधिकांश सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक बदलावों का कारण भी है। यहाँ यह प्रश्न है कि आखिर वैश्वीकरण है क्या? वैश्वीकरण की कोई एक सटीक परिभाषा देना मुश्किल हैं किंतु इसके अर्थ को समझने का प्रयास किया जा सकता है। शाब्दिक दृष्टि से वैश्वीकरण से अभिप्राय विश्व व्यवस्था के एकीकरण की प्रक्रिया से है किंतु यहाँ वैश्वीकरण से आशय विश्व के राजनीतिक एकीकरण एवं विश्व सरकार के गठन से नहीं, वरन विश्व की आर्थिक व्यवस्थाओं के परस्पर जुड़ाव सेवाओं, वस्तुओं, श्रम, पूँजी व तकनीक के व्यापक प्रवाह व राष्ट्रों के मध्य बढ़ती आर्थिक –सांस्कृतिक अंतर्निर्भरता से है।

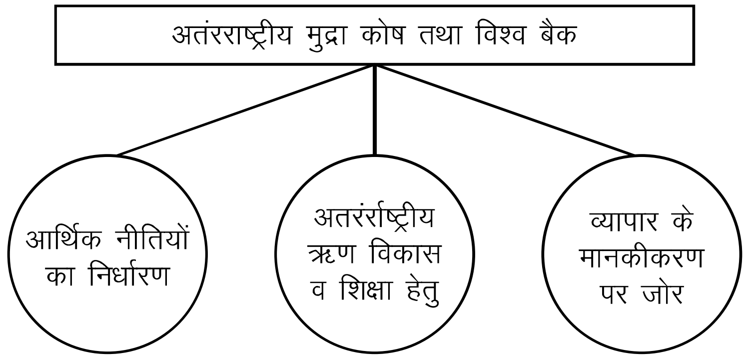
प्रदर्श 3.3 : वैश्वीकरण में देशो की आपसी अंतर्निभरता



चित्र प्रदर्थ 3.3 को ध्यान से देखिए इस चित्र में जो गोले हैं उन्हें विभिन्न देशों के रूप में तथा जो आढ़ी–टेड़ी रेखाएँ खींची हुई हैं, ये रेखाएँ आपसी आदान–प्रदान एवं देशों की आपसी अंतर्निर्भरता को दर्शा रही हैं। यह आदान–प्रदान, पूँजी, श्रम, उत्पादों, सेवाओं आदि का हो सकता है। आज विश्व अर्थव्यवस्था इसी प्रकार की दिखाई देती है। इस प्रकार, वैश्वीकरण एक प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत विश्व के विभिन्न राष्ट्र–राज्यों के मध्य आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, सूचना प्रौद्योगिकी एवं तकनीक के परस्पर प्रवाह की गति व इनके प्रसार के धरातल को सम्मिलित किया जा सकता है। संपूर्ण विश्व में 1980 के दशक की शुरूआत में इस प्रक्रिया की पृष्ठभूमि तैयार होना शुरू हुईं और 90 के दशक में यह तेजी से आगे बढ़ी। इस प्रक्रिया ने लंबी दूरी तक वस्तुओं की तीव्रतम आपूर्ति को कम लागत पर उपलब्ध कराने के कार्य को संभव किया। इससे विश्व के विभिन्न देशों के बीच अधिक से अधिक वस्तुओं और सेवाओं, निवेश और प्रौद्योगिकी का आदान–प्रदान हो रहा है।

आर्थिक प्रवाह वैश्वीकरण (ग्लोबलाइजेशन) का प्रधान आधार रहा है। आर्थिक प्रवाह से आशय पूँजी, श्रम व उत्पादित वस्तुओं के परस्पर आदान–प्रदान से है। इस आदान–प्रदान की प्रक्रिया को बल देने का कार्य बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने किया। ये वे कंपनियाँ हैं जो पंजीकृत तो किसी एक देश में हुई लेकिन उनका व्यापार विश्व के अनेक देशों में फैला है। उनके कारखाने विविध देशों में हैं तथा उनके कामगार व उच्च प्रबंधक कई देशों में निवास करते हैं। उनके उत्पाद का समस्त विश्व में आदान–प्रदान होता हैं। यह प्रक्रिया आर्थिक प्रवाह को प्रदर्शित करती हैं। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व व्यापार संगठन जैसी अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं ने भी विश्व में आर्थिक नीतियों के निर्धारण में और व्यापार के सार्वभौमिक तरीके की ओर ले जाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

प्रदर्श 3.5 वैश्विक आर्थिक संगठनों का प्रभाव



1980 के दशक में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए उदाहरणार्थ, विश्व की प्रमुख मानी जाने वाली समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं का पतन, सोवियत संघ, पूर्वी यूरोप एवं चीन जैसे साम्यवादी देश में भी आर्थिक सुधार की प्रक्रिया बढ़ने लगी तथा वैश्विक स्तर पर आर्थिक उदारीकरण की लहर फैलने लगी। विविध देशों ने अपने आर्थिक विकास हेतु खुले द्वार की नीति अपनाई तथा प्रशुल्कों एवं प्रशासनिक नियंत्रण सीमा में कमी की, जिसके परिणामस्वरूप निजी क्षेत्र को बढ़ावा मिला तथा उद्योगों का निजीकरण हुआ।

भारत में वैश्वीकरण की यह प्रक्रिया 1990 के बाद तेज़ी से आगे बढ़ी, जिसमें संचार क्रांति, कम्प्यूटर, उपग्रह चैनल के माध्यम से उत्पादन निवेश, वाणिज्य, पूँजी, श्रम संगठन, मनोरंजन, शिक्षा, बैंकिंग, बीमा, स्वास्थ्य, पर्यटन आदि क्षेत्रों को वैश्विक रूप प्रदान कर दिया है। भारत ने संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रमों (अर्थव्यवस्था को राज्य के नियंत्रण से चरणबद्ध तरीके से निकाल कर उदारीकृत करने की ओर बढ़ना) को अपनाया। राज्य नियंत्रित अर्थव्यवस्था में राज्य की भूमिका को कम करने का कार्य चरणबद्ध रूप से शुरू किया गया, जिसके परिणामस्वरूप निजीकरण को बढ़ावा मिला। भारत में बहु राष्ट्रीय कंपनियों के आगमन व विदेशी निवेश का मार्ग प्रशस्त हुआ। हमारे देश में अपने आर्थिक विकास हेतु उदारीकरण को आत्मसात किया जिसके परिणामस्वरूप भारत भी वैश्विक अर्थव्यवस्था से खुले मन से जुड़ गया। अब हमारे देश में भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों से सम्बद्धता व्यापक स्तर पर बढ़ने लगी है। इस तरह आर्थिक, सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रवाह व इनके प्रसार के धरातल ने भी भारत में भी वैश्वीकरण की वर्तमान प्रक्रिया प्रभावी रूप से शुरू की।

गतिविधि

- समूह में चर्चा कीजिए कि पिछले दस वर्षों में भारतीय मध्यम वर्ग की जीवन शैली में किस प्रकार के परिवर्तन देखने को मिलते हैं ? इन परिवर्तन से क्या उनके सामाजिक स्तर में बदलाव हुआ है। इस पर विस्तार से चर्चा करें।

हम कह सकते हैं कि वैश्वीकरण ने पूरी दुनिया को परस्पर जोड़ दिया है। यह एकरूपता एवं समरूपता की ऐसी प्रक्रिया बनकर उभरा है, जिसने देश–विदेश में उत्पादों एवं सेवाओं का सहज आदान–प्रदान किया तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रभाव को वैश्विक बना दिया है। इस तरह, वैश्वीकरण को हम विश्व–ग्राम की संकल्पना, विश्व एकमतता अथवा सहमति, नए अंतर्संबंधों का विकास, किसी भी समाज पर भौगोलिक दबाव की समाप्ति, आधुनिकीकरण का नया विस्तार आदि अनेक प्रक्रियाओं के रूप में देख सकते हैं।

3.1 वैश्वीकरण का आशय व प्रमुख विशेषताएँ

वैश्वीकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है। इसके राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आयाम है परंतु वैश्वीकरण

की कुछ खास विशेषताएँ भी है, जिससे वैश्वीकरण की वर्तमान प्रक्रिया को पहचाना जा सकता है। इन विशेषताओं में विचार, पूँजी, वस्तु, श्रम, तकनीक के प्रवाहों की गति और इनके प्रसार का धरातल वर्तमान वैश्वीकरण को अनूठा बनाती है। वैश्वीकरण की अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ पूँजी, उत्पाद व श्रमिकों का प्रवाह है।

पूँजी का प्रवाह

> शाहजी एक भारतीय उद्योगपति हैं, जो वस्त्र उद्योग से जुड़े हैं। कुछ वर्षों पूर्व उनका व्यापार बहुत नुकसान में चल रहा था। अपने उद्योग को बढ़ाने के लिए उनके पास पूँजी की कमी थी किंतु एक बहुराष्ट्रीय कंपनी के साथ मिलकर उन्होंने साझा व्यापार आरंभ किया तब से उनका कपड़े का कारोबार आज बहुत फल–फूल रहा है। उनके कारखाने में बनने वाली जींस आज विदेशी कंपनी के सहयोग से फ्रांस, जापान व जर्मनी जैसे देशों के बाज़ारों में बिक रही हैं।

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि आर्थिक उदारता के चलते अब विदेशी कंपनियाँ खासकर विकसित राष्ट्रों की कंपनियाँ विकासशील देशों में पूँजी का निवेश आसानी से करती हैं। पूँजी का यह प्रवाह दोनों ओर से होता है। इंटरनेट एवं कम्प्यूटर ने वस्तुओं और पूँजी की गतिशीलता को अत्यधिक बढ़ा दिया है। दुनियाभर के देशों के शासन–प्रशासन की स्थिति उनकी नीतियाँ, कानून, सरकार द्वारा की गई घोषणाएँ आदि की जानकारी संचार सुविधाओं के फैलाव और तेज़ गति के कारण कुछ ही क्षणों मे दुनियाभर में फैल जाती हैं। इसी तरह से किसी क्षेत्र अथवा राष्ट्र के बाज़ार, उत्पादन माँग, कच्चा माल, श्रमिकों की स्थिति आदि की सूचनाएँ भी विश्वस्तर पर उपलब्ध होती हैं। इस प्रकार की सूचनाओं के आधार पर पूँजीपति, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ किसी देश में पूँजी निवेश करने या न करने का फैसला शीघ्रता से करती हैं।

उदाहरण के लिए भारत में ही कई विदेशी कंपनियों ने स्वयं व भारतीय कंपनियों के साथ मिलकर उद्योगों का विस्तार किया है। जहाँ पर कई बड़ी कंपनियों में भारतीय शेयर धारक हैं। इस प्रकार वैश्वीकरण ने आज पूँजी के स्वरूप को ही बदल दिया है। पहले पूँजी का निवेश उद्योगों में हुआ करता था किंतु आज शेयर बाज़ारों में भी पूँजी निवेश होने लगा है। साथ ही दुनिया के बाज़ार जुड़ रहे हैं और विविध देशों की कंपनियाँ व उद्योगपति मिलकर काम कर रहे हैं।

उत्पाद का प्रवाह

वैश्वीकरण में पूँजी की गतिशीलता के साथ–साथ उत्पाद की गतिशीलता भी आर्थिक प्रवाह में दिखाई देती है। सूचना एवं प्रौद्योगिकी के विस्तार ने उसे और अधिक प्रभावित किया है आज किसी एक देश में बना उत्पाद पूरे विश्व के बाज़ारों में आसानी से उपलब्ध हो जाता है। यहाँ तक कि उत्पाद के निर्माण में कई देशों का हाथ एक साथ होता है। अतः आपसी निर्भरता व उत्पादों के आदान–प्रदान की गति तीव्र बनी रहती है। उत्पाद की तकनीकी उत्कृष्टता हेतु विश्व बाज़ार व्यवस्था मे प्रतिस्पर्धा बनी रहती है।

आज के उद्योगों में उत्पादन की प्रक्रिया का एक तरह से विखंडन या फैलाव हो गया है। पहले के उद्योगों में हम देखते थे कि कोई औद्योगिक उत्पाद पूरी तरह किसी एक कारखाने में बनता था। वर्तमान में हम पाते हैं कि कच्चे माल की उपलब्धता, सस्ता और कुशल श्रम, उद्योगों के अनुकूल नियम–कानून, अनुकूल जलवायु , बाज़ार से निकटता आदि के आधार पर उत्पादन प्रक्रिया का विखंडन किया जाता है। जैसा कि, हम पीछे एक उदाहरण में हम देख चुके हैं कि मोबाइल फोन की स्क्रीन किसी एक देश में बनती है, बैटरी कहीं, और अन्य पुर्जे कहीं और बनते हैं। फिर, उन सबका समायोजन कहीं और किया जाता है। इस प्रक्रिया में यह भी उल्लेखनीय है कि संभव है उस कंपनी का पंजीकरण किसी अन्य देश में हुआ हो और उसके मालिक अन्य कुछ देशों के नागरिक हों। उस कंपनी के प्रबंधक और शेयर धारक भी अलग–अलग देशों के नागरिक हो सकते हैं। दूरस्थ स्थानों पर फैला उत्पादन अंतर्संबंधित हो

रहा है। यह तो हम जानते हैं कि आजकल बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पाद दुनिया भर में बिकते हैं। इस तरह उत्पादन, प्रबंधन और वितरण का पूरा ढाँचा किसी एक राष्ट्र–राज्य की सीमा में केंद्रित न होकर वैश्विक हो गया है। इस कार्य को करने के लिए अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं, खासकर अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक व विश्व व्यापार संगठन ने आयात करों को न्यूनतम करने या खत्म करने की सिफारिश की और विभिन्न देशों को इसके अनुसार आयात करने पर जोर दिया। इसी कारण यह नारा दिया जाता रहा है कि "मुक्त व्यापार–निष्पक्ष व्यवहार" अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अवश्य हो।

प्रश्न

सूचना एवं प्रौद्योगिकी के विस्तार ने वैश्वीकरण के प्रवाह को कैसे प्रभावित किया ? चर्चा कजिए।

श्रमिकों का प्रवाह

आज विकासशील राष्ट्रों के वैज्ञानिक, इंजीनियर, डॉक्टर, विशेषज्ञ प्रबंधक, शिक्षाविद एवं वकील विकसित राष्ट्रों की ओर खींचे जा रहे हैं, जिससे इन राष्ट्रों में प्रतिभा पलायन (बेनड्रेन) जैसी समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। आज शिक्षा व रोज़गार के लिए वैश्विक आवाजाही बढ़ गई है, जिसके चलते राष्ट्रों के स्थानीय नागरिकों में अपने रोज़गार छिनने का भय भी बढ़ गया है। श्रम बाज़ार आज विश्वव्यापी हो गया है और श्रम बाज़ार की माँग को पूरा करने के लिए श्रम निर्यातक देशों में ऐसे कई एजेंट सक्रिय हैं जो वैध–अवैध तरीके से लोगों को विदेशों में काम दिलवाते हैं। अर्थात श्रम का प्रवाह अत्यधिक मात्रा में बढ़ गया है, जिनमें वीजा कानूनों में लचीलापन भी इसका एक प्रमुख कारण है।

साथ ही, आज बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने विश्व के विकासशील व अविकसित राष्ट्रों में अपने उत्पादन केंद्र खोलकर उत्पादन के भूमंडलीकरण को बढ़ावा दिया है। इन कंपनियों ने विकासशील देशों के बाज़ारों तथा उपलब्ध सस्ते श्रम को अपना आधार बना लिया है। पूँजी का आवागमन सरल हुआ एवं इस मार्ग में आने वाली बाधाओं को अंतरराष्ट्रीय वित्तीय एजेंसियों और विश्व व्यापार संगठन जैसे अंतरराष्ट्रीय मंचों के माध्यम से दूर करने का प्रयास किया।

इन विशेषताओं के साथ ही, अनेक व्यक्ति, संगठन और सरकारें वैश्वीकरण के दुष्प्रभावों से चिंतित भी हैं। इसमें रोज़गार, संसाधनों पर अधिकार और उनका दोहन, पर्यावरण असंतुलन, सामाजिक–सांस्कृतिक बदलावों आदि को लेकर तरह–तरह की आशंकाएँ व्यक्त की जा रही हैं। आर्थिक वैश्वीकरण के कारण सामाजिक न्याय के परिप्रेक्ष्य में कुछ लोगों की चिंताएँ बढ़ गई हैं। कुछ लोगों का मानना हैं कि वैश्वीकरण से आबादी के एक बहुत छोटे तबके को फायदा हो रहा है, अमीर अधिक अमीर होते जा रहे हैं तथा गरीब और अधिक गरीब होते जा रहे हैं। वैश्वीकरण से गरीब एवं पिछड़े देशों की भूमिका नगण्य होती जाएगी। इसके आधार पर अनेक देशों में जन–आंदोलन भी खड़े हुए हैं और कुछ देशों की सरकारें अंतरराष्ट्रीय मंचों पर साथ आकर अपने हितों की रक्षा का संघर्ष भी कर रही हैं।

इसी प्रकार औद्योगीकरण के कारण लोगों के परंपरागत व्यवसाय खत्म हुए तथा उन्हें रोज़गार के नवीन अवसर तलाशने पड़े। उन्हें जो रोज़गार मिले वह असंगठित क्षेत्र में (जैसे, ठेके पर काम करने वाले अकुशल श्रमिक के रूप में) प्राप्त हुए जिसमें इन लोगों को किसी भी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा जैसे– भविष्य लोक स्वास्थ्य सुरक्षा, पेंशन योजना का लाभ भी नहीं मिल पाता। इससे उनमें अपने रोज़गार के प्रति असुरक्षा का भाव सदैव बना रहता हैं।

प्रश्न

वैश्वीकरण का प्रभाव किन वर्गों पर नकारात्मक व किन वर्गों पर सकारात्मक रहता हैं ? इसकी सूची बनाएँ।

3.2 वैश्वीकरण का राष्ट्र–राज्यों पर प्रभाव

राजनीतिक दृष्टि से वैश्वीकरण के कारण विभिन्न राष्ट्र–राज्यों की नीतियों और प्राथमिकताओं में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने इन राष्ट्र–राज्यों को 'खुले द्वार' की नीति अपनाने अर्थात अपनी

राजनीतिक नियंत्रण की सीमाओं में कमी करने तथा अति राष्ट्रवादिता को छोड़ने पर मजबूर किया है। इन राष्ट्र–राज्यों पर एक नवीन अर्थव्यवस्था की स्थापना हेतु ज़ोर रहा जिसमें क्रमशः आयात पर करों में कमी, आयातित उत्पाद पर प्रतिबंधों का अभाव, राजकीय खर्च की न्यूनता, पूँजी निवेश एवं श्रमिकों के वेतन व नौकरी सुरक्षा संबंधी कानूनों में पूँजीपतियों के हित में बदलाव सम्मिलित है।

संभवतः यह सब उदारीकरण एवं निजीकरण के कारण ही हो सकता है, क्योंकि राजनीतिक क्षेत्र में उदारीकरण सरकारी तंत्र को उतना ही शक्तिशाली होने देता है, जिससे पूँजीवादी उद्देश्यों को पूरा किया जा सके। उदारीकरण व निजीकरण से सरकारी नीतियों के निर्धारण में उद्यमियों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों का हस्तक्षेप बढ़ता जाता है, लाइसेंस कोटा राज समाप्त किया जाता है तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को विनिवेश करके उनके शेयर निजी कंपनियों को सौंपे जाते हैं। ऐसा ही भारत में भी हुआ और विश्व के कई अन्य देशों में भी कमोबेश इसी प्रक्रिया को ही अपनाया गया।

3.2.1 औद्योगिक नीतियों पर प्रभाव

अभी तक जो राष्ट्र–राज्य अपने देश की औद्योगिक नीति के कर्णधार थे जिनके नियंत्रण में देश की अर्थव्यवस्था थी, परंतु वैश्वीकरण से उस नियंत्रण में शिथिलता आई है, उद्योगों की प्रकृति व उसमें निवेश मूलरूप औद्योगिक नीति पर निर्भर करता है। उदारीकरण व निजीकरण के कारण निजी हाथों में बड़े सार्वजनिक उद्योग सौंपे जाने लगे हैं, इसके लिए श्रम कानूनों को लचीला बनाना प्रारंभ किया गया है और सरकारी हस्तक्षेप बहुत कम कर दिया गया है। उदाहरण के लिए किसी राजकीय संस्थान में वहाँ की व्यवस्था पर सारा नियंत्रण संस्था प्रधान का होगा, किंतु उसे विकास हेतु किसी निजी संस्था के साथ जोड़ दिया जाए तो ऐसी परिस्थिति में उस संस्थान के समस्त व्यवस्थागत निर्णय में उस निजी संस्था के हित को भी को ध्यान में रखकर लिए जाएँगे।

अगर भारत के संदर्भ में इसकी बात करें तो वर्ष 1991–92 से 2000–02 तक भारत सरकार द्वारा औद्योगिक नीति में जो संशोधन किए वे इस प्रकार हैं –

1. सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या 17 से कम करके मात्र 3 क्रमशः प्रतिरक्षा उपकरण, रेल परिवहन, परमाणु ऊर्जा रह गई हैं।
2. अब केवल कुछ उद्योगों के लिए लाइसेंस की अनिवार्यता रखी हैं तथा बाकी समस्त उद्योगों को लाइसेंस से मुक्त कर दिया गया।
3. अनेक उद्योगों में विदेशी पूँजी लगाने में छूट दी गई।
4. सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में पूँजी निवेश की सुविधा प्रदान की।
5. उद्योगों में विदेशी पूँजी विनियोग में वृद्धि की गई।
6. भारत सरकार ने वर्ष 1997–98 में अंशधारियों को प्राप्त होने वाले लाभांश पर आयकर समाप्त कर दिया।

इस प्रकार, निजीकरण को बढ़ावा देने तथा सरकारी नियंत्रण को कम करने जैसे अनेक संशोधन भारत ने किए। जिसके कारण भारत के शासकीय नियंत्रण के स्वरूप में परिवर्तन आया। यद्यपि वैश्वीकरण के कारण भारत की अर्थव्यवस्था के आधारभूत क्षेत्रों में कुछेक महत्त्वपूर्ण सुधार हुए तथा निजी उद्यमों के रोज़गार के अवसरों में वृद्धि हुई तथा उपभोक्ता बाज़ार में अनेक उपभोग सामग्री की विविधता उपलब्ध हुई।

गतिविधि

''शिक्षा को समवर्ती सूची में लाने पर क्या तस्वीर बदली, केंद्र व राज्य की भूमिकाओं में क्या परिवर्तन आया है ? इस पर शिक्षक–प्रशिक्षक विद्यार्थी–शिक्षकों से चर्चा करें।

दूसरी ओर हम देखते हैं कि आम जनता के हितों की उपेक्षा भी हुई जिसमें बहुराष्ट्रीय कंपनियों को लाभ मिलता है। बड़ी मात्रा में निर्मित वस्तुएँ एवं कच्चा व निर्मित माल विदेशों से हमारे यहाँ आयात किया जाता है, जिससे विदेशी मुद्रा हमारे देश से दूसरे देशों में जाती हैं। इसी प्रकार, ये बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ चुने हुए स्थानों पर ही औद्योगिक इकाई स्थापित करती हैं, जहाँ इन्हें सस्ता श्रम, भूमि व अन्य सुविधाएँ आसानी से मिल जाए। इससे पिछड़े हुए क्षेत्रों का औद्योगिक विकास नहीं हो पाता है। यह क्षेत्रीय असमानता किसी भी राष्ट्र–राज्य के हित में नहीं मानी जा सकती हैं। धीरे–धीरे औद्योगिक विकास इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर ही निर्भर हो जाता है जो राष्ट्र के लिए दीर्घकाल में घातक भी सिद्ध हो सकता है, क्योंकि इन कंपनियों के सर्वेसर्वा तो दूसरे देशों में बैठे होते हैं और अपनी हानि देखते ही यह कंपनियां आसानी से बंद कर देश छोड़ जाते हैं।

वैश्वीकरण पर राष्ट्र–राज्य बहुराष्ट्रीय–निगम प्रणाली के वैश्वीकरण के चलते कमज़ोर पड़ गए हैं। उनकी संप्रभुता कम हो गयी है, ऐसा तर्क बार–बार दिया जाता है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया की शुरूआत से ही सामान्यतः राज्य ने लोक कल्याणकारी कार्यों से अपने हाथ खींच लिए और स्वयं को न्यूनतम हस्तक्षेपकारी राज्य में बदल लिया। सामाजिक न्याय जैसी संवैधानिक प्रतिबद्धता को किनारे रख दिया गया है। इन तथ्यों से इस तर्क को मजबूती भी दी जाती है परंतु अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में राज्य सदैव प्रधान कर्ता रहें हैं और रहेंगे। इसलिए राज्य की प्रधानता को वैश्वीकरण से कोई खतरा नहीं है, क्योंकि आज भी राज्य ही हर कार्य की वैधता का स्रोत है। वह कानून व व्यवस्था, राष्ट्रीय सुरक्षा, संचार जैसे अपने अनिवार्य कार्यों को आज भी पूरा कर रहा है और पहले से ज्यादा सशक्त रूप से अपने कार्यों को पूरा कर रहा है। इसके अतिरिक्त ही राज्य अत्यंत विचार–विमर्श कर ही उन्हीं क्षेत्रों में विदेशी निवेश व निजी उद्यमियों को मंजूरी दे रहा है, जहाँ राज्य को अपनी प्रभुसत्ता पर कोई बाहरी खतरा नहीं दिखाई दे रहा है, इसलिए कई लोग यह तर्क देते हैं कि वैश्वीकरण के कारण राज्य की शक्ति बढ़ी है क्योंकि उसके पास अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी व सूचना मौजूद है, जिसके दम पर राज्य ज्यादा कारगर ढंग से काम कर सकते हैं। इसलिए राष्ट्र–राज्य की संप्रभुता खत्म नहीं हुई है, न ही होगी, परन्तु यह संभव हो सकता है कि हमें ऐसे कुछ उदाहरण दिखें, जिसमें हम राज्य की शक्ति को क्षीण होते पहचान सकते हैं परंतु यह संपूर्णता में स्पष्ट रूप से परिलक्षित नहीं हो रहा है।

प्रश्न

आप किसी राज्य के ऐसे क्षेत्रों के उदाहरण खोजें जहाँ एक क्षेत्र में बहुत तेज़ी से औद्योगिक विकास हुआ है तथा दूसरा क्षेत्र बहुत पिछड़ा हुआ है। इनके क्या कारण रहे हैं, ज्ञात कीजिए।

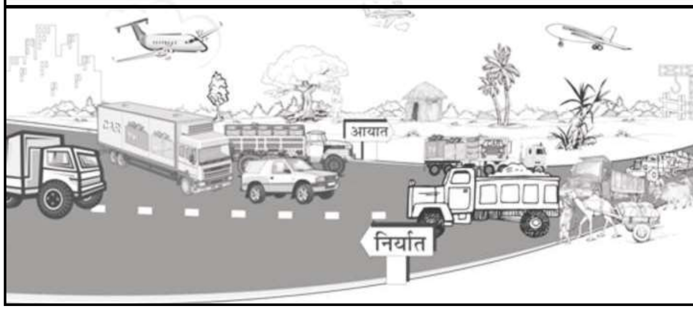
3.2.2 वैश्वीकरण का सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव

जैसा कि बताया गया है कि वैश्वीकरण एक बहुआयामी अवधारणा है। इसके राजनीतिक और आर्थिक और सांस्कृतिक आयाम भी है और वैश्वीकरण को मात्र एक आर्थिक घटना मात्र मानना एक भूल होगी, क्योंकि वैश्वीकरण के आर्थिक प्रवाह से सांस्कृतिक व सामाजिक प्रवाह भी व्यापक स्तर पर हुआ। एक देश के निवासी व्यवसाय के लिए विभिन्न देशों में जाकर बसे तथा अपनी सांस्कृतिक व सामाजिक जीवन शैली से उस देश के सामाजिक परिवेश को प्रभावित किया। फलस्वरूप, दो संस्कृतियों के आदान–प्रदान से नवीन सांस्कृतिक प्रतिमानों का विकास भी हुआ है।

उदाहरणार्थ, शील अपना एक बुटिक चलाता हैं। उसकी बड़ी बहन फ्रांस में बस गई हैं। वह शील से भारतीय परिधान व आभूषण मंगवाती है। शील की बहन से कई भारतीय व गैर भारतीय परिवार उससे आभूषण व परिधान मंगवाते हैं। शील बड़े स्तर पर इन भारतीय परिधानों व आभूषणों को वहाँ निर्यात करता हैं लेकिन अब शील ने भी फ्रांस जाकर बसने का निर्णय ले लिया है। उसने फ्रेंच भाषा भी सीख ली है। वहाँ जाकर अपनी बहन के साथ मिलकर उसने अपनी एक वेबसाइट बनाई जहाँ भारतीय परिधानों व आभूषणों के संदर्भ में ढेरों जानकारी दी जाती हैं। यही नहीं, उसने अपनी वेबसाइट से भारतीय व्यंजनों को बनाने के तरीके भी सीखाने शुरू कर दिए

हैं। आज बड़ी संख्या में देशी–विदेशी लोग उसकी वेबसाइट से जुड़े हैं। इस प्रकार यह सांस्कृतिक व सामाजिक विचारों का आदान–प्रदान का माध्यम बन गया है।

प्रदर्श 3.6 : वैश्वीकरण का प्रभाव



आज कम्प्यूटर, संचार व इंटरनेट ने दुनिया के राष्ट्रों, समुदायों, संस्कृतियों एवं व्यक्तियों के बीच के फासलों को कम कर दिया है। हम एक ऐसी वैश्विकृत संस्कृति की ओर अग्रसर हैं जहाँ वैश्विक उपभोक्ता के रूप में हमारे खान–पान, रहन–सहन, वेश–भूषा, जीवनकला, आचार–विचार, सभ्यता, भाषा का भेद कम होता जा रहा है। तकनीकी के प्रवाह ने परिवहन, सूचना एवं संचार माध्यमों से सम्पूर्ण विश्व को एक सूत्र में बाँधने का कार्य किया है। इसके माध्यम से उत्पादों की सुलभता एवं आवाजाही में आसानी तथा सूचना संप्रेषण का जाल पूरे विश्व में स्थापित हुआ है। इस कारण कुछ लोग इस प्रक्रिया को विश्व की संस्कृतियों के लिए खतरा मानते हैं। उनके मत में विश्व संस्कृति के नाम पर शेष विश्व पर पश्चिमी संस्कृति लादी जा रही है। दुनिया का मैक्डोनॉल्डीकरण हो रहा है जो केवल गरीब देशों के लिए ही नहीं बल्कि विश्व की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर के लिए खतरा बनता जा रहा है।

किंतु यह मत एकपक्षीय है, आज नवयुवक हो या बच्चे जींस, टी–शर्ट, फास्ट फूड, पॉप संगीत, हॉलीवुड फिल्में, सेटेलाइट टेलीविजन, मोबाइल फोन, इंटरनेट का उपयोग उनकी जीवन शैली का अभिन्न हिस्सा बन गए हैं क्योंकि सांस्कृतिक प्रभाव एकतरफा नहीं होता है। यह आदान–प्रदान सांस्कृतिक समृद्धि को बढ़ाता हैं, क्षीण नहीं करता। भारतीय संदर्भ में इसकी चर्चा करें तो जहाँ हमने पश्चिमी संस्कृति का अनुकरण किया वहीं ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं जिसके अंतर्गत भारतीय सांस्कृतिक प्रभाव अन्य देशों पर दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, विदेशों में जहाँ–जहाँ भारतीय रहते हैं। वहाँ पर भारतीय व्यंजनों के भोजनालय खुले हैं तथा सभी इन भारतीय व्यंजनों को खाते हैं। जीन्स जिसे अमरीकी संस्कृति से जोड़कर देखा जाता है, अब उस पर खादी के भारतीय कुर्तो को पहने भारतीयों व विदेशियों को भी देखा जा सकता है। साथ ही वस्तुओं के आदान–प्रदान के कारण ही भारत के पारंपरिक वस्त्र जिनमें साड़ी प्रमुख है, वह विदेशों व विदेशियों में काफी प्रचलित हो रही है। इसके अतिरिक्त भारतीय संगीत व कला का भी दुनियाभर में प्रसार हो रहा है। भारत की प्राचीन धरोहर 'योग' जो ऋषि–मुनियों की देन है तथा वर्तमान में कई योगगुरुओं द्वारा अनेक देशों में योग शिक्षा का प्रचार–प्रसार किया है। जिससे अनेक देशों के नागरिकों में अपनी जीवन शैली में अपनाया है। वर्तमान में यू.एन.ओ ने ''21 जून को विश्व योग दिवस'' भी घोषित किया है। यह सब सांस्कृतिक प्रवाह के आदान–प्रदान को ही अभिव्यक्त करता हैं।

प्रश्न

संचार माध्यमों के बढ़ते उपयोग का स्थानीय संस्कृतियों (रहन–सहन भाषा, पहनावा खान–पान इत्यादि) पर क्या प्रभाव पड़ा है ? इसके सकारात्मक व नकारात्मक पक्षों को सूचीबद्ध कीजिए।

विश्व के एक होने की भावना के चलते पर्यावरण प्रदूषण, आतंकवाद, विश्व मे शांति एवं सुरक्षा की समस्या एवं मानवाधिकारों का उल्लंघन जैसी वैश्विक समस्याओं को सबकी साझी समस्याएँ समझा जाने लगा है तथा इस हेतु परस्पर सहयोग से समाधान खोजने के प्रयास किए जाने लगे हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी राष्ट्र में किसी वर्ग के मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है, तो विश्व के अन्य राष्ट्र एवं संगठन इस हेतु आवाज़ उठाने लगे हैं। यह उस राष्ट्र

का आंतरिक मामला नहीं रह गया है।

इस तरह वैश्वीकरण की प्रवाह प्रक्रिया ने आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक सभी क्षेत्रों को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया है, जिससे हमारी जीवन शैली में आधारभूत परिवर्तन हुए हैं।

3.2.3 किसानों व असंगठित क्षेत्रों के कामगारों पर वैश्वीकरण का प्रभाव

वैश्वीकरण के इस युग में आर्थिक असमानता का स्तर और गहरा होता जा रहा है जिससे रहते छोटे खेतिहर किसानों व असंगठित क्षेत्रों में मज़दूरी कर रहे लोगों पर अधिक प्रभाव पड़ा है। उदारवादी बाज़ार व्यवस्था में खुली आयात नीति तथा सरकारी सहायता व संरक्षण की कमी के कारण देश के किसानों व मज़दूरों तथा उत्पादन से जुड़े अन्य वर्गों को विकसित देशों के श्रमिकों के समक्ष प्रतिस्पर्धा में ला खड़ा किया है। इससे इन विकसित राष्ट्रों के खेतिहर व अन्य उत्पाद भारतीय बाज़ारों में कम दामों में बिकते हैं, जबकि देश में हुए उत्पादन का मूल्य बढ़ जाता है। ऐसी प्रतिस्पर्धा में देश के ये वर्ग पीछे रह जाते हैं।

शहरों मे आप देख सकते हैं कि खेती छोड़कर गाँवों से अनके लोग काम की तलाश में आकर बसते हैं। आम तौर पर इनके पास शहरी और आधुनिक उद्योगों की ज़रूरत के मुताबिक ज्ञान और कौशल नहीं होता। इसलिए वे शहरों में रिक्शा चलना, भवन निर्माण, ढ़ाबों आदि बहुत कम पारिश्रमिक पर काम करते हैं या फिर ठेकेदार के अधीन मज़दूरी करते हैं। इसी प्रकार, आज गैर सरकारी असंगठित रोज़गार उभरे हैं और सरकारी संगठित विभागों में नौकरियाँ कम होती जा रही हैं। जिसके फलस्वरूप कामगारों को कम वेतन व अस्थायी नौकरियाँ मिल रही हैं। यह परिस्थितियाँ कामगारों की मनोदशा पर विपरीत प्रभाव ड़ालने वाली व उनमें असुरक्षा के भाव को विकसित करने वाली हैं। बड़े उद्योगों व बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन व इन वर्गों के विस्थापन से मज़दूरों को लाभ भी मिला हैं इनकी आर्थिक अवस्था में सुधार इनके परिवार की सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि एवं खेती व परंपरागत व्यवस्था के मुकाबले औद्योगिक क्षेत्र में काम से आय अधिक नियमित हुई है साथ ही इन लोगों ने शहरी परिवेश को भी अपनाया है।

प्रश्न

वैश्वीकरण के कारण श्रमिकों एवं किसानों पर पड़ने वाले प्रभावों को उल्लेखित कीजिए।

कई ऐसे पिछड़े क्षेत्रों के उदाहरण भी देखे जा सकते हैं, जहाँ बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन ने स्थानीय किसानों को उनकी भूमि और अस्तित्व के साधनों से वंचित कर दिया है।

आज एक समावेशी समाज को बनाने की आवश्यकता है, जिससे ये समुदाय भी बेहतर जीवन जी सकें; शिक्षा, स्वास्थ्य, सार्वजनिक सुविधाएँ, रोज़गार के अवसर मिलें समाजिक हैसियत बढ़े और वे मुख्यधारा में शामिल हों। इसके लिए इन वर्गों की शिक्षा व्यवस्था पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता हैं तथा इन्हें तकनीकी दक्षता व सूचना प्रौद्योगिकी के ज्ञान से भी जोड़ा जाए ताकि ये वर्ग भी आज की सामाजिक व्यवस्था में बेहतर स्थान पा सकें।

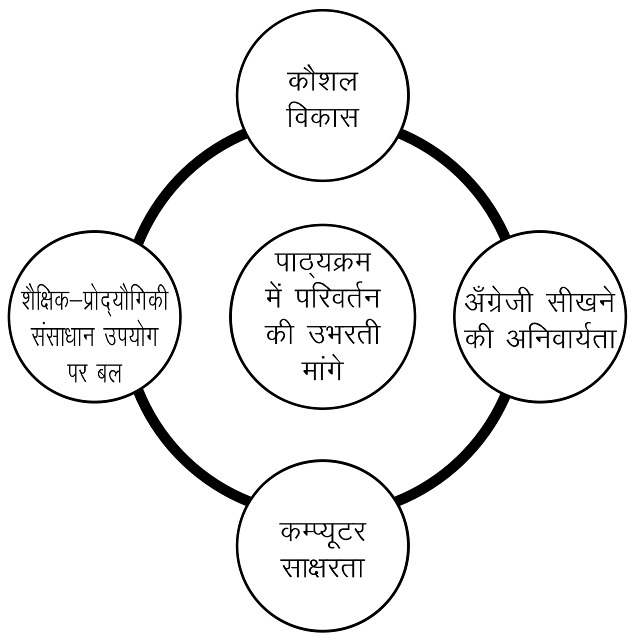
3.3 वैश्वीकरण का शिक्षा पर प्रभाव

वैश्वीकरण के दौर में आर्थिक प्रवाह ने जहाँ सामाजिक राजनीतिक व सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया हैं वहीं शिक्षा का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा है चूँकि शिक्षा आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक सभी पक्षों से जुड़ी हुई हैं। अतः इन क्षेत्रों में होने वाले प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष बदलावों का प्रभाव शिक्षा पर पड़ना स्वाभाविक है। शिक्षा स्वयं किसी सीमा तक सामाजिक गतिशीलता का माध्यम होती है। समाज के निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति में जहाँ शिक्षा सहायक होती है वहीं परिवर्तनशील समाज की नवीन परिस्थितियों में शिक्षा दिशा निर्देशन का कार्य भी करती है। ऐसे में वैश्वीकरण के प्रभाव से होने वाले परिवर्तनों ने शिक्षा के उद्देश्यों एवं उससे जुड़ी अपेक्षाओं में परिवर्तन

किया है।

वर्षों से राष्ट्र–राज्यों में शिक्षा के उद्देश्यों को लेकर द्वंद्व चला आ रहा है कि शिक्षा का उद्देश्यों, व्यक्तित्व निर्माण हो या उसे आजीविका अर्जन के लिए योग्य बनाना हो, वैश्वीकरण के दौर में इस सोच में बदलाव आया हैं। वैश्विक बाज़ार के दबाव के कारण सरकारें पाठ्यक्रमों और विषयवस्तु में बदलाव कर रही हैं। हम जानते हैं कि वैश्वीकरण के पहले आम तौर पर कला, वाणिज्य, विज्ञान जैसे विषयों और चिकित्सा, इंजिनीयरिंग जैसे व्यावसायिक पाठ्यक्रम हुआ करते थे लेकिन आज होटल प्रबंधन, सेल्स एवं मार्केटिंग, अस्पताल प्रबंधन, दुभाषिया, फोटोग्राफी, मॉडलिंग, पर्यटन इत्यादि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को अपनाया जा रहा है।

प्रदर्श 3.7 : पाठ्यक्रम में परिवर्तन के निहितार्थ



आज शिक्षा केवल पाठ्यक्रम आधारित नहीं रह गई है; वरन अभी तक समझी जाने वाली सह शैक्षिक प्रवृतियाँ शैक्षिक प्रवृतियों के रूप में बदल गई है। आज विभिन्न खेल, संगीत, वाद्य, नृत्य, नाटक तथा तकनीकी ज्ञान शिक्षा से मुख्य रूप से जुड़ गए हैं। इन क्षेत्रों का भी बाज़ारीकरण हो रहा है, जिससे शिक्षा का क्षेत्र और और अधिक व्यापक हो गया है। आर्थिक उन्नयन हेतु अवसरों में बहुत वृद्धि हो गई है। अतः जहाँ तक रोज़गार के अवसर हैं, वहाँ तक शिक्षा का क्षेत्र विस्तृत होने लगा है। इसी क्रम में शिक्षा से समाज के हर वर्ग की अपेक्षाएँ बढ़ गई हैं। आज समाज का हर वर्ग शिक्षा के माध्यम सामाजिक और आर्थिक रूप से ऊपर उठने की कोशिश कर रहा है।

उदाहरण के लिए, भोलू गाँव का एक छोटा किसान है तथा वह अपने बच्चे को खेती में लगाने के बदले पढ़ा–लिखाकर शहर में एक अच्छी नौकरी प्राप्त करने लायक बनाना चाहता है। इसके पीछे उसका उद्देश्य यही है कि उसका आर्थिक–सामाजिक उन्नयन हो और वह बेहतर जीवन जी पाए।

दूसरा उदाहरण अलका के माता–पिता का है, जो राजस्थान के एक छोटे कस्बे में होमियोपैथी के डॉक्टर हैं तथा उनकी इच्छा है कि उनकी बेटी एम.बी.ए. करके किसी बहुराष्ट्रीय कंपनी में नौकरी करे। इसके लिए यदि उसे विदेश भी जाना पड़े तो वे तैयार हैं।

इस प्रकार, इन दोनों उदाहरणों में यह देखा जा सकता है कि आज समाज के हर वर्ग का व्यक्ति अपने से उच्च सामाजिक पायदान पर पहुँचना चाहता है। इन परिवर्तित परिस्थितियों में लोगों की शिक्षा से अपेक्षाएँ बढ़ी हैं। आज शिक्षा अच्छे रोज़गार की प्राप्ति एवं उच्च सामाजिक स्तर पर पहुँचने का माध्यम बन गई है। वर्तमान में बेहतर रोज़गार पाने बाज़ार की माँग के अनुरूप योग्यताएँ अर्जित करने हेतु शिक्षित होना अनिवार्य है, इसलिए, वे सभी वर्ग जो पहले ऐतिहासिक कारणों से शिक्षा से दूर थे, वे आज शिक्षा से जुड़ रहे हैं। इस तरह से शिक्षा का प्रसार व्यापक हो रहा है। उपभोक्ता बनने के लिए भी शिक्षित होना ज़रूरी हैं इसलिए बाज़ारवादी शक्तियाँ भी भारत जैसे विकासशील देशों में शिक्षा के प्रसार को प्रोत्साहित कर रही हैं।

प्रश्न

व्यक्ति को अपने वर्तमान सामाजिक पायदान से ऊपर उठाने के लिए शिक्षा कैसे सहायक हैं ? वर्णन कीजिए।

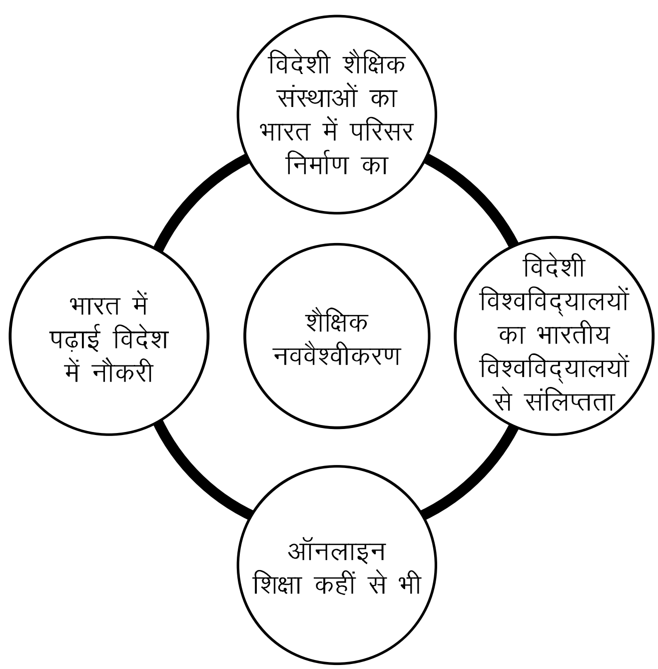
गतिविधि

समूह में चर्चा कीजिए तथा जानने का प्रयास करें कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया और शिक्षा का अधिकार कानून 2009 में क्या संबंध है।

3.3.1 पाठ्यक्रम पर प्रभाव

वैश्वीकरण के प्रभाव से आज शिक्षित एवं उच्च शिक्षा प्राप्त कामगारों की ज़रूरत बढ़ रही है। इसके कारण राष्ट्रीय सरकारों प्राथमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा पर ज़ोर देने लगी हैं। उन्हें यह ज्ञात हैं कि अपने देश में पूँजी के निवेश एवं ठहराव के लिए शिक्षित कामगार एवं ज्ञान मज़दूरों की आवश्यकता है। इस हेतु भाषाई कुशलता, खासकर अँग्रेज़ी भाषा का ज्ञान, गणितीय सोच, वैज्ञानिक तर्क, कम्प्यूटर की जानकारी आदि उच्च क्षमताओं की माँग बढ़ गई हैं। ध्यान देने योग्य बात यह भी हैं कि तकनीकी दक्षता से भी अधिक महत्त्व प्रबंधकीय कुशलता को दिया जा रहा है, क्योंकि व्यावसायिक उन्नति हेतु प्रबंधन की कुशलता निहायत जरूरी है।

प्रदर्श 3.8 :- पाठ्यक्रम में परिवर्तन के निहितार्थ



कुछ आलोचकों का कहना है कि आज की शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य लोगों को शिक्षित करने के स्थान पर साक्षर भर करना है; ताकि वे उत्पाद के लेवल और विज्ञापनों को जान सके, उन्हें पढ़ सकें जिससे वे आज की बाज़ारीकृत व्यवस्था में एक उपभोक्ता के रूप में शामिल हो सकें।

गतिविधि

प्रबंधन के पाठ्यक्रम के प्रति लोगों का रूझान क्यों बढ़ रहा है ? आपने प्रबंधन संबंधित कौन–कौन से पाठ्यक्रम के बारे में सुना है, अपने आस–पास के लोगों से चर्चा कर इसके प्रति बढ़ने वाले रुझान के बारे में विवेचना कीजिए।

3.3.2 शिक्षक की भूमिका में बदलाव

आज अंतरराष्ट्रीय शिक्षा तंत्रों के मध्य तुलना की जाने लगी हैं तथा यह प्रयास रहा है कि शिक्षा अंतरराष्ट्रीय मापदंडों के अनुरूप चले। दुनिया भर में शिक्षा संबंधी जानकारी व आँकड़े एकत्र करने पर ज़ोर दिया जा रहा है; जिससे शिक्षा की गुणवत्ता की जाँच की जा सके तथा छात्रों की उपलब्धि का आकलन किया जा सके। इनके आधार पर यह देखा जाता है कि शिक्षा पर किए गए खर्च की उपलब्धि कितनी रही? इसे राष्ट्रीय शिक्षा तंत्र विद्यालयी स्तर के सुधार हेतु उपयोगी माना जा रहा है किंतु इन सबने शिक्षक की भूमिका को प्रभावित किया है। शिक्षा के बढ़ते अंतरराष्ट्रीय नियंत्रण ने राष्ट्रों पर दबाव डाला जिसके परिणामस्वरूप विद्यालयी स्तर पर शिक्षक की स्थिति, उसके अधिकार व निर्णय लेने की क्षमता पर अकुंश लगा है, कागजी कार्रवाई बढ़ी हैं जिसके चलते कहीं ना कहीं शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रश्न चिह्न लगा है। (आगे इकाई 7 में हम शैक्षिक आँकड़ों के अध्ययन के बारे में विस्तार से पढ़ेंगे।)

इसी दौर में एक और स्थिति उभरती जा रही है, जिसने शिक्षक व शिक्षार्थी के मध्य संबंधों के स्वरूप को बदल दिया है। शिक्षक का कार्य परंपरागत पद्धति पर आधारित शिक्षण पद्धति से अध्यापन कराना व मात्र पाठ्यक्रम पूर्ण कराना भर नहीं रह गया है। आज नवीन तकनीकी पद्धतियों का प्रभाव बढ़ गया है। अतः शिक्षक को भी वैश्विक जानकारियों से अद्यतन (अपडेट) रहना पड़ता है।

गतिविधि

कक्षा में साथियों से चर्चा करें कि वैश्वीकरण के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव के रूप में शिक्षकों पर क्या–क्या नवीन उत्तरदायित्व आ गए हैं।

आज यह विचार प्रबल हुआ है कि बच्चों में ज्ञान की सृजनात्मकता का विकास हो, बच्चे स्वयं करके सीखें न कि शिक्षक के बताए अनुसार अनुकरण करें। ऐसे में शिक्षक एक नवीन भूमिका में अवतरित हो रहा है, जिसे सुगमकर्ता का नाम दिया जा रहा है। प्रायः देखा जा रहा है कि शिक्षार्थी भी कला, साहित्य विषयों के स्थान पर तकनीकी विषयों से रोज़गार की संभावनाओं से आकृष्ट हो रहे हैं। टेलीविजन, पत्र–पत्रिकाओं, इंटरनेट के जरिए वैश्विक जानकारी प्राप्त कर अपने अध्ययन के दायरे को बढ़ा रहे है। शिक्षकों में भी इस वैश्विकृत प्रक्रिया का हिस्सा बनने की प्रवृति तेज़ी से बढ़ रही है। वर्तमान युग की माँग के अनुरूप उन्हें भी अपनी भूमिका में बदलाव करना होगा।

शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन

वैश्वीकरण के युग में शिक्षा का स्वरूप आर्थिक हो गया है। अब शिक्षा आर्थिक व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है; जिसके कारण शिक्षा एक तरह से आर्थिक व्यवस्था का प्रतिफल बन गई है ऐसे में सारे बच्चे समान शिक्षा प्राप्त न करके अपनी–अपनी आर्थिक स्थिति के अनुरूप शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। इससे शिक्षा के माध्यम से समान नागरिक तैयार करने की राष्ट्र–राज्यों की योजना विफल हो रही हैं। इसे सामाजिक–आर्थिक अंतर का दृष्टिकोण विकसित करने में शिक्षा का स्वरूप सहायक की भूमिका निभा रहा है।

राज्यों द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में सुधार, जन सेवाओं के आधुनिकीकरण की आकांक्षाओं एवं बढ़ते अंतरराष्ट्रीय आर्थिक दबाव ने विश्व में शिक्षण संस्थाओं की अर्थव्यवस्था उस रूप में स्थापित की हैं, जैसे–कि W.T.O.(World Trade Organization), जैसी वैश्विक संस्थाएँ करना चाहती हैं। अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं का भारत जैसे राष्ट्र–राज्यों पर लगातार दबाव रहता है कि शासन अपने खर्च में कटौती करे। इसका सीधा प्रभाव राजकीय शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं पर पड़ता है। इससे शिक्षा की गुणवत्ता पर बुरा प्रभाव पड़ा है। शिक्षा के क्षेत्र में खर्च की कटौती के कारण शैक्षिक स्तर पर सुधारों को शासन द्वारा अनदेखी से भी शिक्षा की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार शिक्षा के निजीकरण के प्रभाव ने शैक्षिक असमानता में वृद्धि की है।

गतिविधि

- अपने आस–पास के ऐसे स्थानों का अवलोकन करें जहाँ पर कच्ची बस्ती में लोग रहते हैं तथा मज़दूरी करते हैं। उनसे मिलकर पूछिए कि उनके बच्चे कौन से विद्यालयों में पढ़ रहे हैं ? क्या पढ़ रहे हैं ? उनकी कक्षानुसार उन्हें कितना ज्ञानार्जन हुआ हैं ? तथा वे स्वयं इस हेतु कितने जागरूक हैं?और अपने बच्चों की शिक्षा के बारे में कितना समझ पाते हैं ?
- एक ऐसी पॉश कॉलानी का अवलोकन करें जहाँ धनाढ्य लोग रहते हैं, उनसे उनके बच्चों की शिक्षा के बारे में जानने का प्रयास करें तथा दोनों स्थितियों के अंतर का वर्णन कीजिए।

3.3.3 भारतीय संदर्भ में वैश्वीकरण और शिक्षा

भारत के संदर्भ में देखें तो यहाँ भी वैश्वीकरण के लगभग उन सभी प्रभावों को देखा जा सकता है, जिसकी हम चर्चा कर चुके हैं। भारत की शिक्षा प्रणाली को दो रूपों में देखा जा सकता है : एक ओर, यह प्रयास रहा है कि वह देश के संविधान के मूल्यों के अनुरूप कार्य करे; संविधान में सम्मिलित शिक्षा व समाजिक विकास के मूल उद्देश्यों के अनुरूप शैक्षिक नीतियों का निर्माण किया जाए किंतु एक अन्य रूप में, बाज़ार आधारित नीतियों पर बल दिया जाने लगा तथा अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक की भूमिका भारतीय शिक्षा क्षेत्र में बढ़ गया।

कुछ आलोचकों ने इस संदर्भ में विश्व बैंक की भूमिका पर संदेह व्यक्त किया है। उनके मतानुसार विश्व बैंक ऐसी व्यवस्था करना चाहता है, जिससे समाज के हर वर्ग के लिए अलग–अलग गुणवत्ता वाली शिक्षा दी जाएगी। जिससे गरीब बच्चों को मिलने वाली शिक्षा का स्तर निम्न होगा। कुछ आलोचकों के अनुसार शिक्षा भेदभावपूर्ण समाज के पुनरुत्पादन की शिक्षा हैं जो गरीब बच्चों को मज़दूरी के लिए तैयार कर रहे हैं, न कि अर्थव्यवस्था में अपनी न्यायपूर्ण हिस्सेदारी माँगने हेतु। वैश्वीकरण ने निःसंदेह देश में रोज़गार के वृहद अवसरों को बढ़ाया है, किन्तु इस युग में शिक्षा का भी निजीकरण और बाज़ारीकरण हुआ है। जिससे शिक्षा के उद्देश्यों में औद्योगिक व व्यापारिक हितों की प्रधानता बढ़ गई है। इन सभी प्रभावों के मद्देनजर भी शिक्षा के वृहत्तर स्वरूप व नई पहलों, नवाचारों, मूल्यों के महत्त्व के प्रति भी सजगता बनी रहती है।

प्रश्न

वैश्वीकरण के कारण शैक्षिक अवसरों में आए बदलावों पर समूह में विचार करें तथा उन अवसरों के विभिन्न क्षेत्रों के चिह्नित करने का प्रयास कीजिए।

समेकन

प्रस्तुत इकाई में आज के युग की एक महत्त्वपूर्ण प्रघटना वैश्वीकरण के संदर्भ में समझ बनाने का प्रयास किया गया। इस इकाई के अंतर्गत वैश्वीकरण के आर्थिक, सामाजिक, व सांस्कृतिक प्रभावों की विवेचना की गई है। साथ

ही, वैश्वीकरण का राष्ट्र–राज्य और उनकी नीतियों पर जो प्रभाव हो रहा है उसकी चर्चा भी हमने की है।

हमने देखा कि समाज के हाशिए पर धकेले गए लोगों को राज्य की उदारवादी नीतियों की वजह से रोज़गार व जीवन स्तर सुधारने के कुछ मौके ज़रूर मिले हैं, लेकिन साथ ही बहुत से लोगों को अपने निवास स्थान व आजीविका के साधनों से वंचित भी होना पड़ा है।

वैश्वीकरण के प्रभाव से शिक्षा के उद्देश्यों में कई मायनों में परिवर्तन हुआ है तथा शिक्षा के स्वरूप को नवीन आर्थिक युग के अनुरूप बदला गया है। अंतरराष्ट्रीय परिस्थिति और राजकीय नीतियों में होने वाले बदलावों के प्रभाव से भारत की शिक्षा व्यवस्था में जो परिवर्तन हुए हैं, जो सुधार और नवाचार किए गए हैं, उनके बारे में हम आगे की इकाइयों में पढ़ेंगे।

दत्त कार्य

1. अपने आस–पास पड़ौस के किन्हीं 4 से 5 बुजुर्ग व्यक्तियों का साक्षात्कार करें और उनके बचपन और युवा अवस्था के समाज के बारे में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करें इस हेतु एक प्रश्नावली पूर्व में तैयार कर लें। प्रश्नावली हेतु निम्न प्रश्नों का चुनाव भी कर सकते हैं–
    - आपके बचपन एवं युवा अवस्था में आजीविका के साधन क्या थे ?
    - आपके बचपन एवं युवा अवस्था में लोग बाज़ार पर कितना निर्भर थे ? (बाज़ार से क्या खरीदते थे, क्या बेचते थे तथा क्या समान बाज़ार से नहीं लाते थे ?)
    - आपके बचपन एवं युवा अवस्था में विद्यालयी शिक्षा का क्या महत्त्व था ?
    - आपके बचपन एवं युवा अवस्था में खाली समय में लोग क्या करते थे ?
    - आपके बचपन एवं युवा अवस्था में पारिवारिक और सामाजिक रिश्ते किस प्रकार के थे ?
    - आपके बचपन एवं युवा अवस्था में उनके लिए आधुनिकता का क्या अर्थ था ?
2. एक स्क्रेप बुक का निर्माण करें जिसमें वैश्वीकरण के संदर्भ में विभिन्न प्रकार की जानकारी अखबार की कटिंग, पत्रिकाओं में प्रकाशित खबरें इत्यादि को संकलित कीजिए।
3. वैश्वीकरण के सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलुओं पर एक निबंध लिखिए।
4. आप एक बाज़ार का सर्वेक्षण करें, जिसमें विभिन्न प्रकार की दुकानों (जूते, कपडे, इलेक्ट्रोनिक सामान) की सूची बनाएँ और पता करें कि प्रत्येक ब्रांड मूलतः किस देश का है ?
5. माना कि आप एक विद्यालय के संस्था प्रधान हैं और उस विद्यालय के संचालन में सहायता करने का प्रस्ताव एक निजी संस्थान से मिलता है तो आप उस पर क्या निर्णय करेंगे ? कारण सहित बताइए।
6. वैश्वीकरण का शिक्षा व विद्यालयी शिक्षण व्यवस्था (पाठ्यक्रम, शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षा से अपेक्षाएँ आदि) पर किस प्रकार का प्रभाव पडा इस पर एक नाटक तैयार करें तथा कक्षा में प्रस्तुति दें।
7. समाचार पत्र, इंटरनेट, पत्रिकाएँ, पुस्तकें आदि के माध्यम से कम से कम दो केस स्टडी पता करके लिखिए जिनमें किन्हीं व्यक्तियों और समुदायों पर उदारीकरण की नीतियों का प्रभाव पडा है। (यह प्रभाव सकारात्मक व नकारात्मक किसी भी प्रकार के हो सकते हैं।)

इकाई–4
स्वतंत्रता के बाद भारत में शिक्षा का विकास : 1947 से 1992 तक

इकाई 4

स्वतंत्रता के बाद भारत में शिक्षा का विकास : 1947 से 1992 तक

परिचय

आज़ादी के समय हमारे देश के सामने तीन मुख्य चुनौतियाँ थीं – पहला, राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधते हुए लोकतंत्र को सुदृढ़ करना; दूसरा, कृषि और औद्योगिक उत्पादन बढ़ाकर देश को आत्मनिर्भर बनाना, तीसरा, देश में मौजूद सभी तरह की विविधताओं को सम्मानजनक स्थान देते हुए समानता और सामाजिक न्याय की स्थापना करना। भारत जैसे विशाल भू–भाग और जनसंख्या वाले देश में इन चुनौतियों का सामना करना आसान नहीं था। इसके लिए शिक्षा सहित हर क्षेत्र में बुनियादी परिवर्तन लाने की ज़रूरत थी।

पिछले वर्ष ''भारतीय समाज और शिक्षा'' विषय में आपने पढ़ा है कि अँग्रेजों द्वारा आधुनिक विद्यालयी शिक्षा मूलतः औपनिवेशक हितों का ध्यान रखते हुए विकसित की गई थी। आज़ादी के समय भारत की जनसंख्या का केवल 12.2 प्रतिशत ही साक्षर था और विद्यालयी शिक्षा तक लोगों की पहुँच भी सीमित थी। स्वतंत्र भारत में सार्वजनिक स्कूली शिक्षा से यह अपेक्षा थी कि वह समाज के हर तबके तक पहुँचे और समता, लोकतंत्र और आपसी भाईचारे का बीजारोपण करें। साथ ही यह अपेक्षा थी कि विद्यालयी शिक्षा देश की आत्मनिर्भरता और आर्थिक विकास को गति देने के लिए उपयुक्त दक्षता और कौशल भी विकसित करे।

सन् 1950 से पंचवर्षीय योजनाओं के जरिए देश में योजनाबद्ध आर्थिक विकास का दौर शुरू हुआ। इसका असर स्कूली शिक्षा ढाँचे, उसके स्वरूप और उससे की जाने वाली अपेक्षाओं पर भी पड़ा था। विकास के अलग–अलग दौर में शिक्षा से अपेक्षाएँ और उसकी आवश्यकताएँ भी बदलीं। शिक्षित युवाओं से यह अपेक्षा रही कि वे दफ्तर में बाबू बनने की होड़ में न लगे रहें, बल्कि वे अधिक उपज लेने वाले किसान बनें, किसी कारखाने के कुशल श्रमिक, मैनेजर या ऐसे ही किसी पेशे में दक्ष होकर औद्योगिक विकास में योगदान दें। वे देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था में जागरूक और सक्रिय नागरिक की भूमिका निभाएँ।

बदलते राजनैतिक–आर्थिक हालात और समाज की बदलती अपेक्षाओं और आकांक्षाओं के मद्देनजर शिक्षा में किए जाने वाले बदलावों को सुझाने के लिए सरकार ने समय–समय पर विविध शिक्षा आयोगों का गठन किया है। जन आकांक्षाओं और आयोगों की सिफारिशों के प्रकाश में सरकार ने शिक्षा से संबद्ध नीतियों का निर्माण भी किया तथा शिक्षा के ढाँचे में परिवर्तन किये। इस इकाई में हम आज़ादी के बाद से 1992 तक गठित विविध आयोगों, उनकी सिफारिशों, नीतियों और विद्यालयी शिक्षा में हुए परिवर्तनों को समझने की कोशिश करेंगे। आज़ाद भारत में हुए इन शैक्षिक बदलावों से परिचय के जरिए आप यह समझ पाएँगे कि किस तरह समय–समय पर शिक्षा की नीतियों में भी बदलाव हुए। इस इकाई में हम यह जानने की भी कोशिश करेंगे कि किस तरह से देश के राजनैतिक–आर्थिक हालातों में बदलाव का असर विद्यालयी शिक्षा पर पड़ा और साथ ही यह भी देखेंगे कि कैसे शिक्षा के प्रसार ने समाज की अपेक्षाओं और आकांक्षाओं को रूप, आकार, दिशा और स्वर प्रदान किया।

उद्देश्य

1. स्वतंत्रता के बाद भारत में हुए शैक्षिक विकास के परिदृश्य की जानकारी की समझ विकसित करना।
2. स्वतंत्रता पश्चात् बने शिक्षा–आयोगों के प्रमुख सुझाव और उनके क्रियान्वयन की समीक्षा करना।
3. विभिन्न शिक्षा नीतियों का संदर्भ, औचित्य और क्रियान्वयन की समीक्षा करना।
4. शैक्षिक चुनौतियों से सामना करने व उनका समाधान खोजने की समझ विकसित करना।

4.1 उच्च शिक्षा एवं माध्यमिक शिक्षा आयोग : समीक्षा

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय सामाज में मौजूद विविधताओं को समाहित करते हुए राष्ट्र की एकता और अखंडता को बनाए रखना प्राथमिकता थी। साथ ही, नए राष्ट्रीय मूल्यों को स्थापित करना था। नवनिर्मित राष्ट्र की बुनियाद के रूप में हमने स्वतंत्रता, लोकतंत्र, पंथ निरपेक्षता, न्याय, बंधुता आदि मूल्यों को स्वीकार किया था। इन मूल्यों की समाज में स्थापना और प्रसार में स्वाभाविक ही स्कूली शिक्षा को भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी थी।

लेकिन आज़ादी के वक्त भारत में शिक्षा का प्रसार सीमित था। आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा तबका स्कूली शिक्षा और उससे मिलने वाले लाभों (जैसे – रोजगार के अवसर, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि) से कोसों दूर था। 1947 में भारत में साक्षरता सिर्फ 12.2 प्रतिशत थी। इससे पता चलता है कि भारत में अँग्रेज़ी शिक्षा की लगभग डेढ़ सौ वर्षों की लम्बी कालावधि में शिक्षा का प्रसार बहुत कम हुआ। प्राथमिक विद्यालय में दाखिल होने वाले 100 बच्चों में लगभग 25 बच्चे माध्यमिक विद्यालयों में पहुँच पाते थे। विश्वविद्यालयों में तो उनमें से सिर्फ 2 बच्चे ही जा पाते थे।

आज़ादी के समय देश में शिक्षा का ढाँचा :

स्कूली शिक्षा कक्षा 1 से 10 तक होती थी। आम तौर पर प्राथमिक कक्षाएँ 1 से 4 तक मानी जाती थीं, उनके बाद कक्षा 5 से 8 तक उच्च प्राथमिक स्कूल होता था। हाई स्कूल में कक्षा 9 और 10 होती थी। इसके बाद मेट्रीक्यूलेशन सर्टिफिकेट परीक्षा होती थी। यह ढाँचा कुछ बदलावों के साथ भारत के सभी प्रान्तों में लागू था। इसके बाद उस समय महाविद्यालय स्तर पर दो वर्ष का इंटरमीडिएट कोर्स होता था, जो मैट्रिक्यूलेशन के बाद और स्नातक उपाधि के पहले होता था। स्नातक उपाधि (बी.ए., बी.एस.सी. आदि) दो वर्ष की होती थी। इस तरह उस समय शिक्षा की 10+2+2 व्यवस्था लागू थी।

4.1.1 संविधान में शिक्षा

स्वतंत्र भारत में बने नए संविधान में ऐसे अनेक प्रावधान हैं जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शिक्षा से जुड़े हुए हैं। शिक्षा का दायित्व किसका हो – केंद्र सरकार या राज्य सरकार का ? अल्पसंख्यक समुदायों के किस तरह के सांस्कृतिक अधिकार हों ? एक बहुभाषी देश में किन भाषाओं में शिक्षा दी जाए और किन भाषाओं में राजकीय कामकाज हो ? क्या अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा हर बच्चे का संवैधानिक अधिकार हो ? गहन चर्चा के बाद इन सब बातों पर संविधान निर्माताओं ने निर्णय लेकर संविधान की रचना की।

राज्य सूची, केंद्र सूची या समवर्ती सूची

देश की विविधताओं को देखते हुए यह तर्क भी दिया जाता था कि शिक्षा को राज्य का विषय रखना अधिक उचित है। हर राज्य अपनी विशिष्ट ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा नीति बनाए और अमल करे लेकिन शीघ्र ही इस नीति की सीमा दिखने लगी। राष्ट्र निर्माण में शिक्षा का महत्त्व, शिक्षा को फैलाने के लिए कई राज्यों के पास धन का अभाव, आदि बातों के चलते यह दबाव बनने लगा कि हर स्तर की शिक्षा में केंद्र की भूमिका और हस्तक्षेप की ज़रूरत है। अंततोगत्वा 1976–77 में शिक्षा को समवर्ती सूची में समाविष्ट कर लिया गया जिसके अनुसार केंद्र और राज्य सरकार दोनों इस संबंध में कानून बना सकते थे।

धार्मिक स्वतंत्रता बनाम धार्मिक शिक्षा

किसी धर्म को मानने या न मानने की व्यक्ति की स्वतंत्रता को बहाल रखने के उद्देश्य से अनुच्छेद 28 (1) में यह स्पष्ट किया गया है कि राजकीय अथवा राजकीय अनुदान से चलने वाले शिक्षण संस्थान में किसी भी तरह की धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी। हम जानते हैं कि संविधान में पंथ निरपेक्षता एक केंद्रीय मूल्य है। राजकीय शिक्षा संस्थानों में या उसके अनुदान से संचालित शिक्षा संस्थानों में किसी तरह की धार्मिक शिक्षा देने से उस मूल्य को चोट पहुँचती।

धार्मिक स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने के लिए संविधान निर्माताओं ने काफी सोच–समझकर धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक और शैक्षिक हितों की रक्षा के लिए विशेष प्रबंध किए। संविधान के भाग 3 (मूल अधिकार) में संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार के अंतर्गत अनुच्छेद 30 कहता है– ''धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।''

आज़ाद भारत में इस तरह के गैर सरकारी व अल्पसंख्यक प्रयासों को जारी रखने का संकल्प लिया गया। विविधताओं को सम्मानजनक रूप से समाहित करने के लिहाज से भी यह उचित था।

अनिवार्य शिक्षा

संविधान में सभी के लिए चौदह वर्ष तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध करने का भी निर्देश दिया गया था (अनुच्छेद 45), लेकिन यह राज्य के नीति निर्देशक तत्व (भाग 4) के अन्तर्गत होने की वजह से बाध्यकारी नहीं था। स्वतंत्रता के लगभग 50 वर्ष बाद तक शिक्षा बच्चों का अधिकार न हो सका। अंततः 1993 में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश (उन्नीकृष्णन व अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य व अन्य, 1993) के बाद संसद द्वारा शिक्षा को संवैधानिक अधिकार बनाया गया। यह देश के नागरिक अधिकारों के इतिहास में एक मील का पत्थर है। इस विषय पर हम इकाई 5 में विस्तार से पढ़ेंगे।

प्रश्न

- राजकीय अथवा राजकीय अनुदान प्राप्त शिक्षा संस्थानों में धार्मिक शिक्षा को स्वीकृति देना क्यों उचित नहीं है, तर्क दीजिए।
- काफी चर्चा के बाद शिक्षा को समवर्ती सूची में शामिल किया गया। आपके विचार से ऐसा करना क्यों ज़रूरी था और इससे क्या फायदे हुए ?

4.1.2 आज़ाद भारत में बुनियादी शिक्षा

पिछले वर्ष आपने 'भारतीय समाज और शिक्षा' में पढ़ा था कि आज़ादी से पहले ही गाँधीजी के विचारों पर आधारित बुनियादी शिक्षा का काम 1936–37 से देश में अनेक प्रान्तों में शुरू हो गया था। आज़ादी के बाद कुल 19 प्रान्तों में इसका विस्तार हुआ था। इनमें न केवल बुनियादी विद्यालय थे, बल्कि शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान भी संचालित किए जा रहे थे, जिन्हें 'बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालय' (बेसिक ट्रेनिंग स्कूल) कहा जाता था। इसके अलावा पाठ्यक्रम में सुधार और विद्यालय को आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाने की कोशिशें भी की गईं।

प्रदर्श : 4.1 स्वावलंबन हेतु बुनियादी शिक्षा



आज़ादी के पहले राजस्थान में जयपुर, जोधपुर और उदयपुर रियासतों में बुनियादी शिक्षा पर कुछ काम हुआ था। 1948 के दौरान जोधपुर में सभी प्राइमरी और माध्यमिक विद्यालयों में बुनियादी शिक्षा पाठ्यक्रम लागू कर दिया गया था लेकिन यह प्रयोग पूरी तरह सफल नहीं रहा क्योंकि शिक्षक पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित नहीं थे। फिर भी 1950 तक वहाँ 400 विद्यालयों में बुनियादी शिक्षा का पाठ्यक्रम पढ़ाया जा रहा था। इसके बाद राज्य सरकार की ओर से शिक्षक प्रशिक्षण पर खास ध्यान दिया गया। परिणामस्वरूप 1955–56 के दौरान राजस्थान में चलने वाले सभी शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों को बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालयों (बेसिक ट्रेनिंग स्कूल) में परिवर्तित कर दिया गया। 1956 में राज्य में 27 ऐसे संस्थान थे।

इस तरह की शिक्षा कोशिशों के बावजूद आज़ाद भारत में बुनियादी शिक्षा न तो असरदार रही और न ही ज़्यादा समय तक चल सकी। यहाँ हम कुछ विस्तार से विफलता के कारणों की पड़ताल करेंगे।

बुनियादी शिक्षा का आधार शारीरिक श्रम और स्वावलंबन था लेकिन इस विचार का अनुसरण नहीं किया जा सका। बुनियादी शिक्षा के अध्यापक खुद भी किसी उत्पादक कार्य के माध्यम से स्वावलंबी बनना नहीं सीख पाए और इसके प्रति गम्भीर नहीं रहे। अक्सर जिन उत्पादक कार्यों को चुना गया वे कई जगह अव्यावहारिक सिद्ध हुए। कताई–बुनाई पर ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर था। इसके लिए कपास, उपकरण व प्रशिक्षित व्यक्तियों की उपलब्धता सब जगह नहीं हो सकती थी। वहीं, अन्य शिल्पों की उपेक्षा हुई, जो स्थान विशेष के लिए उपयुक्त हो सकते थे।

सिद्धांततः बुनियादी शिक्षा में उत्पादक कार्य के जरिए स्वावलंबन एक केंद्रीय मूल्य था। गाँधीजी और उनके अनुयायी तो इस मूल्य में गहन आस्था रखते थे, किन्तु जब इस शिक्षा को एक सरकारी कार्यक्रम के रूप में व्यापक रूप से लागू करने का प्रश्न आया तो उत्पादक कार्य के जरिये स्वावलंबन के मूल्य को लगभग हर स्तर पर अव्यावहारिक कहा जाने लगा।

सामाजिक परिवर्तन की दिशा भी कुछ अलग ही थी। सेवाग्राम में नई शिक्षा कार्यक्रम की ज़िम्मेदारी वहन करने वाले ई.डब्ल्यू.आर्यनायम ने इसे समाज की विफलता मानते हुए कहा, "हर कारीगर और मज़दूर चाहता है कि उसका बच्चा उस शिक्षित वर्ग में जगह पा जाए, जिसे अपने हाथ से काम नहीं करना पड़ता।"

बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालयों से प्रशिक्षित शिक्षक जब अपने गाँव लौटते तो शिक्षा विभाग द्वारा उन शिक्षकों के अनुकूल बदलाव लागू करने के बदले उन्हें नियमित सरकारी विद्यालय में पढ़ाने भेज दिया जाता था। अक्सर उन्हें कनिष्ठ पदों पर तैनात किया गया, वरिष्ठ पदों पर पुरानी लीक की शिक्षा के हिमायती शिक्षक थे। जिससे बुनियादी शिक्षा में प्रशिक्षित शिक्षक किसी प्रकार का बदलाव करने में नाकाम रहे।

मातृभाषा पर ज़ोर और अँग्रेज़ी का अस्वीकार भी एक बड़ा मसला रहा। बुनियादी तालीम में अँग्रेज़ी के लिए कोई स्थान नहीं था जबकि अन्य विद्यालयों, महाविद्यालयों, सरकारी कामकाज आदि सब जगह अँग्रेज़ी कायम थी। समाज में भी अँग्रेज़ी को आधुनिक भारतीय भाषाओं से अधिक तवज्जो दी जा रही थी। मातृभाषा में शिक्षण और उत्पादक कार्य (कुटीर, ग्राम उद्योग) पर ज़ोर होने के कारण समाज में इसे ग्रामीण और गरीब तबकों के बच्चों के लिए उपयुक्त और आधुनिक नौकरियों के लिए अनुपयुक्त मान लिया गया। बुनियादी शिक्षा के प्रसार में यह मान्यता एक बड़ी बाधा बन गई। दूसरी पंचवर्षीय योजना से भारत ने औद्योगीकरण के ज़रिए विकास का मार्ग चुना। देश भर में आधुनिक विज्ञान और तकनीक के सहारे तरक्की के माहौल में बुनियादी तालीम अप्रासंगिक होती गई। इसी परिदृश्य में केंद्र सरकार ने स्वतंत्र भारत में शिक्षा का प्रारूप बनाने के लिए कई आयोगों का गठन किया।

प्रश्न

- बुनियादी स्कूलों में अँग्रेज़ी सिखाने की व्यवस्था क्यों नहीं की जा रही होगी ?
- क्या आपको लगता है कि वास्तव में आधुनिक भारत के लिए बुनियादी शिक्षा अप्रासंगिक है ?

4.1.3 विश्वविद्यालय आयोग (उच्च शिक्षा आयोग) 1948

आज़ादी के पूर्व अँग्रेज़ी शासनकाल में ही भारत में कुछ विश्वविद्यालयों की स्थापना हो गई थी। 1947 में भारत में केवल 19 विश्वविद्यालय थे। इनके अलावा, 297 कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, 199 इंटरमीडिए महाविद्यालय तथा व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा के 140 महाविद्यालय थे। उस वक्त उच्च शिक्षा में नामांकित विद्यार्थियों की संख्या लगभग 2.5 लाख थी। आबादी के लिहाज से उच्च शिक्षा का यह प्रसार कम था।

देश के आज़ाद होते ही सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए वैज्ञानिक व तकनीकी ज्ञान में कुशल व्यक्तियों

को तैयार करने की ज़रूरत पड़ी। इसके साथ ही राष्ट्रीय संस्कृति को भी फैलाना और मज़बूत करना था। इन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में 1948 में विश्वविद्यालय आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने अपना प्रतिवेदन 1949 में प्रस्तुत किया।

आयोग ने उच्च शिक्षा के सभी पहलुओं पर गौर किया, खास तौर पर उच्च शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने और माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन पर क्योंकि वहीं से निकलकर छात्र उच्च शिक्षा में प्रवेश लेते हैं। साथ ही आयोग ने सभी क्षेत्रों में नए नेतृत्व के विकास की बात कही, जो न केवल राजनीतिक और प्रशासनिक स्तर पर नेतृत्व प्रदान करे, बल्कि विज्ञान, तकनीक, व्यापार, कृषि और उद्योग के क्षेत्र में भी देश को आगे बढ़ाने का काम करें।

आयोग ने अपनी सिफारिशों में कहा कि इंटरमीडिएट परीक्षा को विद्यालयी शिक्षा में शामिल किया जाए और विद्यालयी शिक्षा बारह वर्ष तक हो। उसके बाद तीन वर्ष की स्नातक शिक्षा हो। यह प्रस्ताव दरअसल विद्यालयीन शिक्षा में एकरूपता और गुणवत्ता लाने का प्रयास था। आयोग ने इस बात पर ज़ोर दिया कि महाविद्यालय स्तर पर प्रथम वर्ष में ऐसी शिक्षा दी जाए, जो विद्यार्थियों को सामाजिक सरोकारों से परिचित कराए और नागरिक के रूप में तैयार करने में सहायक हो। इसके बाद विद्यार्थियों को किन्हीं विशिष्ट विषयों में दक्ष होने की शिक्षा भी प्रदान की जाए।

आयोग ने यह सुझाव भी दिया कि विश्वविद्यालयों में मौलिक अनुसंधान हो, ताकि उसका प्रभाव शिक्षण पर पड़े। उस समय देश में कुशल वैज्ञानिकों की आवश्यकता थी, इसलिए विज्ञान शिक्षकों को पर्याप्त वेतन और अनुसन्धान सुविधाएँ आदि देने की सिफारिशे कीं।

एक महत्त्वपूर्ण सुझाव देते हुए आयोग ने कहा कि केंद्र सरकार को विश्वविद्यालयों के विकास के लिए राशि आवंटित करनी चाहिए। इसके लिए एक केंद्रीय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग स्थापित किया जाए।

ग्राम विकास को राष्ट्रीय विकास का आधार मानते हुए आयोग ने ग्रामीण विश्वविद्यालयों की स्थापना का भी प्रस्ताव दिया था। साथ ही यह भी कहा था कि इन विश्वविद्यालयों के इर्दगिर्द ग्राम महाविद्यालय हो ताकि उद्योग, कृषि आदि का विकास करते हुए ग्राम पुनर्निर्माण किया जा सके।

उच्च शिक्षा आयोग की सिफारिशों में से तीन पर तुरंत अमल किया गया। ये हैं ; तीन वर्षीय उपाधि पाठ्यक्रम, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का गठन और माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन।

4.1.4 माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952—53)

डॉ. ए.एल. मुदलियार की अध्यक्षता में बने इस आयोग को 'मुदलियार आयोग' के नाम से भी जाना जाता है। आयोग से देश में माध्यमिक शिक्षा के सभी पहलुओं पर गौर करने और निम्नलिखित बिंदुओं पर उसके पुनर्गठन तथा सुधार के लिए पर सुझाव देने की अपेक्षा की गई थी —

शिक्षा के उद्देश्य, ढाँचा और विषयवस्तु।

प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा का आपसी रिश्ता।

विविध प्रकार के माध्यमिक विद्यालयों के बीच अंतर्संबंध।



डॉ. ए. एल. मुदालियर (1887 से 1974) माध्यमिक शिक्षा आयोग के अध्यक्ष

शिक्षा की प्रकृति और उद्देश्य

आयोग ने पाया कि वर्तमान माध्यमिक शिक्षा बहुत अधिक यांत्रिक और किताबी बन गई है। यह शिक्षा बच्चों के विविध रुझानों का खयाल नहीं रखती। इससे जीवन में अनुशासन, सहयोग और नेतृत्व के गुण विकसित नहीं होते। यह शिक्षा परीक्षा

अभिमुखी है। शिक्षण पद्धति और शिक्षक प्रशिक्षण में सुधार की आवश्यकता है। यह पाठ्यक्रमों में विविधता उपलब्ध नहीं कराती। माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यों पर कटाक्ष करते हुए आयोग ने कहा कि यह केवल विश्वविद्यालयों में प्रवेश कराती है और वास्तविक जीवन यानी कृषि, कारीगरी, उद्योग, वाणिज्य के लिए इसमें कोई स्थान नहीं है।

स्वतंत्र भारत में स्कूली शिक्षा के उद्देश्यों को परिभाषित करने में मुदलियार आयोग का प्रमुख योगदान था। आयोग ने उद्देश्यों के चार महत्त्वपूर्ण क्षेत्र निरूपित किए:

लोकतंत्र के लिए विवकेशील मानसिकता वाले नागरिकों को तैयार करना,

उत्पादक काम के प्रति निष्ठावान और कार्यकुशल नागरिकों को तैयार करना,

कलाबोध युक्त और सृजनशील नागरिकों को तैयार करना और

सार्वजनिक जीवन के हर क्षेत्र में नेतृत्व की क्षमता व दृष्टि वाले नागरिकों को तैयार करना।

आयोग नागरिकों में सहयोग के आधार पर काम करने की ज़रूरत को रेखांकित करते हुए कहता है —

> *''यह सहयोग तभी बन सकता है जब व्यक्ति केवल अपने खुद के लिए ही नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक समाज में सबके लिए अवसरों की समानता और वंचितों के प्रति न्याय के लिए संघर्ष से प्रेरित होगा। इसके लिए स्कूल के विद्यार्थियों में सामाजिक न्याय के प्रति जुनून जागृत करना होगा और साथ में सामाजिक कुरीतियों व शोषण के प्रति संवेदनशील बनाना होगा। उन्हें दुनिया के बारे में सुगठित ज्ञान तो होना चाहिए मगर साथ में परंपरा, व्यवहार और ढाँचों को जाँचने की कसौटियों से भी परिचय होना चाहिए। इस सामाजिक संवेदनशीलता के बिना अन्य चरित्रिक गुण जैसे— कार्यकुशलता, सहयोग, ज्ञान आदि निरर्थक बन जाएँगे या उनका गलत उपयोग होगा।''*

आयोग ने आगे कहा कि लोकतांत्रिक शिक्षा के लिए यह भी ज़रूरी है कि विद्यार्थियों में दूसरों के प्रति सहिष्णुता विकसित हो, ताकि वे न केवल विभिन्न मतों को सहन करें; लेकिन यह भी स्वीकार करें कि उनसे हमारा जीवन समृद्ध होता है। अगर इतनी विविधताओं वाले हमारे देश में लोकतंत्र को जीवित रहना है तो युवाओं में दिल और दिमाग का खुलापन विकसित किया जाए, ताकि वे आचार—विचार की भिन्नताओं में समरसतापूर्ण जीवनशैली विकसित कर पाएँ। मुदालियार आयोग ने व्यक्तित्व निर्माण में देशभक्ति के महत्त्व को उजागर करते हुए कहा कि ऐसे देशप्रेम की आवश्यकता है जो सच में देश की विरासत पर गर्व करे और साथ में उसकी कमज़ोरियों को पहचानकर उन्हें दूर करने के लिए तत्पर हो।

आयोग ने कहा कि हमारे विद्यार्थियों में उत्पादक व तकनीकी कार्यकुशलता विकसित करना होगा। यह केवल ऐसे काम के प्रति सम्मान जागृत करने के लिए नहीं बल्कि किसी काम जिसे हाथ में लिया जाता है उसे पूरी तत्परता, कलात्मकता और कुशलता के साथ अंजाम दे सकें। शिक्षकों का दायित्व है कि वे 'कामचलाऊ प्रवृत्ति' और शिथिल काम को मान्यता न दें और गुणवत्ता व कुशल संपादन की माँग करें। इसके लिए ज़रूरी है कि पाठ्यचर्या में केवल अकादमिक विषय न हों और पर्याप्त मात्रा में कारीगरी और उत्पादक काम भी हो और उच्चतर स्तर पर ऐसे कोर्स उपलब्ध हों जो व्यावसायिक शिक्षा की ओर ले जाएँ।

समाज के लिए केवल सही मानसिकता और कार्यकुशलता ही आवश्यक नहीं है बल्कि सृजनशीलता और कलात्मकता की भी ज़रूरत है। स्कूली शिक्षा में विभिन्न कलाओं तथा शिल्पों के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। इनकी शिक्षा में सृजनात्मक स्वतंत्रता के लिए पूरे मौके हों।

स्कूली शिक्षा का उद्देश्य मात्र यह नहीं है कि विद्यार्थियों को कॉलेज के लिए तैयार करें। हमारे देश के

अधिकांश नवयुवक स्कूल के बाद सामान्य व्यावसायिक जीवन के लिए अग्रसर हो जाते हैं और लोकतांत्रिक समाज में अपनी भूमिका निभाने के लिए निकलते हैं। ऐसे में हमारा ध्येय यह होना चाहिए कि हर विद्यार्थी को हम अपने–अपने कार्यक्षेत्र में नेतृत्व देने के लिए तैयार करें। इसके लिए स्पष्ट चिंतन, सामाजिक सरोकारों की समझ और कार्यकुशलता विकसित करनी होगी।

प्रश्न

- कई लोगों का कहना है कि मुदालियार आयोग समाज को वर्तमान रूप में बनाए रखने की बजाए उसमें मूलभूत परिवर्तन लाने के पक्ष में था। क्या आप इस मत से सहमत हैं – तर्क के साथ अपने विचार रखें।
- मुदालियार आयोग ने कार्यकुशलता के संदर्भ में किस तरह की प्रवृत्ति को दूर करने की बात कही? क्या आपको लगता है कि आपकी शिक्षा में इस बात को ध्यान में रखा गया था – उदाहरण सहित चर्चा करें।
- आजकल ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा की शिक्षा में किस बात पर ज़ोर है – उच्च शिक्षा की तैयारी पर या सामाजिक क्षेत्र में नेतृत्व पर चर्चा करें।

माध्यमिक शिक्षा का नया ढाँचा :

आयोग ने स्पष्ट तौर पर इस बात का पक्ष लिया कि माध्यमिक शिक्षा केंद्र का भी विषय हो। साथ ही उसने संविधान का हवाला देते हुए चौदह वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाने की बात कही।

आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के तत्कालीन ढाँचे में बदलाव करने के सुझाव दिए। उन्होंने इंटरमीडिएट स्तर को खत्म करने की सिफारिश की। माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार चार या पाँच वर्ष की प्राथमिक (या जूनियर बेसिक) शिक्षा के बाद तीन वर्ष का मिडिल (या सीनियर बेसिक या जूनियर सेकेंडरी) स्तर हो। इसके बाद एक उच्च माध्यमिक (सीनियर सेकेंडरी) स्तर हो जो चार वर्ष का हो। इसके साथ ही विश्वविद्यालय के स्नातक स्तर को तीन वर्ष का करने का सुझाव दिया अर्थात कुल 12 वर्ष की स्कूली शिक्षा और तीन वर्ष की स्नातक शिक्षा (5+3+4+3)।

आयोग का सुझाव था कि सभी स्तरों की पाठ्यचर्या के बीच जुड़ाव हो। आयोग ने माना कि प्राथमिक और माध्यमिक स्तर की शिक्षा एक संपूर्णता लिए हुए हो। इसे संविधान से जोड़ते हुए चौदह वर्ष तक मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा देना सरकार का कर्तव्य माना गया है। आयोग का मानना था कि माध्यमिक शिक्षा की अवधि सभी प्रदेशों में एक जैसी होनी चाहिए।

माध्यमिक विद्यालयों में कृषि शिक्षा

देश में अधिकांश लोगों को कृषि के जरिये रोज़गर मिलता है। आयोग ने पाया कि देश में कृषि की शिक्षा देने वाले विद्यालय कम हैं। उनमें भी अधिकांशतया व्यावहारिक और प्रायोगिक शिक्षा को कम महत्त्व दिया जाता है और सैद्धांतिक बातों को ज़्यादा। इसलिए आयोग ने सुझाव दिया कि राज्यों को कृषि शिक्षा का प्रसार करना चाहिए जिससे ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थी उसे एक व्यावसायिक शिक्षा के रूप में चुन सकें। हिमालय जैसे पड़ाडी इलाकों का उदाहरण देते हुए आयोग ने कृषि के साथ बागवानी और पशुपालन को भी जोड़ने का सुझाव दिया। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार के लिए कृषि, बागवानी और पशुपालन के साथ–साथ लघु और कुटीर उद्योगों की शिक्षा का प्रबंध करने का सुझाव भी आयोग ने दिया।

तकनीकी शिक्षा

जापान, स्विट्ज़रलैंड और हॉलेण्ड का उदाहरण देते हुए आयोग ने कहा कि राष्ट्र की समृद्धि केवल खनिजों और प्राकृतिक संसाधनों के जरिए नहीं, बल्कि मानवों की दक्षता और कुशलता द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के उचित

दोहन तथा तकनीकी विकास से आती है। इसलिए शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति की बौद्धिक सामर्थ्य व शारीरिक कौशल को जागृत करना है, ताकि वह अपने समाज की भलाई में अपना योगदान दे सकें। इसलिए आयोग ने तकनीकी शिक्षा पर बहुत ज़ोर दिया।

आज़ादी के समय सामाजिक क्षेत्र, जिसमें शिक्षा और स्वास्थ्य भी शामिल है, में भारत की स्थिति बहुत खराब थी। 1950 के दशक में भारत की श्रम शक्ति का लगभग लगभग 72 प्रतिशत कृषि में लगा था, उद्योगों में 11 प्रतिशत और सेवा क्षेत्र में 17 प्रतिशत था। देश में गरीबों की संख्या बहुत अधिक थी और इसलिए लोगों की आय बढ़ाना एक बड़ी चुनौती थी। इसके लिए कृषि और उद्योगों में उत्पादकता बढ़ाना ज़रूरी था, ताकि आर्थिक विकास हो और लोगों का जीवनस्तर सुधर सके। इस सब के लिए शिक्षा के व्यापक प्रसार के साथ–साथ उसमें आर्थिक विकास के लिए आवश्यक दक्षता, कौशल बढ़ाते हुए उसकी गुणवत्ता सुनिश्चित करना देश की प्राथमिकता थी। माध्यमिक शिक्षा आयोग की चिन्ता और सिफारिशों को भी हम इस परिस्थिति के संदर्भ में देख सकते हैं।

प्रश्न

1. माध्यमिक शिक्षा में केंद्र सरकार की भूमिका बढ़ने से राज्यों के अधिकार क्षेत्र किस–किस प्रकार सीमित हो सकते हैं ?
2. माध्यमिक शिक्षा को पूरी तरह राज्यों के अधिकार क्षेत्र में देने के क्या–क्या फायदे और क्या–क्या नुकसान हो सकते हैं ?

4.2 कोठारी आयोग : राष्ट्रीय विकास के लिए आयोग की सिफारिशें तथा उनका क्रियान्वयन

भारत में योजनाबद्ध विकास का दौर 1950 से ही शुरू हुआ और पंचवर्षीय योजनाएँ लागू होने लगीं। सामाजिक क्षेत्र में, खास तौर पर शिक्षा के क्षेत्र में, भारत की प्रगति बहुत सीमित थी। आज़ादी के बाद अनेक वर्षों तक शिक्षा के क्षेत्र में सकल घरेलू उत्पादन का लगभग 3.5 प्रतिशत खर्च किया जाता था। जिसका लगभग आधा हिस्सा उच्च शिक्षा में लगता था।

पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं (1951–65) में आर्थिक विकास की दर बढ़ाने पर ज़ोर दिया गया। इसके लिए आयात के बदले घरेलू औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने की नीति अपनाई गई। दूसरी पंचवर्षीय योजना से यह सुनिश्चित किया गया कि धातु और मशीन निर्माण (भारी उद्योगों) को नियमित रूप से निवेश का एक हिस्सा मिलते रहे, ताकि भारत में औद्योगिक विकास की नींव मजबूत हो। इस दौरान ज़मींदारी प्रथा समाप्त कर सीमित मात्रा में ज़मीन का पुनर्वितरण किया गया। सिंचाई और बिजली उत्पादन के लिए बड़े बाँधों का निर्माण हुआ। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम संचालित किए गए। इन कार्यक्रमों में आधुनिक खेती करने के साथ–साथ सार्वजनिक शिक्षा और स्वास्थ जैसी सुविधाओं को बढ़ाने की बात की गई थी। खेती में वित्त की ज़रूरत को पूरा करने के लिए सहकारी कर्ज संस्थाओं का निर्माण किया गया।

ऐसे में शिक्षा के विस्तार की ज़रूरत तो थी ही, उसके ढाँचे और स्वरूप को लेकर भी नए चिन्तन की ज़रूरत महसूस की जा रही थी। ऐसे समय में भारत सरकार ने डॉ. डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में 1964 में राष्ट्रीय शिक्षा आयोग का गठन किया।

4.2.1 राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964–66)

गठन और उद्देश्य

कोठारी आयोग के समक्ष शिक्षा के राष्ट्रीय प्रारूप तथा प्राथमिक से लेकर स्नातकोत्तर स्तर तक की शिक्षा के विकास की नीतियों पर सुझाव देने का लक्ष्य था।

रिपोर्ट के आरम्भ में शिक्षा आयोग के अध्यक्ष डॉ. डी.एस. कोठारी भारत के तत्कालीन शिक्षा मंत्री एम.सी. चगला

को संबोधित आमुख में लिखते हैं – "विज्ञान पर निर्भर वर्तमान दुनिया में शिक्षा और अनुसन्धान किसी देश की समग्र विकास प्रक्रिया, उसकी समृद्धि, प्रगति और सुरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।" (स्रोत – एज्यूकेशन एंड नेशनल डेवलपमेंट, रिपोर्ट ऑफ द एज्यूकेशन कमीशन 1964–66, नेशनल काउंसिल ऑफ एज्यूकेशनल, रिसर्च एंड ट्रेनिंग, 1970. संक्षेप में कोठरी आयोग रिपोर्ट) शिक्षा नीति की ज़रूरत को बताते हुए उसमें डॉ. कोठारी लिखते हैं कि हमें ऐसी लचीली शिक्षा नीति की ज़रूरत है, जो भावी विश्व के उन परिवर्तनों के साथ भी सामंजस्य बैठा सके जिनका अभी अनुमान नहीं लगया जा सकता। आयोग ने 29 जून 1966 को अपनी रिपोर्ट केन्द्र सरकार को सौंपी।



डी.एस. कोठारी
(1905 से 1993)
राष्ट्रीय शिक्षा आयोग के अध्यक्ष

कोठारी कमीशन रिपोर्ट की मुख्य बातें :–

कोठारी आयोग की रिपोर्ट बहुत विस्तृत है। उसमें शिक्षा के विविध पहलूओं, खास तौर पर राष्ट्रीय विकास तथा राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में उसके योगदान को लेकर काफी कुछ कहा गया है। रिपोर्ट में शिक्षा के निम्नांकित आयामों की चर्चा की गई है।

राष्ट्रीय विकास में समस्याएँ

आयोग ने राष्ट्रीय विकास में तत्कालीन समस्याओं का जिक्र करते हुए उन्हें शिक्षा से जोड़ा। इसमें सबसे पहले उन्होंने खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता की ज़रूरत को रेखांकित किया। दूसरी समस्या गरीबी और बेरोज़ागरी की थी। इसके लिए आर्थिक प्रगति की गति तेज़ करने पर ज़ोर दिया गया।

सामाजिक और राष्ट्रीय एकता को लेकर भी आयोग ने चिंता ज़ाहिर की। भारतीय समाज में मौजूद वर्ग ध्रुवीकरण को रोकने तथा एकता स्थापित करने के साधन के रूप में शिक्षा के महत्त्व को पहचाना गया। देश का ताना–बाना विविध धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र आदि की विविधता से बुना हुआ है। कोठारी आयोग ने माना कि शिक्षा का अर्थ केवल साक्षरता और किन्हीं दक्षताओं का विकास करना नहीं, वरन् जनता की जीवन और ज़रूरतों से जुड़कर सामाजिक व राष्ट्रीय विकास की ओर अग्रसर होना है।

जीवन और ज़रूरतों से जुड़ाव

आयोग ने यह चिह्नित किया कि तत्कालीन शिक्षा लोगों के जीवन, ज़रूरतों और आकांक्षाओं से जुड़ी हुई नहीं थी। आयोग ने ज़ोर देकर कहा –

> *"हमारे खयाल से शिक्षा में बदलाव से अधिक ज़रूरी और कुछ नहीं है, ताकि इसे लोगों की जिन्दगी, ज़रूरतों और आकांक्षाओं से जोड़ा जा सके। इस तरह शिक्षा सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक बदलाव का एक शक्तिशाली साधन बनेगी, जो हमारे राष्ट्रीय उद्देश्यों को हासिल करने में सहायक होगी। यह तभी हो सकेगा जब शिक्षा को उत्पादकता के साथ जोड़ा जाए।" (कोठरी आयोग रिपोर्ट, पृष्ठ 8)*

शिक्षा और उत्पादकता

कोठारी आयोग ने शिक्षा को उत्पादकता और औद्योगिक विकास से जोड़ने की बात कही। इसके लिए आयोग ने चार सुझाव दिए –

1. विज्ञान और वैज्ञानिक मानसिकता को शिक्षा का प्रमुख अंग बनाना लेकिन यह केवल विज्ञान का ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि जिज्ञासा जगाना, समुचित रुचियों, प्रवृत्तियों और मूल्यों का विकास तथा स्वतंत्र अध्ययन के कौशलों एवं स्वंय विचार और निर्णय करने की क्षमता का विकास करना है।

2. कार्यानुभव को सामान्य शिक्षा का अभिन्न अंग बनना – इसका अर्थ है विद्यालयी शिक्षा के दौरान किसी उत्पादक कार्य से जुड़ना। यह विद्यालय में, घर में, किसी कार्यशाला, खेत कारखाने आदि में हो सकता है। हमारी शिक्षा व्यवस्था में साक्षरता आदि पर बहुत ज़ोर दिया जाता है, किन्तु व्यावहारिक विज्ञान व कार्यानुभव पर कम ध्यान दिया जाता है। समाज सेवा का तो शिक्षा में कोई स्थान ही नहीं है, जबकि यह समाजिक व राष्ट्रीय एकता के लिए ज़रूरी है।
3. सेकेंडरी स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा हो, ताकि कृषि, उद्योग और व्यापार की ज़रूरतों को पूरा किया जा सके।
4. विश्वविद्यालय स्तर पर वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा तथा अनुसंधान में सुधार। खास तौर पर कृषि व व्यावहारिक विज्ञान के क्षेत्र में।

कोठारी आयोग ने कार्यानुभव को शिक्षा का अंग बनाने की बात कही। इस बात पर गौर करें कि बुनियादी शिक्षा में समूची शिक्षा ही उत्पादक कार्यों के माध्यम से दी जाने की बात थी। गाँधीजी के विचार में 'ज्ञान की दुनिया' और 'काम की दुनिया' अलग–अलग नहीं थी। वे उत्पादक कार्यों के माध्यम से ही आधुनिक विषयों को सीखने की बात करते थे लेकिन यहाँ उस विचार को न अपना कर 'कार्यानुभव' को एक पाठ्येत्तर गतिविधि के रूप में विद्यालयी शिक्षा का अंग बनाने की बात कही गई। इस तरह परोक्ष रूप से यह मान लिया गया कि पुस्तक आधारित अकादमिक शिक्षा ही प्रमुख है।

शिक्षा – बदलाव का उपकरण

आयोग ने शिक्षा को बदलाव के साधन के रूप में देखा। रिपोर्ट में कहा गया कि बदलाव के लिए दो तरफा प्रयास करने होंगे। एक ओर कृषि का आधुनिकीरण और तेज़ औद्योगीकरण के जरिए भौतिक संसाधनों का विकास। इसके लिए विज्ञान, प्रौद्योगिकी, पूँजी निर्माण और निवेश को अपनाना होगा तथा दूसरी ओर उचित ढंग से संचालित शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से मानव संसाधनों का विकास करना होगा। इसमें आयोग ने कहा कि राष्ट्रीय विकास के लिए मानव संसाधनों का विकास अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसके पक्ष में उदाहरण देते हुए कहा गया कि जब तक किसान विज्ञान शिक्षण के जरिए परम्परागत तरीकों को छोड़ नहीं देते, तब तक देश खाद्यान्न में आत्मनिर्भर नहीं हो सकता। आर्थिक विकास के लिए भी समूची आबादी का शिक्षित होना बहुत ज़रूरी है, ताकि वह नई जीवन शैली, नए विचार और नए काम अपना सके। रिपोर्ट में आगे कहा गया कि एक समान राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था ही वह एकमात्र तंत्र है जो सभी लोगों तक पहुँच सकता है।

समान विद्यालय (कॉमन स्कूल) प्रणाली

समतापूर्ण और एकात्म समाज के निर्माण के लिए शिक्षा व्यवस्था की यह ज़िम्मेदारी है कि वह विभिन्न सामाजिक वर्गों और समूहों को साथ लाए लेकिन ऐसा करने के बदले शिक्षा व्यवस्था सामाजिक विभाजन को बढ़ावा देती हुई दिख रही है और वर्गभेद को बढ़ा रही है। सरकारी विद्यालय बच्चों को मुफ्त शिक्षा देते हैं, लेकिन आर्थिक रूप से समृद्ध लोग उसे निम्न गुणवत्ता के मानते हैं। इस मान्यता के चलते वे अपने बच्चों को निजी विद्यालयों में भेजना पसंद करते हैं। इस तरह हमारी शिक्षा व्यवस्था ही विभाजित है और यह विभाजन बढ़ते जा रहा है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एक छोटे वर्ग के बच्चों को ही मिल पा रही है। यह स्थिति समतापूर्ण समाज के आदर्श के प्रतिकूल है।

यदि यह स्थित बदलनी है और शिक्षा व्यवस्था को राष्ट्रीय विकास और सामाजिक व राष्ट्रीय एकता स्थापित करने का सशक्त माध्यम बनाना है तो सार्वजनिक शिक्षा को समान विद्यालय प्रणाली (कॉमन स्कूल सिस्टम) की ओर बढ़ना ही होगा। इसके स्वरूप और विशेषताओं का निरूपण करते हुए आयोग ने कहा –

> *"यह समाज के सभी बच्चों के लिए खुला होगा, भले ही वे किसी भी जाति, धर्म, वर्ग, सम्प्रदाय, आर्थिक या सामाजिक प्रस्थिति के हों। इसमें अच्छी शिक्षा तक पहुँच सम्पत्ति*

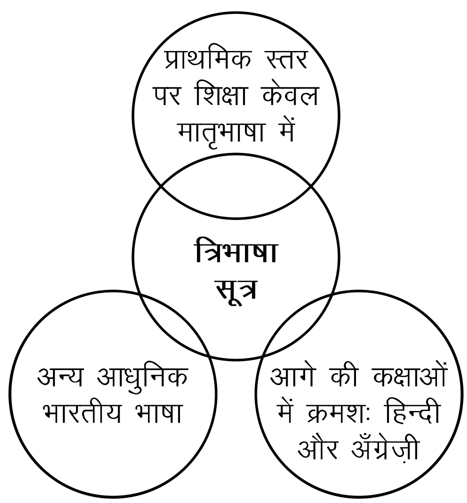
या वर्ग के आधार पर नहीं, बल्कि प्रतिभा के आधार पर होगी। जिसमें सभी विद्यालयों में समुचित स्तर की शिक्षा सुनिश्चित की जाएगी। इनमें कोई शिक्षण शुल्क नहीं लिया जाएगा। इनमें एक सामान्य अभिभावक की ज़रूरतों को पूरा किया जाएगा, ताकि वह अपने बच्चों को इस व्यवस्था के बाहर महंगे स्कूलों में भेजने पर विचार न करे।"
(कोठरी आयोग रिपोर्ट, पृष्ठ 15।)

अपने प्रस्ताव को बल देने के लिए आयोग ने बताया कि सोवियत संघ, संयुक्त राज्य अमरीका, फ्रांस व स्कैंडेनेवियाई देशों में लगभग इसी तरह की शिक्षा व्यवस्था है। आयोग का सुझाव था कि हर मोहल्ले (neighbourhood) में एक राजकीय विद्यालय स्थापित हो जहाँ अनिवार्य रूप से समाज के हर तबके के बच्चे बिना किसी भेदभाव के जाए और स्तरीय शिक्षा पा सकें।

प्रश्न
आपने अमेरिका के कॉमन स्कूल के बारे में पढ़ा था। उसमें और कोठारी आयोग के कॉमन स्कूल के बीच क्या समानता व अंतर दिखते हैं ?

भाषा

प्रदर्श 4.2 : त्रिभाषा सूत्र



आयोग के सामने स्वतंत्र भारत की एक बड़ी चुनौती थी – विद्यालयों में किन भाषाओं के माध्यम द्वारा पढ़ाया जाए और किन भाषाओं को पढ़ाया जाए। आयोग ने समाधान स्वरूप त्रिभाषा सूत्र सुझाया। जिसमें कहा गया कि प्राथमिक स्तर पर शिक्षा केवल मातृभाषा में दी जाए। आगे की कक्षाओं में क्रमशः हिंदी और अँग्रेज़ी भी विद्यार्थियों को सीखनी होगी, ताकि वे अन्य भारतीयों से संवाद कर सकें। साथ ही जो प्रामाणिक ग्रथ अँग्रेज़ी में हैं, उनका अध्ययन कर सकें। हिंदी भाषी प्रदेशों में प्राथमिक स्तर पर हिंदी और दूसरी भाषा के तहत कोई अन्य आधुनिक भारतीय भाषा, जैसे–तेलगु, मणिपुरी, असमिया आदि और तीसरी भाषा के तहत अँग्रेज़ी सीखें।

आयोग का सुझाव था कि स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक शिक्षा का माध्यम आधुनिक क्षेत्रीय भाषा ही हों। इसे संभव बनाने के लिए हर तरह के प्रयास किए जाए।

शिक्षा का ढाँचा

आयोग ने शिक्षा के तत्कालीन ढाँचे पर काफी विचार–विमर्श किया और सुझाया कि प्राथमिक शिक्षा पाँच साल की हो,

उच्च प्राथमिक शिक्षा तीन साल की हो, और निम्न माध्यमिक शिक्षा दो साल की हो। इस तरह दस वर्षों की अनिवार्य शिक्षा पूरी होने पर विद्यार्थी या तो व्यावसायिक शिक्षा की ओर बढ़ेंगे या अकादमिक शिक्षा की ओर बढ़ेंगे। विद्यालयी स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा दो साल के लिए हो।

इसके अलावा आयोग ने प्रस्ताव दिया कि,

1. एक से तीन वर्ष की पूर्व प्राथमिक शिक्षा दी जाए।
2. छह वर्ष पूरे होने पर ही पहली कक्षा में नामांकन किया जाए।
3. पहली सार्वजनिक परीक्षा दस वर्ष की विद्यालयीय शिक्षा पूरी करने के बाद ही हो।
4. विषय विभाजन कक्षा नौ की बजाय कक्षा दस के बाद हो।
5. उच्च शिक्षा में तीन या उससे अधिक वर्ष का स्नातक पाठ्यक्रम हो और उसके बाद विविध अवधि के पाठ्यक्रम हों।
6. माध्यमिक विद्यालय दो प्रकार के होंगे उच्च विद्यालय (हाई स्कूल) जहाँ कक्षा दस तक शिक्षा दी जाएगी और उच्चतर माध्यमिक विद्यालय जहाँ कक्षा 11वीं और 12वीं की शिक्षा दी जाएगी।

शिक्षक

शिक्षकों की स्थिति के बारे में भी आयोग ने विचार किया। विविध प्रदेशों में शिक्षकों को मिलने वाले वेतन, भत्ते और अन्य सुविधाओं का अध्ययन किया और उसके बाद कुछ सुझाव दिए। इनमें सर्वप्रथम शिक्षक की सामाजिक, आर्थिक और व्यावसायिक हैसियत सुधारने की सिफारिश थी। इसके लिए आयोग ने भारत सरकार से यह अपेक्षा की कि वह पूरे देश के प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के लिए न्यूनतम वेतनमान क्या होगा, इसकी घोषणा करे। साथ ही प्रत्येक पाँच वर्ष में वेतनमान की समीक्षा करने का सुझाव भी दिया। शिक्षकों के कल्याण के लिए वित्तीय प्रावधान करने तथा सेवानिवृत्ति की अवधि को 60 से बढ़ा कर 65 वर्ष करने का सुझाव भी आयोग ने दिया। इसके अलावा आयोग की सिफारिश थी –

1. शिक्षकों का वेतनमान उनकी योग्यता के अनुरूप होना चाहिए और यह निजी व सरकारी संस्थानों में एक समान होना चाहिए। सेवा शर्तें भी सब जगह समान होना चाहिए।
2. महिला शिक्षिकाओं की संख्या बढ़ाई जाए। ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षिकाओं के लिए आवास सुविधा तथा अतिरिक्त भत्ते प्रदान किए जाएँ।
3. जनजातीय क्षेत्रों में काम कर रहे शिक्षकों को भी अतिरिक्त भत्ते और आवास सुविधा दी जानी चाहिए। ऐसे शिक्षकों को विशेष प्रशिक्षण भी दिया जाए।
4. शिक्षक संघों को केंद्र और राज्य सरकारें मान्यता प्रदान करें।
5. शिक्षकों को दिए जाने वाले राष्ट्रीय पुरस्कारों की संख्या बढ़ाई जाए।

शिक्षक शिक्षण

आयोग ने पाया कि शिक्षक शिक्षा अपने संकुचित दायरों में कार्य कर रही है। यहाँ उच्च शिक्षा, विद्यालयी शिक्षा तथा पूर्व प्राथमिक शिक्षा में आपसी समन्वय का अभाव है। इस कारण वह अकादमिक दुनिया में आ रहे बदलावों तथा उनकी बदलती ज़रूरतों से अनभिज्ञ रही। आयोग का मानना था कि इस अलगाव को दूर किए बिना शिक्षक शिक्षा में सार्थक बदलाव संभव नहीं है। उसका आग्रह था कि शिक्षक शिक्षा संस्थान आस–पास के स्कूलों के मार्गदर्शक के रूप में काम करें। गुणवत्ता बढाने के साथ–साथ उसका प्रसार करने की भी ज़रूरत महसूस की गई। साथ ही उस प्रशिक्षण को विद्यालयों और समुदाय के साथ जोड़ने के महत्त्व को भी शिक्षा आयोग ने रेखांकित किया। उसकी मुख्य

सिफारिशें हैं –

1. शिक्षा को शिक्षाशास्त्र (पैडागॉजी) से अलग अकादमिक विषय माना जाए। विश्वविद्यालयों में इस विषय के स्नातक व स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम शुरू हों।
2. चुनिंदा विश्वविद्यालयों में शिक्षा विभाग स्थापित हों, जिनमें शिक्षक शिक्षण के कार्यक्रम विकसित हों और साथ ही शिक्षा के विषय में अध्ययन व अनुसंधान हों।
3. शिक्षक शिक्षण संस्थानों में प्रसार कार्य को महत्त्वपूर्ण अंग माना जाए और उनमें प्रसार कार्य विभाग स्थापित किए जाएँ।
4. विश्वविद्यालयों अथवा स्नातकोत्तर महाविद्यालयों के सहयोग से विद्यालयों में विषय शिक्षण को मज़बूत बनाया जाए।
5. शिक्षण पद्धति में सुधार हो तथा स्वशिक्षण, संवाद आदि को बढ़ावा दिया जाए।
6. प्राथमिक शिक्षकों के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण दो वर्ष की अवधि को हो। जो माध्यमिक स्तर की विद्यालयी शिक्षा पूरी करने के बाद हो। जिन्होंने स्नातक शिक्षा प्राप्त की हो उनके लिए इस प्रशिक्षण की अवधि एक वर्ष की हो। प्रत्येक वर्ष कम से कम 230 कार्य दिवस हों।
7. शिक्षण प्रशिक्षण संस्थानों में नियुक्त प्रशिक्षकों के पास किसी एक विषय में स्नातकोत्तर उपाधि एवं बी.एड. उपाधि हो।
8. प्रशिक्षणार्थियों के लिए छात्रावास सुविधा हो।
9. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग शिक्षक प्रशिक्षण के मापदंड निर्धारित करने का दायित्व निभाए।

इसके अलावा आयोग ने शिक्षा को सामुदायिक विकास, समाज सेवा तथा राष्ट्र सेवा के कामों से जोड़ने की बात भी कही। साथ ही आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास के प्रयास करने का भी सुझाव दिया। विद्यार्थी शिक्षकों से अपेक्षा है कि वे इस पूरी रिपोर्ट का अध्ययन करेंगे।

प्रश्न

1. समान विद्यालय प्रणाली के क्या–क्या लाभ हो सकते हैं ?
2. महिला शिक्षकों के लिए आयोग ने विशेष सुविधाओं की सिफारिश क्यों की होगी ? बालिका शिक्षा पर इसका क्या असर हो सकता है ?
3. जनजातीय क्षेत्रों में काम करने वाले शिक्षकों के लिए आयोग ने विशेष सुविधाओं की सिफारिश क्यों की होगी? जनजातीय बच्चों की शिक्षा पर इसका क्या असर हो सकता है ?
4. क्या आपको लगता है कि महिला शिक्षकों और जनजातीय क्षेत्रों में कार्य करने वाले शिक्षकों को अब भी विशेष सुविधाएँ दी जानी चाहिए ? क्यों ?

4.2.2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968

आपने देखा कि कोठारी आयोग की सिफारिशें काफी विस्तृत हैं और शिक्षा के तमाम पहलुओं से जुड़ी हुई हैं। सरकार ने उस सिफारिशों को यथावत् लागू तो नहीं किया किन्तु उन पर विचार करने के लिए एक संसदीय समिति का गठन किया। समिति ने शिक्षा आयोग के साथ–साथ शिक्षा से संबद्ध कुछ अन्य मामलों पर विचार किया और अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। उसके आधार पर 1968 में भारत सरकार ने शिक्षा नीति की घोषणा की।

निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा

भारत के संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतों के तहत अनुच्छेद 45 में की गई अपेक्षा के अनुरूप चौदह वर्ष तक के सभी बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए कठिन प्रयास किए जाएँगे, लेकिन अभी भी निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा के लिए प्रयास की बात की गयी पर उसे कानूनी दर्जा नहीं दिया गया।

शिक्षकों की स्थिति, पारिश्रमिक और शिक्षण, उनका पारिश्रमिक व सेवा शर्तें उनकी योग्यता व जिम्मेदारियों के अनुकूल होनी चाहिए। शोध व अध्ययन करने आदि के लिए शिक्षकों की स्वतंत्रता की रक्षा की जाएगी। शिक्षक शिक्षण, खास तौर पर सेवाकालीन प्रशिक्षण पर ज़ोर दिया जाएगा।

प्रश्न

उपर्युक्त प्रावधान की तुलना आयोग की सिफरिशों से करें और बताएँ कि किन बातों को माना नहीं गया।

भाषाओं का विकास

शैक्षिक और सांस्कृतिक विकास के लिए भारतीय भाषाओं और साहित्य का विकास अनिवार्य शर्त है। वर्तमान में प्राथमिक स्तर की शिक्षा क्षेत्रीय भाषाओं में दी जा रही है। माध्यमिक स्तर पर राज्य सरकारें त्रिभाषा सूत्र अपनाएँ, जिसके तहत हिंदी भाषी प्रदेशों में हिन्दी और अँग्रेज़ी के अलावा एक आधुनिक भारतीय भाषा, बेहतर हो कि कोई दक्षिण भारतीय भाषा, का अध्ययन हो और दक्षिण भारतीय प्रदेशों में प्रादेशिक भाषा तथा अँग्रेज़ी के अलावा हिंदी का अध्ययन हो। जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 351 में कहा गया है, सम्पर्क भाषा के रूप में हिंदी का विकास हो।

प्रश्न

क्या इस नीति के अनुरूप ही आपकी शिक्षा हुई – क्या आपकी शिक्षा आपकी मातृभाषा में हुई ? आप ने और कौन–कौन सी भाषाएँ सीखी ?

शैक्षिक अवसरों का समानीकरण

शैक्षिक सुविधाओं में विद्यमान क्षेत्रीय असंतुलन मिटाया जाएगा तथा ग्रामीण व पिछड़े इलाकों में शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान की जाएँगी। समाजिक समरसता व राष्ट्रीय एकता के लिए प्रस्तावित समान विद्यालय प्रणाली (कॉमन स्कूल सिस्टम) अपनाई जाएगी। निजी विद्यालयों जैसे सभी विशिष्ट विद्यालय योग्यता के आधार पर बच्चों की भर्ती करेंगे और प्रस्तावित अनुपात में विद्यार्थियों को मुफ्त शिक्षा देंगे, ताकि सामाजिक वर्गों का विभाजन रोका जा सके। बालिका शिक्षा, पिछड़े वर्ग तथा खास तौर पर अनुसूचित जनजातियों के बच्चों में शिक्षा का प्रसार किया जाएगा। शारीरिक और मानसिक रूप से विशेष ज़रूरत वाले बच्चों के लिए खास शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान की जाएँगी और ऐसे कार्यक्रम चलाए जाएँगे जिनसे वे सामान्य विद्यालयों में पढ़ सकें।

कार्यानुभव और राष्ट्र सेवा

विद्यालय और समुदाय को उपयुक्त कार्यक्रमों के माध्यम से नजदीक लाया जाएगा। साथ ही कार्यानुभव तथा राष्ट्र निर्माण को शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाया जाएगा।

विज्ञान शिक्षा तथा अनुसंधान

राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए विज्ञान शिक्षण और अनुसंधान को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाएगी। विद्यालयी शिक्षा की समाप्ति तक विज्ञान और गणित की शिक्षा को अनिवार्य किया जाएगा।

कृषि और उद्योग के लिए शिक्षा

प्रत्येक राज्य में कम से कम एक कृषि विश्वविद्यालय होगा। तकनीकी शिक्षा में उद्योगों में काम के जरिए

व्यवहारिक तकनीकी ज्ञान अनिवार्य होगा। देश की कृषि तथा औद्योगिक ज़रूरतों की समय–समय पर समीक्षा होगी, और उसमें उत्पन्न होने वाले रोज़गारों के साथ शिक्षा का सामंजस्य स्थापित किया जाएगा।

किताबों का निर्माण

प्रतिभाशाली लेखकों को पुस्तकें लिखने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के लिए उच्च गुणवत्ता की पाठ्यपुस्तकों के निर्माण के लिए तत्काल कदम उठाए जाएँगे। पाठ्यपुस्तकों में थोड़ी–थोड़ी अवधि में बदलाव करने को टाला जाएगा और उनकी कीमतों को इतना कम रखा जाएगा कि सामान्य जन उन्हें खरीद सके। स्वायत्त पाठ्यपुस्तक निगम स्थापित किए जाएँगे। प्रयास किया जाएगा कि कुछ पाठ्यपुस्तकें देश भर में समान रूप से लागू हों।

परीक्षा

मूल्यांकन को नियमित प्रक्रिया बनाया जाएगा जिससे गुणवत्ता के 'प्रमाणीकरण' के बदले विद्यार्थियों को अपना उपलब्धि स्तर सुधारने में मदद मिल सके।

माध्यमिक शिक्षा

इस स्तर पर व्यावसायिक व तकनीकी शिक्षा की सुविधाओं के विस्तार की ज़रूरत है। इसे रोज़ागर के अवसर और विकासशील अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं से भी जोड़ा जाएगा। इनका विस्तार कृषि, उद्योग, व्यापार और वाणिज्य जैसे विविध क्षत्रों में किया जाएगा।

शिक्षा का ढाँचा

देश में सभी जगह एकरूप शिक्षा का ढाँचा हो इसके लिए 10+2+3 प्रणाली अपनाई जाएगी।

शिक्षा नीति में उपर्युक्त बिंदुओं के आधार पर शिक्षा के तंत्र को पुनर्गठित करने की बात कही गई। इसके लिए शिक्षा में निवेश को क्रमशः बढ़ाते हुए उसे यथाशीघ्र राष्ट्रीय आय के छह प्रतिशत तक लाने की घोषणा की गई। नीति में कहा गया कि भारत सरकार को अहसास है कि शिक्षा व्यवस्था का पुनर्गठन सरल नहीं। न केवल इसके लिए उपलब्ध संसाधन सीमित हैं, बल्कि समस्या कहीं अधिक जटिल है। देश के भौतिक और मानव संसाधन के विकास में शिक्षा, विज्ञान और अनुसंधान की महत्त्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए भारत सरकार केंद्रीय स्तर पर कार्यक्रमों के संचालन के साथ–साथ राष्ट्रीय महत्त्व के कार्यक्रमों में राज्य सरकारों को भी सहायता करेगी।

गतिविधि

1. त्रिभाषा सूत्र की व्यावहारिकता और उपयोगिता पर कक्षा में चर्चा करें। उसमें इस पक्ष पर भी गौर करें कि क्या होता अगर हिंदी भाषी प्रदेशों के विद्यालयों में कोई दक्षिण भारतीय भाषा सिखाई जाती ?
2. निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा यदि उस वक्त लागू कर दी गई होती तो आज का परिदृश्य कैसा होता ?

4.2.3 कार्यान्वयन की समीक्षा

कोठारी आयोग का भारत के शैक्षिक जगत में महत्त्वपूर्ण स्थान है। 1966 के बाद हम इसी आदर्श की ओर बढ़ने का प्रयास कर रहे हैं, लेकिन इन नीतियों का जो क्रियान्वयन पाँच–दस सालों में होना था, आज भी पूरा नहीं हो पाया।

जैसा कि जे.पी. नायक कहते हैं –

> *".... क्या कारण है कि हम शैक्षिक विकास के एक ज्ञात एवं सम्मत कार्यक्रम तक को कार्यान्वित नहीं कर पाते हैं ? यदि इस प्रश्न का सही उत्तर ज्ञात किया जा सके और और उस पर अमल किया जा सके तो शीघ्र ही पूरी शैक्षिक स्थिति बदल जाएगी।"*

(नायक, जे.पी. नूरुल्ला, भारतीय शिक्षा का इतिहास (1800–1973), दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लि., 1976, पृष्ठ 424–425।)

शिक्षा आयोग द्वारा की गई क्रांतिकारी सिफारिशों को पूरी तरह लागू करने में हम शायद इसलिए भी नाकाम रहे हैं, क्योंकि असमानता और जातिगत भेदभाव वाले सामन्तवादी सामाजिक ढाँचे को बदलने के लिए जो राजनितिक इच्छाशक्ति चाहिए, वह हम प्रदर्शित नहीं कर सके हैं। इसलिए हम अपने समस्त नागरिकों को राजनीतिक और आर्थिक स्तर पर न्याय, समानता, स्वतंत्रता, व्यक्ति की गरिमा, और सामाजिक गतिशीलता के पूर्ण अवसर प्रदान नहीं कर सके हैं। यद्यपि 1950 में संविधान में हमने इन मूल्यों को शामिल किया, लेकिन यह प्रश्न बना रहा कि हम उन्हें आत्मसात् कितना कर पाए हैं।

आयोग की सिफारिशों को लागू न करने के पीछे अपर्याप्त वित्तीय प्रावधान भी हैं। 50 साल बाद आज भी राष्ट्रीय आय का तीन प्रतिशत ही हम शिक्षा पर खर्च करते हैं, जबकि आयोग ने कहा था कि यह अनुपात कम से कम 6 प्रतिशत हो।

आयोग की सुझाई 10+2+3 प्रणाली कुछ समय के अंतराल पर समूचे देश में लागू कर दी गई। त्रिभाषा सूत्र को भी लागू कर दिया गया किंतु शिक्षा आयोग की भावना के विपरीत हिंदी भाषी प्रान्तों के विद्यालयों में दक्षिण भारतीय भाषा के बदले संस्कृत पढ़ाई गई। हालाँकि अधिकांश दक्षिण भारतीय प्रान्तों में तीसरी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण किया गया।

समान विद्यालय (कॉमन स्कूल) प्रणाली अभी भी एक सपना ही है किन्तु निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का कानून कोठारी आयोग की सिफारिश के तकरीबन चार दशकों के बाद 2009 में लागू हुआ। शिक्षकों में व्यावसायिक दक्षता लाने के लिए शिक्षक शिक्षा में किए जा रहे वर्तमान प्रयास, शिक्षक शिक्षा का पाठ्यक्रम आदि भी कोठारी आयोग के सुझावों के अनुरूप ही हैं।

कोठारी आयोग की सिफारिशें अब भी प्रासंगिक हैं। यही वजह है कि इसके बाद बने शिक्षा आयोगों व नीतियों द्वारा तथा अनेक विद्वानों द्वारा भी अक्सर कोठारी आयोग की सिफारिशों का उल्लेख किया जाता है।

गतिविधि

- कक्षा में चर्चा करें कि कोठारी आयोग की कौन कौन सी सिफारिशें लागू हो चुकी हैं, किन सिफारिशों की ओर हम बढ़ रहे हैं और किन सिफारिशों से हम दूर हट रहे हैं ?

4.3 1980 के दशक में शिक्षा की स्थिति व नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986

1968 की नीति के क्रियान्वयन के साथ कुछ ही वर्षों में परिणाम भी आने शुरू हुए, जिसमें शिक्षा का व्यापक प्रसार, घर के समीप प्राथमिक विद्यालय की उपलब्धता का प्रयास करना, लगभग सभी राज्यों द्वारा शिक्षा की समान संरचना को सैद्धांतिक मान्यता मिलना इस नीति की कुछ बड़ी सफलताएँ थीं परंतु 1980 के दशक तक आते–आते यह स्पष्ट हो गया था कि भारत 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के कई लक्ष्यों को पूर्णतः या अंशतः प्राप्त नहीं कर सका है।

4.3.1 1980 के दशक तक की शैक्षिक स्थिति

1980 के दशक तक की शैक्षिक स्थिति को आगे कई प्रकार के आँकड़ों से आसानी से समझा जा सकता है, जैसे– 1981 तक देश में प्राथमिक स्तर पर सकल नामांकन 93.4 प्रतिशत तक पहुँच गया। विद्यालय की उपलब्धता की दिशा में सरकार ने 1950–51 से 1984–85 तक काफी प्रयास किए। इस अवधि में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या लगभग 2,10,000 से बढ़कर 5,20,000 तथा उच्च प्राथमिक शिक्षण संस्थाओं की संख्या 30,600 से बढ़कर 1,30,000 हो गई थी। अकेले प्राथमिक विद्यालयों की संख्या कुल शैक्षिक संस्थाओं का 73 प्रतिशत बनती है, अर्थात्

शैक्षिक संस्थाओं की संख्या लगभग तीन गुना बढ़ गई। शिक्षा के सभी स्तरों और लगभग सभी संकायों के नामांकन में काफी वृद्धि हुई है।

फिर भी ये आँकड़े वास्तविक स्थिति की संपूर्णता को नहीं दिखाते हैं। उदाहरण के लिए बहुत बड़े क्षेत्र में बस्तियों में अभी भी कोई स्कूल नहीं था। देश में कुछ ऐसे क्षेत्र भी थे, जहाँ 10–20 किलोमीटर तक कोई विद्यालय नहीं था जैसे, जनजातीय, पर्वतीय व रेगिस्तानी क्षेत्र। इन क्षेत्रों में जनसँख्या कम होती है, इसलिए काफी सारे बच्चों का नामांकन नहीं हो रहा था। 40 प्रतिशत स्कूलों की पक्की इमारतें नहीं थी, लगभग 40 प्रतिशत स्कूलों में ब्लैकबोर्ड तक नहीं थे और लगभग 60 प्रतिशत स्कूलों में पीने का पानी भी उपलब्ध नहीं था। ग्रामीण क्षेत्रों के एक तिहाई विद्यालयों में तो केवल एक ही शिक्षक था। साथ ही सकल नामांकन का जो आँकड़ा ऊपर बताया गया है उसमें अगर अधिक या कम उम्र के बच्चों को भी शामिल कर लिखा जाए तो यह प्रगति और भी कम हो जाती है। विभिन्न वर्गों तथा लड़के व लड़कियों के बीच की विषमताओं का यदि अध्ययन करने की कोशिश करें तो स्पष्ट होगा कि लड़कियों का नामांकन 75.5 प्रतिशत अवश्य था परंतु देश में ऐसे भी जिले थे (जैसे राजस्थान का जालौर जिला) जहाँ प्रारंभिक शिक्षा में लड़कियों का नामांकन केवल 17 प्रतिशत ही था। स्कूल छोड़ने वालों की संख्या काफी ज्यादा थी।

देश में साक्षरता की दर 1951 में 16.67 से बढ़कर 1981 में 36.23 प्रतिशत हो गई परंतु फिर भी जनसंख्या वृद्धि के चलते इस अवधि में निरक्षरों की संख्या 30 करोड़ से बढ़कर 43.7 करोड़ हो गई। 1985 में स्त्रियों व पुरुषों की साक्षरता दर बहुत अधिक असमान थी। पुरूषों की साक्षरता दर 46.9 प्रतिशत और स्त्रियों की 24.8 प्रतिशत थी। यदि 1951 से 1981 के बीच आंकड़े खंगाले जाएँ तो स्पष्ट होगा कि इस अवधि के दौरान निरक्षर महिलाओं की संख्या (असम को छोड़कर) 15.87 करोड़ से बढ़कर 24.17 करोड़ हो गई थी। निरक्षर जनसँख्या में महिलाएं 57 प्रतिशत थी तथा स्कूल स्तर पर दाखिल न किए गए बच्चों में से 70 प्रतिशत लड़कियाँ थीं। कई प्रयासों के बावजूद, शिक्षा प्रणाली महिलाओं की समानता के प्रति पर्याप्त योगदान नहीं कर सकी थी। इस परिस्थिति में भी राजस्थान की स्थिति भी गभीर स्थिति थी और साक्षरता दर के मापदंडों के अनुरूप राज्य काफी पिछड़ा हुआ था, क्योंकि संपूर्ण राजस्थान में साक्षरता दर सबसे कम 24.38 प्रतिशत थी, जो स्त्रियों के संदर्भ में तो केवल 5.46 प्रतिशत ही थी। अतः इन आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है स्वतंत्रता के लगभग चार दशकों तक भी सभी को अच्छी प्रारंभिक शिक्षा देने का संवैधानिक उद्देश्य पूरा नहीं हो पाया।

नई शिक्षा नीति की ओर

1980 के दशक तक यह स्पष्ट हो चुका था कि सार्वभौमिक शिक्षा का संवैधानिक उद्देश्य अभी भी कोसों दूर था। समाज के सबसे कमज़ोर तबके शिक्षा से वंचित रहे। प्राथमिक व माध्यमिक विद्यालयों, खासकर ग्रामीण क्षेत्र में, आधारभूत सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं थे।

इसी पृष्ठभूमि में शिक्षा की नई व पुरानी चुनौतियों को पहचानने का कार्य शुरू हुआ और इन चुनौतियों से निपटने हेतु एक नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति की आवश्यकता महसूस की गई। इसलिए ही 1986 में एक नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण का सरकार ने निर्णय लिया।

गतिविधि

इनमें से वह कौन सी समस्याएँ हैं जो आज भी लगभग उसी रूप में विद्यमान हैं ?

4.3.2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986

1986 में बनी यह नीति आज भी प्रभाव में है। यह कोठारी आयोग की सिफारिशों पर आधारित तो है मगर इसमें शिक्षा को समाज के सबसे कमज़ोर वर्गों व बालिकाओं तक पहुँचाने पर ज़ोर है। साथ ही शिक्षा का विषय संविधान की समवर्ती सूची में आने से केंद्र सरकार की बढ़ती पहल और भूमिका को भी दर्शाती है।

1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मुख्य प्रावधान :

प्रदर्श 4.3 आदर्श उच्च प्राथमिक विद्यालय



1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में "सबके लिए शिक्षा" को अपना उद्देश्य मानते हुए यह संकल्प लिया गया कि 1990 तक सभी बच्चों को 5 वर्ष की प्राथमिक शिक्षा तथा 1995 तक सभी बच्चों को आठवीं कक्षा तक की शिक्षा अवश्य दी जाएगी। इसी तरह नीति में नामांकन तथा बच्चों के विद्यालय में आधारभूत सुविधाओं, अनौपचारिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा आदि से संबंधित विषयों के संदर्भ में भी लक्ष्य निर्धारित किए गए। इन प्रावधानों के माध्यम से शिक्षा के क्षेत्र की चुनौतियों, खामियों से निपटने तथा निर्धारित लक्ष्यों की ओर बढ़ने की बात की गई है। ये प्रावधान इस प्रकार है :–

1. समान स्कूल व्यवस्था तथा प्रारंभिक शिक्षा बिना किसी जात–पात, धर्म, स्थान या लिंग भेद के, लगभग एक जैसी अच्छी शिक्षा उपलब्ध हो।
2. प्रारंभिक शिक्षा में 14 वर्ष की अवस्था तक के सभी बच्चों को विद्यालय में भर्ती होने व विद्यालय में टिके रहने पर तथा शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने पर ज़ोर दिया जाएगा।
3. शिक्षा का उपयोग महिलाओं की स्थिति में बुनियादी परिवर्तन लाने के लिए एक साधन के रूप में किया जाएगा। महिलाओं में साक्षरता का प्रसार तथा उन रुकावटों को दूर करने, जिनके कारण लड़कियां प्रारंभिक शिक्षा से वंचित रह जाती हैं, उन्हें प्राथमिकता दी जाएगी।
4. तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा (औपचारिक या अनौपचारिक रूप) में महिलाओं की भागीदारी पर खास ज़ोर दिया जाएगा। लड़के व लड़की में किसी प्रकार का भेदभाव न बरतने की नीति पर पूरा ज़ोर देकर अमल किया जाएगा।
5. अनुसूचित जातियों के शैक्षिक विकास पर बल दिया जाएगा, जिससे कि वह गैर अनुसूचित जाति के लोगों के बराबर आ सकें।
6. अनुसूचित जनजातियों को समाज के अन्य लोगों (मुख्यधारा) की बराबरी पर लाने के लिए आदिवासी क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालय खोलने के कार्य को प्राथमिकता दी जाएगी। प्राथमिक शिक्षा में उनकी भाषाओं के प्रयोग को प्रोत्साहन दिया जाएगा।
7. शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए सभी वर्गों को, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, समुचित प्रोत्साहन दिया जायेगा।
8. अल्पसंख्यकों के कुछ वर्ग शिक्षा में काफी पिछड़े और वंचित हैं, ऐसे वर्गों की शिक्षा पर पूरा ध्यान दिया जाए।
9. सभी प्रकार के विशेष योग्यजनों को शिक्षा देने का उद्देश्य यह होना चाहिए कि वे समाज के साथ कंधे से कंधा मिलकर चल सकें, उनकी सामान्य तरीके से प्रगति हो। विशेष आवश्यकता वाले बालकों के लिए शिक्षा का उचित प्रबंध हो।
10. आधारभूत सुविधाओं की पूर्ति हेतु एक "ऑपरेशन ब्लेक बोर्ड" की शुरूआत होगी, जिसमें हर स्कूल में कम से कम दो शिक्षक, जिनमें से एक महिला अवश्य होगी। दो बड़े पक्के कमरे, शौचालय, स्वच्छ पेयजल, खिलौने तथा क्रीड़ा सामग्री, श्यामपट्ट, नक्शे, चार्ट व अन्य पाठ्य सामग्री आदि भी अवश्य होंगे।
11. ऐसे बच्चे जो बीच में स्कूल छोड़ गए हों या जो ऐसे स्थानों में रहते हैं जहाँ स्कूल नहीं हैं अथवा जो काम में लगे हुए हैं। वे लड़कियाँ जो दिन के स्कूल में पूरे समय नहीं जा सकती इन सबके लिए एक विशाल और विस्तृत कार्यक्रम चलाया जाएगा।

12. ग्रामीण इलाकों के गरीब प्रतिभावान विद्यार्थियों के लिए हर जिले में एक केंद्रशासित विद्यालय (इन्हें बाद में नवोदय विद्यालय कहा गया) स्थापित होगा।
13. अध्यापकों की शिक्षा एक सतत प्रक्रिया है, इसलिए हर जिले में 'जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान(डाइट) स्थापित किए जाएँगे जिनमें प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों की और अनौपचारिक शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा के कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था होगी।
14. केंद्र सरकार पूरे देश के लिए एक सामान्य मूल पाठ्यचर्या तैयार करेगी।

गतिविधि

1. कक्षा में चर्चा करें–1980 के दशक की शैक्षिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह चर्चा करें की क्या 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में जो मुख्य प्रावधान रखें गए वह उन परिस्थितियों, शिक्षा व्यवस्था से उस समय की आकांक्षाओं को पूरा करने हेतु सही थे ?
2. 1968 की शिक्षा नीति और 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति की तुलना कीजिए और ऐसे बिंदुओं को ढूँढे जो दोनों शिक्षा नीतियों में समान है? इस संबंध में उन बिन्दुओं के आधार पर कक्षा में यह भी चर्चा करें कि वह कौन से मुद्दे हैं, जो दोनों नीतियों के निर्माण के समय भी प्रमुख थे और आज भी लगभग उसी रूप में विद्यमान है ? साथ ही उन मुद्दों के लगातार बने रहने का कारण भी ढूँढ़ें?

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 की समीक्षा

1986 की नीति के संदर्भ में नीति विश्लेषण करने वाले कई विद्वान, शिक्षा नीति में कई प्रकार के विरोधाभासों को पहचानने का दावा करते है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति मूलतः एक सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य हमारे सामने रखती है। यह विश्लेषण संविधान, सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों, देश की सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक नीतियों और शिक्षा व्यवस्था के साथ राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 का अध्ययन किया जाएँ तो इस नीति की असली मंशा व नीति के क्रियान्वयन की व्यावहारिकता का पता लग सकता है। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में स्पष्ट किया गया है कि इस नीति में जिन सिद्धान्तों पर राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था की परिकल्पना की गई हैं, वह हमारे संविधान में ही निहित है। इसी परिप्रेक्ष्य में अब इस नीति के कुछ प्रावधान देखिए जो यह स्पष्ट करते हैं कि नई नीति विषमताओं को दूर करने पर विशेष बल देंगी और अब तक वंचित रहे लोगों की विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के समान उपलब्ध कराएगी। साथ ही नीति मानती है कि राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का मूल मंत्र यह है कि एक निश्चित स्तर तक हर शिक्षार्थी को, बिना किसी जात–पाँत, धर्म, स्थान या लिंग भेद के, लगभग एक जैसी अच्छी शिक्षा उपलब्ध हो।

नीति विश्लेषणः शिक्षा नीति संबंधी अध्ययन का एक तरीका

शिक्षा नीति का अध्ययन करने से पहले यह समझना आवश्यक है कि नीति का विश्लेषण कैसे किया जाए? किसी भी नीतिगत दस्तावेज में राज्य के उद्देश्य और मंशा और प्राथमिकताएं स्पष्ट होते हैं। नीतिगत दस्तावेज के साथ एक कार्य योजना का भी दस्तावेज तैयार किया जाता है। हम इसकी भी समीक्षा कर सकते हैं कि उन उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए क्या राज्य ने उपयुक्त ढाँचा, संसाधन व कार्यनीति उपलब्ध करवाए हैं? अर्थात् नीति के प्रति राज्य कितना गंभीर है और नीति में कितनी वास्तविकता विद्यमान है।

रोहित धनकर, राजाराम भादू (संपादित) की पुस्तक 'शिक्षा के संदर्भ और विकल्प' में (आधार–प्रकाशन हरियाणा) पृ. स. 86 दृ 103

विद्यालय न आने वाले बालक–बालिकाओं के लिए वैकल्पिक व्यवस्था करने की बात की है। क्या इस प्रावधान का अर्थ यह है कि इन बच्चों के लिए स्तरीय शिक्षा की जगह कम गुणवत्ता की शिक्षा दी जाएगी? क्या यह उनके

समानता के अधिकार का उल्लंघन नहीं होगा ? क्या इस प्रावधान से बाल–श्रम को वैधता नहीं दी जा रही है ? कई लोगों का मानना है कि यदि औपचारिक स्कूल में कोई भी कमी है, तो उस कमी को दूर करना राज्य का प्राथमिक दायित्व है। यदि वह स्कूल बच्चों के अनुकूल समय पर नहीं लगता तो समय बदले, यदि स्कूल पहुँच से बाहर है, तो स्कूलों को बच्चों की पहुँच में लाया जाए। वह सभी चीजें जो अनौपचारिक शिक्षा के लिए करेंगे, वह औपचारिक शिक्षा के लिए करना शुरू करें। वह समतावादी शिक्षा जो संविधान व नीति में परिलक्षित होती है, वह औपचारिक (स्कूल) शिक्षा के द्वारा ही संभव है।

1986 से 2006 के बीच का अनुभव भी इसी आलोचना का पुष्टि करता है और शिक्षा अधिकार कानून में सभी तरह के बालक–बालिकाओं के लिए औपचारिक विद्यालय का प्रावधान किया गया है।

नीति में बालिका शिक्षा की समस्याओं को समाज में महिलाओं की स्थिति से जोड़कर देखा गया है।

नीति स्पष्ट करती है की "महिलाओं की स्थिति को सुदृढ़ व सशक्त करने के लिए नए मूल्यों की स्थापना के लिए शिक्षण संस्थाओं के सक्रिय सहयोग से पाठ्यक्रमों तथा पठन–पाठन सामग्री की पुनर्रचना की जाएगी तथा अध्यापकों व प्रशासकों को पुनःप्रशिक्षण दिया जाएगा। इस प्रावधान के जरिये शिक्षा नीति मान रही है कि पाठ्यक्रम, पठन–सामग्री की पुनर्रचना व सामाजिक पुनर्रचना एक दूसरे से घनिष्ठता से मिले हुए हैं, जो इसलिए पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पठन–सामग्री महिलाओं के लिए सशक्तीकरण का मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 प्रावधान करती है कि "महिलाओं में साक्षरता प्रसार को तथा उन रुकावटों को दूर करने को जिनके कारण लड़कियाँ, प्रारंभिक शिक्षा से वंचित रह जाती है, सर्वोपरि प्राथमिकता दी जाएगीं"। इस प्रावधान के द्वारा व्यापक परिवर्तन की मांग परिलक्षित होती है, जो महिलाओं (लड़कियों) के सामाजिक–आर्थिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों से तय होती है। समाज में सामाजिक–आर्थिक व सांस्कृतिक वजहों से लड़कियाँ स्कूल नहीं जा पाती हैं अथवा प्रारंभिक शिक्षा को पूरा किये बिना ही छोड़ देती है। इन के लिए विशेष प्रयास की आवश्यकता पर जोर दिया है। इस प्रकार लोक जुंबिश में जन सहभागिता आधारित जेण्डर समता मूलक प्राथमिक शिक्षा का उदाहरण प्रस्तुत किया।

इस तरह का प्रयास लोक जुंबिश कार्यक्रम के तहत राजस्थान में किया गया जिसके बारे में आप आगे पढेंगे।

नवोदय विद्यालय (पेस–सेटिंग स्कूल)

इस नीति का एक महत्त्वपूर्ण प्रावधान है, जिसमें सरकार मान रही है कि प्रतिभावान छात्रों के लिए ऐसे विद्यालयों से शिक्षा व्यवस्था को गति मिलेगी लेकिन यह सोच ही शायद समस्याप्रद है कि कक्षा पाँच के स्तर पर कुछ बच्चे प्रतिभावान होते हैं और अधिकांश नहीं। अगर उचित अवसर मिले तो सब बच्चे प्रतिभावान बन सकते हैं। अतः सारे विद्यालयों को एक जैसे साधन संपन्न और सुविधायुक्त बनाने की ज़रूरत है न कि जिलेभर में एक आदर्श विद्याालय की।

गतिविधि

- क्या आप इस कथन से सहमत हैं कि बालिकाओं की शिक्षा में उनकी सामाजिक प्रस्थिति (status) एक प्रमुख बाधा है? अगर हाँ तो इन्हें बदलने के लिए क्या किया जाना ज़रूरी है ?
- शिक्षा अधिकार कानून के तहत विद्यालय में प्रवेश परीक्षा के आधार पर नहीं दिया जा सकता है। इस प्रावधान के संदर्भ में नवोदय विद्यालय की प्रासंगिकता व औचित्य पर चर्चा करें।

4.4 'शिक्षा बिना बोझ के' समिति की रपट : यशपाल कमेटी 1992

1990 के दशक में 'शिक्षा का बोझ' भारत में अत्यंत चर्चित मुद्दा बना रहा। विभिन्न समितियों की अनुशंसाओं से

लेकर संसद तक इस मुद्दे की गूँज सुनाई दी। ऐसे में भारत सरकार (मानव संसाधन विकास मंत्रालय) ने प्रो. यशपाल की अध्यक्षता में एक समिति का गठन 1992 में किया। इस समिति ने (जिसे 'यशपाल समिति' के नाम से जाना जाता है) जुलाई, 1993 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसका शीर्षक 'शिक्षा बिना बोझ के' रखा गया। इस प्रतिवेदन का मुख्य केंद्र स्कूली बच्चों के बोझ को कम करते हुए अधिगम गुणवत्ता में सुधार लाने के उपाय सुझाना था। इसलिए यशपाल समिति ने निम्नलिखित क्षेत्र के इर्द–गिर्द अपना कार्य किया –

"सभी स्तरों के स्कूली छात्रों खासकर छोटे बच्चों पर शिक्षा के भार को कम करते हुए जीवन पर्यंत स्वाध्याय और कौशल विकसित करने की क्षमता सहित अधिगम की गुणवत्ता में सुधार लाने के उपायों के बारे में सलाह देना।"

इस समिति ने अपने अध्ययन के मूल में यह पाया कि हमारी वर्तमान शिक्षा काफी बोझिल है। समिति के अनुसार यह बोझ मुख्यतः दो प्रकार का है – भौतिक बोझ एवं सीखने का बोझ।

1. भौतिक बोझ – भौतिक बोझ का अर्थ यहाँ किताबों–कॉपियों के भार से है। स्कूल जाते हुए बच्चा स्वयं का बस्ता (जो भारी है) उठाकर नहीं चल सकता। इस तरह का भारी स्कूली बस्ता उठाकर चलते हुए बच्चों का शारीरिक विकास, वृद्धि व स्वास्थ्य लगातार नकारात्मक रूप में प्रभावित हो रहे हैं।

2. सीखने का बोझ – सीखने के बोझ, जिसे समिति सर्वाधिक खतरनाक मानती है, का अर्थ है कि बच्चों में कूट–कूट कर ज्ञान भरा जाए, उन्हें सिखाया जाए। भले ही जो ज्ञान दिया जा रहा है वह बच्चों के सीखने के सामान्य स्तर से ऊँचा हो अथवा बेवजह उन्हें सीखने से संबंधित हो, भले ही बच्चे उन्हें समझे या नहीं। सीखने का बोझ बच्चों पर बचपन के शुरूआती दिनों से ही डाल दिया जाता है। स्कूल में अत्यधिक बड़ी कक्षा, भारी पाठ्यक्रम, कठिन पुस्तकें, कक्षा कार्य, गृह कार्य, टयूशन आदि द्वारा सीखने से बच्चों का जीवन नीरस हो गया है। साथ ही विद्यालय में भारी व विस्तृत पाठ्यक्रम के कारण जो कमी रह जाती है, उसे पूरा करने के लिए वे निजी कोचिंग का सहारा लेते हैं। इसलिए निजी कोचिंग की संस्कृति को बढ़ावा मिल रहा है। इसलिए वह जब "ज्ञान के विस्फोट" को समझते या सीख नहीं पाते हैं, तब वह बिना समझे ही चीजों को रटना शुरू कर देते हैं। अंततः ऐसे सीखने का बोझ बच्चों पर दबाव डालता है। यदि वह सीख नहीं पाता है तो हमारी परीक्षा प्रणाली उसे 'असफल' करार देती है। इससे बच्चों पर मनोवैज्ञानिक दबाव तो बनता ही है, पर यही बच्चों के विद्यालय को छोड़ देने का एक प्रमुख कारण भी बन जाता है। विद्यालय के होने का अर्थ स्वयं में शिक्षा संबंधी गतिविधियों को स्वयं में समाने और संपूर्णता से है।

अतः सीखने का बोझ (जिसमें "ज्ञान का विस्फोट" शामिल है) काफी खतरनाक सिद्ध होता है, क्योंकि यही अंततः अनेक समस्याओं को उत्पन्न करता हैं। यह प्रतिवेदन मानता है कि सीखने व सिखाने के बोझ से ही शिक्षक व शिक्षार्थी दोनों आनंद की भावना खो चुके होते हैं, जिसमें शिक्षक की भूमिका विचारणीय है। शिक्षक यह अनुभव करते हैं कि वह ज्यादा कुछ नहीं कर सकते। वे 'ब्रह्मसत्य' के रूप में पाठ्यपुस्तक का प्रयोग करते है। बच्चों को सब कुछ पढ़ाना चाहते हैं। ज्ञान प्राप्ति के लिए निर्धारित पाठ्यपुस्तकों के अलावा और कोई संसाधन माना नहीं जाता है और पुस्तकें इस तरह से बनायी जाती हैं, जिसका ज्ञान बच्चों के वास्तविक ज्ञान से अलग होता है। अंततः बच्चे उत्तीर्ण होने के लिए रटंत प्रक्रिया अपनाने लगते हैं। इसीलिए यशपाल समिति यह सिफारिश करती है कि

"गृहकार्य की प्रकृति तथा स्वरुप में आमूलचूल परिवर्तन करने की जरूरत है। प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों को कोई गृहकार्य न दिया जाए। उच्च प्राथमिक तथा माध्यमिक कक्षाओं में जहाँ गृहकार्य आवश्यक हों वहाँ पाठ्यपुस्तक से हटकर गृहकार्य दिया जाए तथा घर पर जब गृहकार्य करना जरुरी हो, तो बारी–बारी के आधार पर पाठ्यपुस्तकें बच्चों को उपलब्ध कराई जाएँ। समिति का मानना है कि पाठ्यपुस्तकों को स्कूली संपति समझा जाए। इस प्रकार बच्चों को व्यक्तिगत रूप से इन पुस्तकों को खरीदने तथा उन्हें प्रतिदिन घर ले जाने की कोई जरूरत नहीं होनी चाहिए। गृहकार्य के लिए तथा स्कूल में पाठ्यपुस्तकों और अभ्यास पुस्तिकाओं के प्रयोग के लिए अलग से समय सारिणी बनाई जाए, जिसकी जानकारी बच्चों को पहले से ही दे दी जाए।"

इससे बच्चों का भौतिक बोझ कम होगा और छोटे बच्चों को भारी बस्ते के साथ प्रतिदिन स्कूल जाने के लिए बाध्य न करके उनके साथ हो रहे उत्पीड़न पर भी रोक लगेगी।

प्रश्न

1. शिक्षा के बोझ का क्या अर्थ है ? क्या मात्र ज्ञान का विस्फोट इसका कारण है ? चर्चा कीजिए।
2. "शिक्षा बिना बोझ के" समिति किन किन प्रकार के बोझों की चर्चा करती है तथा क्या यह बोझ वर्तमान शिक्षा में भी मौजूद है ? जानकारी जुटाएँ और कक्षा में अपने विचार रखें।

यशपाल समिति सिफारिश करती है कि पाठ्यपुस्तक आधारित तथा 'प्रश्न–मंच' प्रकार के प्रश्नों के स्थान पर संकल्पना आधारित प्रश्नों की व्यवस्था की जाए। शिक्षण की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए तथा बच्चों को रटने की विवशता से मुक्ति दिलाने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में किया गया यह एक प्रयास ही पर्याप्त है। समिति यह मानती है कि रटकर 'अधिक सीखने' की अपेक्षा स्वयं करके 'थोड़ा सीखना' ज्यादा बेहतर है।

समिति इस परिस्थिति पर ध्यान आकृष्ट करती है कि स्थानीय परिस्थितियों के साथ पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु का तालमेल नहीं होता। स्कूल की पढाई और असली जिंदगी की परिस्थितियों में फासला बहुत बड़ा होता है। अतः इस शिक्षा से निकले हुए विद्यार्थी अपने ज्ञान से जीवन की वास्तविकता में कोई मदद प्राप्त नहीं कर पाते हैं। अर्थात स्कूल के अंदर व बाहर की दुनिया में एक बड़ा फासला है, जिसे पूरा करना विद्यार्थी के लिए संभव नहीं होता है, इसलिए समिति यह सुझाव देती है कि पाठ्यपुस्तकें विश्लेषणात्मक चिंतन पर ज़ोर दें। उसमें कठिन व बोझिल भाषा का प्रयोग न किया जाए। जैसे– भाषा की पाठ्यपुस्तकों में स्थानीय एवं बोलचाल के मुहावरों को उचित स्थान दिया जाए। प्राथमिक स्तर की विज्ञान पाठ्यपुस्तकों में जो निरर्थक और महत्त्वहीन सामग्री शामिल की गई है, उसे हटा दिया जाए, प्राकृतिक विज्ञान के माध्यमिक व उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के पाठ्यक्रम में शामिल अधिकांश विषयवस्तु को ऐसे प्रयोगों अथवा कार्यकलापों से जोड़ा जा सकें जिन्हें बच्चे तथा शिक्षक स्वयं करें। सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम में हमारी सामाजिक–राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था के दर्शन तथा कार्यविधि की जानकारी दी जाए ताकि छात्र सामाजिक, आर्थिक विकास से सम्बन्धित समस्याओं और प्राथमिकताओं का विश्लेषण कर उन्हें आत्मसात कर सकें।

आज जिस रूप में नागरिक शास्त्र की शिक्षा दी जाती है उससे बच्चों की स्मरण शक्ति पर भारी दबाव पड़ता है इसलिए तत्कालीन रूप में मौजूद नागरिक शास्त्र को समाप्त करने तथा उसके स्थान पर सामाजिक अध्ययन को रखने पर ज़ोर दिया गया। सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकें क्षेत्रीय, सांस्कृतिक–विविधताओं को अपने में समेटे हों। साथ ही समिति मानती है कि "पाठ्यपुस्तक–निर्माण की संस्कृति में परिवर्तन किया जाना चाहिए ताकि पाठ्यपुस्तकों के लेखन में अधिक अध्यापक भाग ले सकें। विभिन्न विषयों के वैज्ञानिक तथा विशेषज्ञों को पाठ्यपुस्तकें तैयार करने के काम में पुस्तकों के लेखक के रूप में नहीं (क्योंकि कई बार विशेषज्ञों को कक्षाओं की वास्तविकताओं का पता नहीं होता है) बल्कि परामर्शकों के रूप में शामिल किया जाए।

यशपाल समिति यह तर्क देती है कि है जो लोग "ज्ञान के विस्फोट" को न्यायोचित ठहराने के लिए बार–बार यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि भारत को विकसित देशों के बराबर पहुँचना है, जहाँ पर ज्ञान का काफी विस्तार पहले ही हो चुका है। अतः हमारे बच्चों को पहले की अपेक्षा अधिक सीखना चाहिए। इसलिए वह लोग पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों की वर्तमान स्थिति को भी न्यायसंगत ठहराते हैं। इसीलिए समिति मानती है कि ज्ञान के विस्फोट की धारणा इस दृष्टिकोण पर आधारित है कि ज्ञान या सूचना एक दूसरे के पर्याय हैं परन्तु बच्चों की शिक्षा में विशाल सूचना की जानकारी रखने के बजाय सिद्धांत निर्माण तथा अवधारणाओं के विकास के लिए क्षमताओं की वृद्धि पर बल देना चाहिए। समिति मानती है कि "ज्ञान के विस्फोट" संबंधी विचार के कारण यह समझने में कठिनाई होती है कि बचपन में सीखना और विभिन्न विषयों के संबंध में "सूचना" एकत्र करना दोनों एक समान नहीं हैं। सूचना देने के बाद, उसे

पुनः उद्धरित करने का अर्थ सीखना नहीं है परंतु उस सूचना को वह तब समझता है, जब वह अपनी सूझबूझ का प्रयोग कर इसे अन्य मामलों में इस्तेमाल कर सकें। अतः 'ज्ञान के विस्फोट' से सूझबूझ की अवहेलना होती है, जबकि यह शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।

इसी के साथ समिति शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम की कमी के कारण स्कूलों में शिक्षण की गुणवत्ता में कमी का कारण मानती है। इसीलिए समिति सिफारिश करती है कि बी.एड. प्रशिक्षण कार्यक्रम में माध्यमिक, प्रारंभिक अथवा नर्सरी स्तर पर शिक्षण हेतु विशेषज्ञता प्राप्त करने का प्रावधान होना चाहिए। स्नातक शिक्षा पूरी करने के पश्चात् बी.एड. कार्यक्रम की अवधि एक वर्ष अथवा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा पूरी करने के पश्चात् इसकी अवधि 3–4 वर्ष की जाए। साथ ही गुणवत्ता हेतु पत्राचार के माध्यम से प्रचलित बी.एड. डिग्री के पाठ्यक्रमों की मान्यता समाप्त की जानी चाहिए।

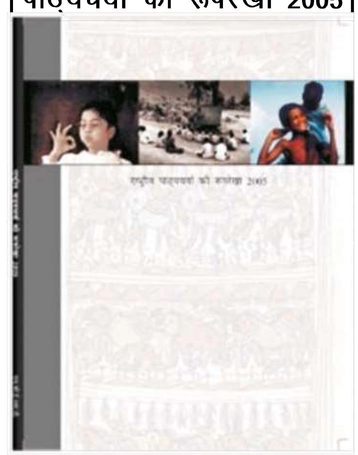
यशपाल समिति प्रतियोगिता पर आधारित प्रवृत्ति को बढ़ाने की मनाही करती है इसलिए समिति का मानना रहा कि व्यक्तिगत उपलब्धि को पुरस्कृत करने वाली प्रतियोगिताओं को हतोत्साह करने की आवश्यकता है क्योंकि यह बच्चों को आनंददायक शिक्षा से वंचित करती है। समिति सिफारिश करती है कि "स्कूलों में ऐसी शिक्षण प्रणाली अपनाएँ जाए जो सहयोग पर टिकी हो और सामूहिक गतिविधियों तथा सामूहिक उपलब्धियों को प्रोत्साहित करें।"

गतिविधि

शिक्षा के बोझ को कम करने के लिए यशपाल समिति ने जिन सुझावों को सामने रखा है, क्या वे सुझाव सच में इस बोझ में समाप्त या कम करने में असरदार साबित रहे हैं, इसकी चर्चा कीजिए।

4.4.1. यशपाल समिति के सुझावों की समीक्षा

प्रदर्श 4.4 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005



यह सोचने का विषय है कि यशपाल समिति ने 1993 में अपना प्रतिवेदन सामने रख दिया था परंतु वर्तमान शिक्षा के स्वरूप को देखने से उस परिस्थिति में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं आया है। आज भी बिना बोझ के शिक्षा नहीं मिल रही है। यशपाल समिति के क्रियान्वयन से इस पर सरकार की मंशा भी स्पष्ट हो जाती है कि यशपाल समिति का प्रतिवेदन आते ही मानव संसाधन मंत्रालय ने अपने संयुक्त सचिव श्री वाई.एन. चतुर्वेदी की अध्यक्षता में एक और समिति बनाकर उसे यशपाल समिति की सिफारिशों की जांच का काम सौंपा। डा. अनिल सदगोपाल कहते है कि

"सरकारी विशेषज्ञों की इस समिति ने बंद कमरे में बैठकर एक महीने के अंदर अपना प्रतिवेदन जारी किया, जिसमें यशपाल समिति की सिफारिशों पर या तो प्रश्न खड़े किए गए या उसका दायरा सीमित करने की कोशिश की गई। चूँकि देश भर में यशपाल समिति की रिपोर्ट का खुलकर स्वागत हुआ था, इसलिए मानव संसाधन मंत्रालय ने अंततः चतुर्वेदी रिपोर्ट के संदर्भ में इसके क्रियान्वयन के आदेश पारित करके इसकी मोनीटरिंग का काम राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् को सौंप दिया गया... दिक्कत इसमें यह है कि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद तो स्वयं ही बोझिल पाठ्यपुस्तकें लिखवाने के लिए जिम्मेवार है और उसी को यशपाल समिति के क्रियान्वयन की मॉनीटरिंग का जिम्मा सौंपा गया।"

यशपाल समिति की सिफारिशे स्वयं में क्रांतिकारी परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त कर सकती थी, यदि सिफारिशों को अक्षरशः स्वीकार किया जाता। आंशिक रूप से सरकार ने इसके बाद आये दस्तावेजों में इससे निपटने का प्रयास किया, इनमें राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2000 तथा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 प्रमुख है। इन दोनों

पाठ्यचर्याओं ने "सीखने का बोझ" पर अपना ध्यान केंद्रित किया, जिसमें खेल–खेल में सीखना, बाल–केंद्रित शिक्षा, निर्मितिवाद, कर के सीखना, गृहकार्य न देने पर ज़ोर देना प्रमुख है।

इसी तरह शिक्षा के भौतिक बोझ को प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर तो काफी हद तक निपटने की कोशिश की गई (इस संदर्भ में कई कार्यक्रम आये, जैसे – राजस्थान में 'लहर' कार्यक्रम) परंतु उच्च प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा में ऐसी कोई खास प्रगति नहीं देखी जा सकी है।

सरकारी विद्‌यालयों की तरह निजी विद्‌यालयों की संस्कृति ने भी शिक्षा के बोझ को बढ़ाने में बहुत मदद की है। विभिन्न प्रकार की पाठ्यपुस्तकें, उत्तरपुस्तिकाएँ, अभ्यास–पुस्तिकाओं ने भौतिक व नासमझी के बोझ को बढ़ाया है। साथ ही विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का बच्चों पर दबाव बनाने से भी बोझ की संस्कृति बढ़ी है। इसके साथ ही माता–पिता व संरक्षकों की भूमिका पर भी बोझ को बढ़ाने का आरोप लगता रहता है, क्योंकि वह अपने बच्चों पर जबरदस्ती गतिविधियाँ (नृत्य कक्षाएँ, स्विमिंग कक्षाएँ, विषयवार निजी कोचिंग आदि) करवाने पर दबाव बनाते हैं। ऐसी गतिविधियों को रोके जाने की आवश्यकता है, जो बच्चे स्वयं अपनी पसंदानुसार नहीं करना चाहते। अतः यह बच्चों पर छोड़ दिया जाए कि वह कौन सी गतिविधियाँ करें अथवा कौन सी गतिविधियाँ नहीं करें?

इन सभी कारणों से विद्‌यालय की भूमिका तो शिक्षा के बोझ को बढ़ाने में प्रबल होती दिखती ही है, परंतु इसी संदर्भ में माता–पिता व संरक्षकों की भूमिका को भी जाँचने की आवश्यकता है। जो विद्‌यालय शिक्षा के बोझ की संस्कृति को कम करने हेतु गृहकार्य नहीं देते हैं, माता–पिता व संरक्षक उस विद्‌यालय को अच्छा नहीं मानते हैं। वह अपने बच्चों को ऐसे विद्‌यालयों से निकाल कर किसी ऐसे विद्‌यालय में अपने बच्चों को प्रवेश दिलाते हैं जो विद्‌यार्थी को गृहकार्य के रूप में अध्ययन (पढ़ने) करने हेतु बहुत सारा कार्य देते हैं, वह चाहते हैं कि उनके बच्चे विद्‌यालय से वापस घर आने के पश्चात भी सिर्फ अध्ययन करें। माता–पिता व संरक्षकों का समाजीकरण ही इस रूप में हुआ है, जिससे बच्चे को जीवन में अच्छा करने वाले व्यक्ति के रूप में प्राथमिक शैक्षिक स्तर से ही तैयार किया जाए। इसीलिए वह बच्चों को ऐसे विद्‌यालयों में नामांकित करवाते हैं जो अनवरत सिखाने का कार्य करने हेतु स्वयं प्रसारित करते हैं, बोझ की संस्कृति को बढ़ाते हैं और बच्चे को पसंद न आने वाली गतिविधियों अथवा अनावश्यक गतिविधियों को भी प्रत्येक से करवाते हैं। इस प्रकार पाठ्यक्रम को पूरा करवाने हेतु और अच्छे अंक प्राप्त करने के लिए निजी कोचिंग की संस्कृति जो वर्तमान में काफी प्रसारित हो चुकी है, उसको रोकने की आवश्यकता है। प्रो. यशपाल यह मानते थे कि एक बोझमुक्त शिक्षा व्यवस्था वही हो सकती है, जिसमें निजी कोचिंगों के लिए कोई जगह न हो। पाठ्यक्रम पूरा करने की जो आवश्यकताएँ व उम्मीदें इन निजी कोचिंगों से रखी जाती है उसे रोकने की आवश्यकता है। इस दिशा की ओर सरकार, विद्‌यालय और माता–पिता व संरक्षकों को सोचने की आवश्यकता है। शायद ऐसे माता–पिता, संरक्षक व विद्‌यालय यह याद नहीं रखते कि हर किसी की अपनी क्षमता व उसी के अनुरूप आवश्यकताएँ हैं, इसीलिए बच्चों को स्वतंत्र छोड़ देने की जरूरत है न कि उन पर पाठ्यक्रम पूरा करने के लिए निजी कोचिंगों व विभिन्न गैर पसंदीय गतिविधियों द्‌वारा बोझ बढ़ाने की।

यह सोचने का विषय है कि सरकार द्‌वारा राष्ट्रीय पाठ्यचर्याओं तथा अन्य प्रयासों से भी शिक्षा के बोझ की समस्या अभी तक नहीं सुलझी है परंतु प्रश्न सभी के लिए सोचने का यह है कि इस बोझ के लिए जिम्मेवार कौन रहा? क्या वह बच्चे, जो सीखना नहीं चाहते या वह शिक्षक, पाठ्यचर्या, माता–पिता व संरक्षक अथवा विद्‌यालय जो उन्हें अत्यधिक सिखाना चाहते हैं? क्यों यह बोझ आज तक विद्‌यमान है? क्योंकि जब इन प्रश्न का जवाब मिल जाएगा तब ही शिक्षा के बोझ को खत्म करने की जिम्मेवारी तय की जा सकेगी और इस शैक्षिक बोझ की संस्कृति से मुक्ति की ओर बढ़ा जा सकता है।

उपर्युक्त सभी प्रश्न पर विचार करना अनिवार्य है इसलिए विद्‌यालय व सरकार से लेकर माता–पिता तक सभी अपनी जिम्मेदारी इस संदर्भ में अच्छे से निभाएँ तभी बच्चे आनंददायक शिक्षा का अनुभव ले पाएँगे, जब सीखने का

बोझ के साथ–साथ भौतिक बोझ की समस्या को खत्म करने संबंधी सभी समाधान ढूँढे जाएँ और उन समाधानों को गंभीरता से अपना लिया जाए। जब ऐसा होगा तो यह बच्चों के स्वास्थ्य, शारीरिक व मानसिक विकास के लिए भी अत्यंत अच्छा होगा। एक बोझमुक्त शिक्षा को प्राप्त करने का आनंद बच्चे अच्छे से प्राप्त कर पाएँगे।

दत्त कार्य

1. मान लिजिए कि आप एक शिक्षा आयोग के सदस्य हैं। 4–5 विद्यार्थी शिक्षकों के समूह में मिल कर विचार करते हुए अपने जिले में शिक्षक शिक्षा को बेहतर बनाने के लिए एक नीति प्रस्तावित करें।
2. विद्यार्थियों को नागरिक के रूप में तैयार करने के लिए पाठ्यपुस्तकों में क्या–क्या सामग्री होती है, यह पता करने के लिए माध्यमिक विद्यालय की कुछ पाठ्यपुस्तकों का अध्ययन करें और पुस्तक समीक्षा के रूप में उसे लिखें।
3. अपनी कक्षा को दो समूहों में बाँटे और दोनों पक्ष बहस करें कि शिक्षा को संविधान की संघ सूची में होना चाहिए या राज्य सूची में?
4. "शिक्षा को संविधान की संघ सूची में होना चाहिए।" – इस कथन के पक्ष अथवा विपक्ष में लगभग 300 शब्दों में एक निबंध लिखिए।
5. कोठारी आयोग की सिफारिशों का अध्ययन करते हुए उनकी समीक्षा करें।
6. समान विद्यालय प्रणाली को आपके जिले में लागू करने के लिए शासन, विद्यालय और समुदाय के स्तर पर क्या–क्या करना होगा इसके सुझाव दें। जानकारी एकत्र करने के लिए कृपया राजकीय कर्मचारियों, शिक्षकों व समुदाय के लोगों से मिलें और संवाद करें।
7. राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मुख्य बिंदुओं को पावर पाइंट प्रेजेंटेशन (पी.पी.टी.) अथवा भित्ती पत्रिका के माध्यम से प्रस्तुत करें।
8. बुनियादी शिक्षा नीति को आगे न बढ़ाते हुए समाप्त हो जाने दिया गया। यह आपके खयाल से सही है या नहीं, कारण सहित बताएँ।
9. शिक्षा के उद्देश्यों विषय पर कक्षा में समूह चर्चा करें और उनकी एक सूची बनाकर अपनी कक्षा के अन्दर या बाहर उसे प्रदर्शित करें।
10. बी.एस.टी.सी. (डी.एल.एड.) में अध्यापन करने वाले किसी शिक्षक, शिक्षिका का साक्षात्कार लें और पता करें कि उन्होंने जब शिक्षक के रूप में व्यावसायिक प्रशिक्षण (बी.एड. अथवा एम.एड.) प्राप्त किया तो उसका स्वरूप क्या था, कौन से विषय थे, मूल्यांकन किस तरह से होता था आदि।

इकाई–5
भारतीय शिक्षा व्यवस्था की उभरती तस्वीर – 1992 के बाद

- परिचय
- उद्देश्य
- विषयवस्तु

5.1 अंतरराष्ट्रीय शैक्षणिक पहल

5.2. भारत में शैक्षणिक पहल पहला चरण (सन 1991–2001 तक)

- 5.2.1 जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम
- 5.2.2 वैकल्पिक शिक्षा व्यवस्था और पैरा शिक्षक

5.3 भारत में शैक्षणिक पहल–दूसरा चरण (सन 2002 – अब तक)

- 5.3.1 शिक्षा का अधिकार कानून की पृष्ठभूमि एवं विवेचना
- 5.3.2 सर्व शिक्षा अभियान
- 5.3.3 राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान

5.4 भारतीय शिक्षा में उभरते मुद्दे

- 5.4.1 शिक्षा का निजीकरण
- 5.4.2 विद्यालयी व्यवस्था में जवाबदेही
- 5.4.3 शिक्षकों की बदलती परिस्थितियाँ
- 5.5.4 शिक्षा में समुदाय की भूमिका

- समेकन
- दत्त कार्य

इकाई 5

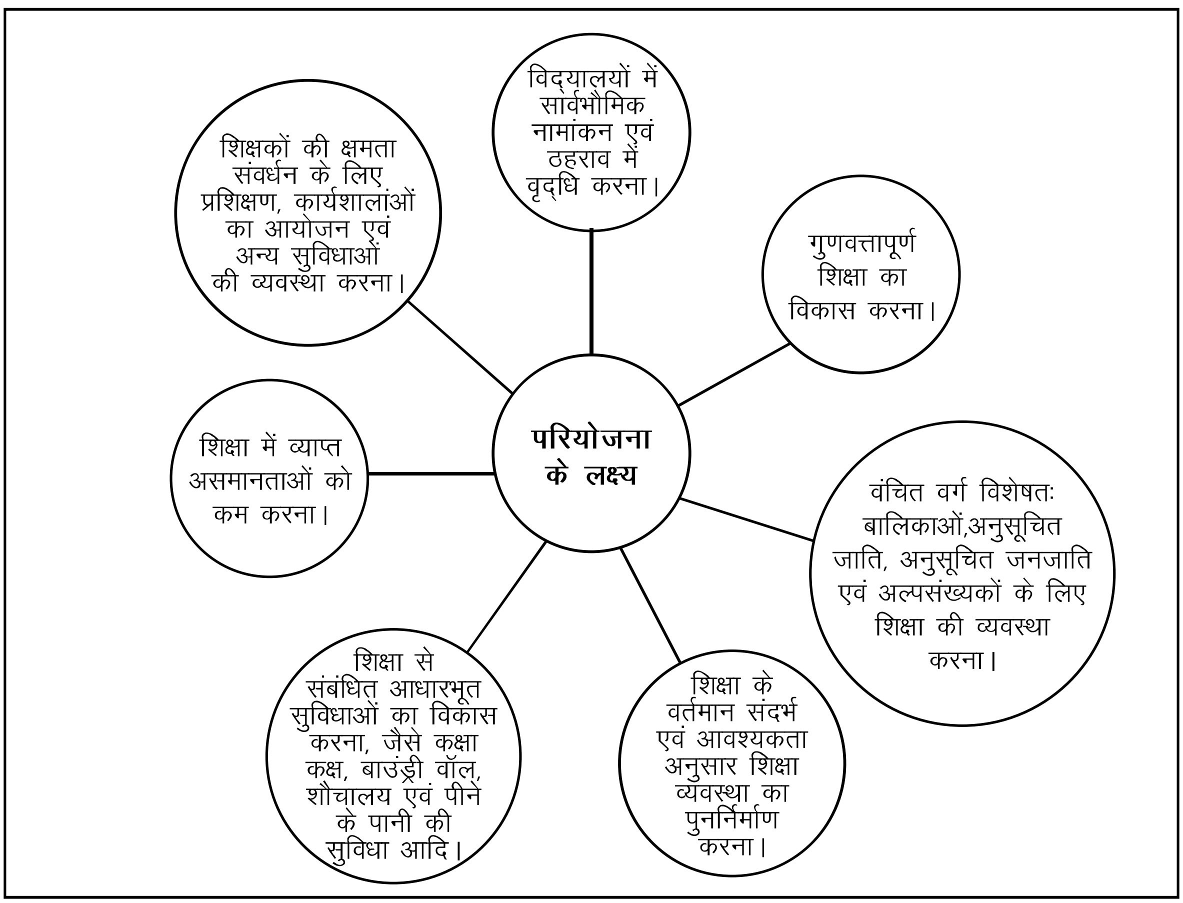
भारतीय शिक्षा व्यवस्था की उभरती तस्वीर – 1992 के बाद

परिचय

पिछले इकाई में हमने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं इसकी कार्य योजना (Programme of Action) 1992 के बारे में अध्ययन कर चुके हैं। इसी समय में विश्वभर में बदलती आर्थिक परिस्थिति की दशा में गरीबों, महिलाओं तथा अन्य हाशिए के समुदायों तक शिक्षा पहुँचाने को लेकर चिंता होने लगी। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वर्ष 1990 में हुए जोम्तियन (Jomtien) सम्मेलन में 150 से अधिक देशों के राजनेताओं और शिक्षा से जुड़े लोगों ने सबके लिए शिक्षा, शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार तथा इसकी सार्वजनिक सुलभता पर बल दिया। इस कार्य के लिए विकासशील देशों को आसान दरों पर ऋण उपलब्ध कराने की व्यवस्था भी की गई।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं जोम्तियन सम्मेलन की पृष्ठभूमि में भारत सरकार ने शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े राज्यों के लिए प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हेतु जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम, लोक जुंबिश परियोजना, इत्यादि प्रमुख हैं। इसी बीच भारत में शिक्षा को संवैधानिक बुनियादी अधिकार के रूप स्थापित किया गया और सन 2009 में 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार कानून पारित हुआ, जिसकी विवेचना इस इकाई के अंतर्गत की गई है।

इस अति महत्त्वपूर्ण कानून को लागू करने की उद्देश्य से सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान चलाए जा रहे हैं। इन सभी कार्यक्रमों के लक्ष्य को निम्नांकित प्रदर्श में दिखाया गया है।



शिक्षा के विकास के क्रम में उभरते मुद्दों एवं चुनौतियों को भी इस इकाई में सम्मिलित किया गया है। इसमें विशेषतः शिक्षा का निजीकरण, विद्यालयी व्यवस्था में जवाबदेही, शिक्षकों की बदलती परिस्थितियों एवं समुदाय की भूमिका पर भी प्रकाश डाला गया है तथा इनकी समीक्षा भी प्रस्तुत की गई है।

उद्देश्य

- 1992 के बाद संचालित विभिन्न परियोजनाओं एवं कार्यक्रमों के ऐतिहासिक संदर्भ की समझ विकसित करना।
- इन परियोजनाओं एवं कार्यक्रमों में गुणवत्ता की प्रक्रिया, कार्य संस्कृति एवं उपलब्धियों की समीक्षा करना।
- निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के महत्त्वपूर्ण बिंदुओं को समझना एवं विद्यालयी व्यवस्था में जवाबदेही को समझना एवं इसकी समीक्षा करना।
- शिक्षा के निजीकरण के विभिन्न मुद्दों को समझना एवं उनकी समीक्षा करना।
- शिक्षा के क्षेत्र में समुदाय की भूमिका को समझना।

5.1 अंतरराष्ट्रीय शैक्षणिक पहल

अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य :– 1990 तक आते–आते अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विश्व में शिक्षा की उपलब्धता पर काफी चिंतन–मनन होने लगा और शिक्षा के सार्वजनीकीकरण को लक्ष्य मानकर यह समझा गया, कि विश्व में, खासकर विकासशील देशों में महिलाओं व हाशियाकृत समूहों और विशेष योग्य जन तक शिक्षा की पहुँच नहीं हो पाई है। यह वही समय था जब वैश्वीकरण का नया दौर शुरू हो रहा था। इस प्रक्रिया को दिशा देने वाली अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ जैसे – विश्व बैंक ने माना कि इसके तहत सरकारों की कल्याणकारी योजनाओं को बंद करना होगा और हाशिए के समुदायों को अपनी आजीविका से हाथ धोना पड़ सकता है। यह आशंका थी कि इन बातों का सबसे विपरीत प्रभाव विकासशील देशों के ऐसे लोगों पर ही पड़ेगा। यह माना गया कि इस तरह प्रभावित लोगों के लिए सुरक्षा कवच के रूप में शिक्षा ज़रूरी हो, ताकि वे किसी अन्य तरह से अपनी आजीविका खोज पाए। ऐसी परिस्थितियों में 1990 में विश्व बैंक और संयुक्त राष्ट्र संगठन की पहल पर थाईलैंड देश के जोम्तियन शहर में सम्मेलन हुआ।

जोम्तियन सम्मेलन और 'सभी के लिए शिक्षा' घोषणा :– जोम्तियन सम्मेलन में 155 देशों एवं 150 अन्य संगठनों ने भागीदारी की। सम्मेलन में यह चिंता जाहिर की गई कि पूरे विश्व भर में महिलाओं व हाशिए के समुदाय शिक्षा से वंचित रहे हैं।

- 6 करोड़ बालिकाओं सहित 10 करोड़ से अधिक बच्चों को प्राथमिक शिक्षा प्राप्त नहीं हो सकी थी। जो बच्चे विद्यालय जा रहे थे उनमें से बहुत बच्चे कुछ भी सार्थक सीख नहीं पा रहे थे।
- विश्व के एक तिहाई से भी अधिक वयस्क, जिनमें दो तिहाई महिलाएँ थीं, निरक्षर थे। ना ही वे ऐसे कौशलों एवं तकनीकी का कोई ज्ञान रखते थे जिससे वे बेहतर जीवन अवसर पा सकें।

सम्मेलन में बालिका शिक्षा पर गंभीर चिंता जताई गई। इस सम्मेलन में शिक्षा के सार्वजनिकीकरण के लिए एक संकल्प लिया गया, जिसे 'सभी के लिए शिक्षा' विश्व घोषणा के रूप में जाना जाता है। यह माना गया कि विश्वभर में युद्ध स्तर पर कार्यक्रम प्रारंभ करना जरूरी है और इसके लिए सारे देश और अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ मिलजुलकर प्रयास करेंगे। गरीब व विकासशील देशों को वित्तीय, तकनीकी और वैचारिक सहायता का आश्वासन भी दिया गया।

जोम्तियन सम्मेलन में एक समयबद्ध कार्यक्रम बनाया गया जिसके अंतर्गत निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किए गए –

- सन 2000 तक सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा की प्राप्ति।
- सन 1990 की तुलना में प्रौढ़ निरक्षरता दर को सन् 2000 तक लगभग आधा करना, जिसमें विशेष ज़ोर महिला

साक्षरता पर हो।

जोम्तियन सम्मेलन में बुनियादी शिक्षा तक पहुँच से बढ़कर शैक्षणिक ज़रूरतों और वास्तव में सीखने पर जोर दिया गया। इस अधिगम में ज्ञान, कौशल, मूल्य एवं अभिवृत्ति का समावेश हो, ताकि शिक्षा लोगों के जीविकोपार्जन और गुणवत्तापूर्ण जीवन व्यतीत करने में सहायक हो सके। सार्वजनिक शिक्षा का मतलब केवल बच्चों को स्कूल में दाखिल कराना मात्र नहीं था। आशय एक ऐसी शिक्षा से था, जो लोगों के जीवन की जरूरतों को पूरा करे।

अनेक राष्ट्रों ने इस सम्मेलन के उद्देश्यों को अपनी नीति में सम्मिलित किया एवं अपने शैक्षिक विकास हेतु अंतरराष्ट्रीय सहायता भी प्राप्त की। यह सहायता विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जो मूलतः विश्व स्तर पर देशों को ऋण देने तथा मुद्रा संबंधित समस्याओं के निराकरण के लिए बने थे, से विकासशील देशों को ऋण के रूप में प्राप्त हुआ। चूँकि यह ऋण कम ब्याज दर पर था, उसके साथ कई कठोर नियम थे जो उन देशों के नीतियों पर प्रभाव डालने वाले थे। इनमें सरकारी खर्च की कटौती, उच्च शिक्षा का निजीकरण और विदेशी माल के आयात पर रोक हटाना आदि शामिल था। इनके बारे में आपने तीसरी इकाई में विस्तार से पढ़ा होगा।

भारत ने भी शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए नई योजनाएँ बनाईं और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के अलावा कई विकसित देशों से भी वित्तीय और तकनीकी सहायता प्राप्त की। इस सहायता की मदद से कई महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम बनाए गए।

लेकिन वर्ष 2000 में जब शिक्षा की विश्व घोषणा के कार्यों की समीक्षा के लिए एक और अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन सेनेगल के डकार नामक शहर में हुआ तो जाहिर था कि जोम्तियन के लक्ष्य से विश्व मीलों दूर था। अब भी 11 करोड़ बच्चे प्राथमिक शिक्षा से वंचित थे और 87 करोड़ वयस्क निरक्षर थे। अधिकांश देशों ने केवल प्राथमिक विद्यालय का जाल फैलाने तथा नामांकन बढ़ाने पर जोर दिया किंतु शिक्षण और अधिगम पर कम ध्यान दिया।

डकार सम्मेलन में 181 राष्ट्रों ने एक रूपरेखा अपनायी जिसके 6 प्रमुख लक्ष्य थे। इनमें से प्रमुख थेः

शिशु देखभाल और शिक्षा का विस्तार।

2015 तक सभी बच्चों को विशेषकर बालिकाओं, अल्पसंख्यकों, हाशिए के समूहों के बच्चों को निःशुल्क, अनिवार्य और उच्च गुणवत्ता वाला शिक्षा प्राप्त हो।

2005 तक प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर बालक व बालिका शिक्षा के बीच की विषमताओं और 2015 तक हर स्तर की शिक्षा में जेंडर विषमताओं को दूर करना ताकि शिक्षा तक पहुँच, अधिगम, और उपलब्धि में कोई अंतर न हो।

गतिविधि

- आज डकार सम्मेलन के द्वारा तय लक्ष्यों तक हमारा राज्य किस हद तक पहुँच पाया है? समीक्षा कीजिए।
- क्या यह योजना में कमी के कारण है या वित्तीय कमी या संकल्प की कमी के कारण है?
- अगर किसी को इसके लिए जिम्मेदार ठहराना है तो आप किसे ठहराएंगे?

5.2. भारत में शैक्षणिक पहल – प्रथम चरण 1991–2001

आप जानते हैं कि 1990 के दशक से भारत सरकार की नीतियों में अनेक प्रकार के बदलाव हुए, इनमें से कुछ शिक्षा के विषय में भी थे। उस दशक में भारत एक कठिन वित्तीय परिस्थिति से गुज़र रहा था और उससे उभरने के लिए हमें अंतरराष्ट्रीय ऋण और अनुदानों की आवश्यकता थी। जोम्तियन सम्मेलन के बाद शिक्षा के लिए अंतरराष्ट्रीय सहायता मिलने लगी। भारत भी इनका लाभ उठाते हुए योजनाएँ बनाने लगा। तब भी यह विवाद का मुद्दा था कि क्या शिक्षा के संवेदनशील क्षेत्र में विदेशी ऋण और हस्तक्षेप स्वीकार करना उचित है? अगर ऋण लेना है तो किन शर्तों पर इन बातों पर गहन चिंतन और विवाद चला। इनके आधार पर नई नीतियाँ बनीं और कार्यक्रम बनें। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण थे ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम और राजस्थान में लोक जुंबिश परियोजना और बिहार में बिहार

शिक्षा परियोजना। इन सब कार्यक्रमों में स्थानीय ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए योजनाएँ बनाई गईं और निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ठोस कार्यनीतियाँ तैयार की गई। अब हम ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम की चर्चा करेंगे।

प्रदर्श 5.2 : भारत के नक्शे में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम का प्रथम चरण में विस्तार की स्थिति



5.2.1 ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम

प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के राष्ट्रीय संकल्प को पूर्ण करने हेतु मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी.पी.ई.पी.) की परिकल्पना 1993 में की। लोक जुम्बिश एवं शिक्षाक्रमी (राजस्थान), बिहार शिक्षा परियोजना (बिहार) जैसे अभियानों ने यह दिखा दिया था कि प्रयास करने पर प्राथमिक शिक्षा का न केवल व्यापक प्रसार हो सकता है, बल्कि शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार और उसमें समुदाय की भागीदारी भी सम्भव है। इस तरह के प्रयासों से प्रेरणा लेकर प्राथमिक शिक्षा को जन–जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम की परिकल्पना की गई। अपने आप में यह योजना न केवल चुनौतिपूर्ण थी वरन् शैक्षिक प्रबंधन पर भी समग्र दृष्टि से विचार करने वाली एक नई पहल थी।

ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम को आठवीं पंचवर्षीय योजना के तहत 1994 में भारत के सात राज्यों, असम, हरियाणा, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और तमिलनाडु के 42 ज़िलों में प्रारंभ किया गया। आरम्भ में यह कार्यक्रम इन राज्यों के उन ज़िलों में लागू किया गया जहाँ महिला साक्षरता दर राष्ट्रीय औसत से बहुत कम थी। इसे ऐसे ज़िलों में भी लागू किया गया जिनमें सम्पूर्ण साक्षरता कार्यक्रम प्रभावी ढंग से सम्पन्न किया गया। ऐसे ज़िलों में साक्षरता अभियान के कारण आम लोगों में प्राथमिक शिक्षा के प्रति जागरूकता और माँग बढ़ी।

इस कार्यक्रम का सारा ध्यान कक्षा एक से पाँच तक था जो प्राथमिक स्तर की कक्षाएँ थीं। यह एक तरह से उस संवैधानिक उद्देश्य से अभी भी दूर था जिसमें कम से कम आठवीं तक की शिक्षा को अनिवार्य माना गया था।

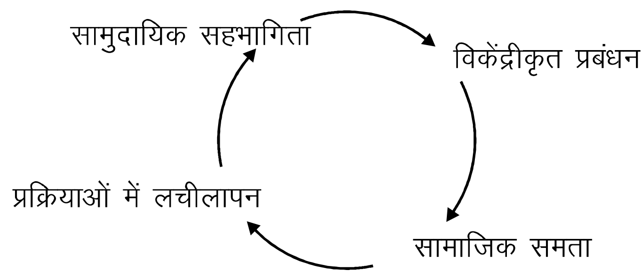
प्रश्न

ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम ऐसे ज़िलों में क्यों प्रारंभ किया गया जहाँ महिला साक्षरता सबसे कम थी?

इस कार्यक्रम के लाभकारी परिणामों से उत्साहित होकर भारत सरकार ने देश के अन्य राज्यों को सम्मिलित करने के लिए 1996–97 में इसका विस्तार किया। इसका तीसरा चरण सन् 2002 में सम्पन्न हुआ।

ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम एक दीर्घकालिक बहु आयामी कार्यक्रम था। इसके नियोजन में निम्नलिखित अवधारणाओं को आधार बनाया गया था –

प्रदर्श :– 5.3 जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के नियोजन की चक्रीय प्रक्रिया के तत्व



कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य

ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य निम्नवत् थे –

1. 6–14 आयु वर्ग के सभी बालक–बालिकाओं के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना।
2. विद्यालयों में बालक–बालिकाओं का अधिकतम नामांकन व ठहराव सुनिश्चित करना।
3. शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करना।
4. शिक्षण संस्थाओं एवं शिक्षा तंत्र को सुदृढ़ करना।

इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु कार्यक्रम के निम्नलिखित लक्ष्यों को निर्धारित किया गया था –

1. सभी बालक–बालिकाओं को औपचारिक या अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा देना।
2. बालक–बालिकाओं तथा समाज के वंचित वर्गों के बीच नामांकन, ठहराव तथा उपलब्धि के क्षेत्र में अंतर 5 प्रतिशत तक कम करना।
3. बालक–बालिकाओं के विद्यालय छोड़ने की दर को 10 प्रतिशत से कम करना।
4. बालक–बालिकाओं के उपलब्धि स्तर में 25 प्रतिशत तक वृद्धि करना।
5. 'प्रभावी प्रशिक्षण' के माध्यम से शिक्षकों का संबलनीकरण करना।
6. प्राथमिक शिक्षा के सभी क्षेत्रों में समाज की भागीदारी सुनिश्चित करना।
7. बाल केंद्रित एवं गतिविधि आधारित शिक्षण विधा को लागू करना।
8. पर्यवेक्षण एवं शैक्षिक संबलन की प्रभावी व्यवस्था।

गतिविधि

1. बालिकाओं और वंचित वर्गों के बीच नामांकन और ठहराव दर अपेक्षाकृत कम था। कक्षा में चर्चा करें कि इसके क्या–क्या कारण रहे होंगे?
2. इसके समाधान के लिए क्या–क्या किया जाना चाहिए?

ज़िला स्तरीय योजना

इस कार्यक्रम में यह माना गया था कि हर ज़िला अपने ज़रूरतों को पहचानकर विशिष्ठ योजनाएँ बनाएँगे जो उस ज़िले की विशेष समस्याओं के समाधान के लिए होंगी। इसके लिए पहले संबधित ज़िलों का विधिवत अध्ययन किया गया और उसकी ज़रूरतों की पहचान की गई। उदाहरण के लिए, जब द्वितीय चरण में राजस्थान में यह कार्यक्रम लागू किया गया, तब जयपुर की विकास शोध संस्थान द्वारा ये अध्ययन किए गए। ये अध्ययन आज भी अपने प्रामाणिकता व प्रासंगिकता के लिए प्रसिद्ध हैं। शोध बताते हैं कि जिला स्तरीय योजना के प्रभावी क्रियान्वन

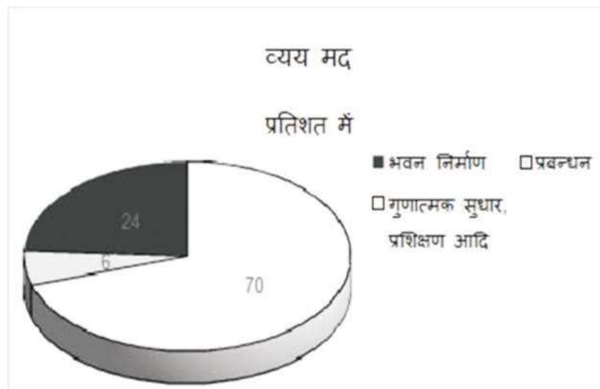
स्थानीय विशेषज्ञों का योगदान होने से सफल होने के अवसर बढ़ जाते।

ज़िला स्तरीय योजनाओं को जोड़ कर राज्यस्तरीय योजनाएँ बनीं और इनकी समीक्षा एक केंद्रीय दल, जिसमें विदेशी और देशी विशेषज्ञ सम्मिलित थे, द्वारा की गई। कई राज्यों के संदर्भ में यह भी पाया गया कि वे अधिकतम वित्तीय सहायता प्राप्त करने के लिए कई गैर ज़रूरी काम शामिल किए गए या ऐसे कामों का प्रस्ताव दिया जो ज़िलों की योजनाओं में नहीं थे।

वित्तीय प्रबंधन

इस योजना के लिए भारत सरकार द्वारा विश्व बैंक की ओर से प्राप्त निम्न ब्याज दर पर ऋण और विभिन्न देशों से प्राप्त अनुदान राज्य स्तरीय समितियों को दिया जाता था। विश्व बैंक का ऋण, जो 1994 से 2002 तक कुल 2,286 करोड रूपए था, को पैतीस वर्षों में तीन प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज सहित लौटाना था। योजना के लिए स्वीकृत राशि का 15 प्रतिशत हिस्सा राज्य सरकार का होता था। राज्यों से अपेक्षा थी कि वे शिक्षा पर अपने सामान्य खर्च पूर्ववत जारी रखेंगे।

प्रदर्श 5.4 : शाला सुधार कार्यक्रम के व्यय मद का पाई चार्ट



ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के प्रथम चरण हेतु कुल 430.52 करोड़ रूपए का प्रावधान था। इस प्रकार प्रति ज़िला औसत राशि लगभग 40 करोड़ रूपए होती थी। इस राशि को निम्नानुसार मदों में खर्च किया जाना था –

यह राशि राज्य सरकार को नहीं सौंपा गया, बल्कि इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए बनी एक स्वतंत्र पंजीकृत संस्था को सौपी गई। इसके पीछे यह विचार था कि अगर राशि राज्य सरकार को दी जाती है तो उसका खर्च सामान्य राजकीय नियमों में जकड़ जाएगा या फिर दूसरे मदों में खर्च हो जाएगा। स्वतंत्र संस्था को यह ज़िम्मेदारी दिए जाने से कार्यक्रम के सुचारू रूप से चलने की आशा बनी, लेकिन इसका एक दूरगामी प्रभाव यह हुआ कि शिक्षा विभाग का काम दो समानांतर हिस्सों में बँट गया। परिणामस्वरूप इस पूरे काम से विभाग को अनुभव प्राप्त करने और काम के तरीकों में सुधार लाने का पर्याप्त अवसर नहीं मिल पाया।

जैसे कि आप ऊपर दिए गए चार्ट में देख सकते हैं इस कार्यक्रम के तहत नए विद्यालयों की स्थापना, और उनके लिए भवन निर्माण एक प्राथमिकता थी। यह माना गया कि इस कार्यक्रम के कारण नामांकन में जो वृद्धि होगी उसके लिए ये नए भवन आवश्यक होंगे लेकिन सबसे अधिक अंश तो शिक्षण में गुणात्मक सुधार के लिए रखा गया था।

सामुदायिक भागीदारी

डी.पी.ई.पी. का एक महत्त्वपूर्ण पहलू समुदाय को विद्यालय के साथ जोड़ना था। यह माना गया था कि विद्यालय में बच्चों के प्रवेश और नियमित उपस्थिति को सुनिश्चित करने तथा विद्यालय में शिक्षकों के कार्य की निगरानी हेतु समुदाय की भागीदारी महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए अनेक कदम उठाए गए। 'विद्यालय प्रबंधन समिति' और 'भवन निर्माण समिति' समुदाय की भागीदारी सुनिश्चित करने वाले मंच थे। विद्यालय प्रबंधन समिति नामांकन और ठहराव से संबंधित गतिविधियों में भाग लेती थी। भवन निर्माण समितियों के तहत भवन रहित विद्यालयों के लिए

प्रदर्श 5.5 : विद्यालय प्रबंध समिति के माध्यम से जन सहयोग द्वारा शाला नियोजन में भागीदारी



भवन, अतिरिक्त कक्षा कक्ष, मरम्मत, शौचालय, पीने के पानी का प्रबंध आदि समुदाय की देखरेख में होने लगा। सामुदायिक भागीदारी के माध्यम से ही बाल मेले, कला जत्थे, महिला बैठकों आदि का आयोजन किया गया।

डी.पी.ई.पी. की समीक्षाओं से पता चलता है कि उपर्युक्त समितियों में समुदाय के कौन लोग भाग लेंगे इस पर कोई स्पष्टता नहीं थी। आम तौर पर वे न तो चुने जाते थे न ही वे छात्रों के अभिभावकों में से थे। वे प्रायः प्रधानाध्यापक या किसी अन्य द्वारा मनोनीत थे। इस कारण विद्यालय प्रबन्धन में छात्रों के अभिभावकों की भागीदारी सीमित ही रहा। इन समस्याओं के बावजूद इस कार्यक्रम ने यह स्थापित किया कि शैक्षणिक कार्यक्रमों में अभिभावकों व समुदाय के अन्य लोगों की भागीदारी प्रमुख है।

क्रियान्वयन का ढाँचा

डी.पी.ई.पी. के तहत राज्य स्तर पर एक नया ढाँचा या पंजीकृत समिति गठित की गई। इस तरह का एक विशेष ढाँचा क्रियान्वयन के लिए भी कई स्तरों पर बनाया गया। ज़िला स्तर पर कलेक्टर की अध्यक्षता में परियोजना समिति बनी जिसमें विभिन्न विभागों के अधिकारी सदस्य थे। यह समिति इसलिए बनी ताकि क्रियान्वयन में आने वाली समस्याओं का समाधान त्वरित किया जा सके। विकास खंड और संकुल स्तर पर स्रोत केंद्र बनाए गए जहाँ शिक्षकों का प्रशिक्षण, मासिक समीक्षा बैठक आदि होती थी। इस प्रकार, पहले जो शिक्षक अपने–अपने विद्यालयों में अलग–थलग काम कर रहे थे अब वे न केवल एक दूसरे से जुड़ने लगे, बल्कि पूरे तंत्र के साथ उनका संपर्क बना और शैक्षिक मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

बाल केंद्रित पाठ्यचर्या

शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने के उद्देश्य से इस कार्यक्रम के तहत देश भर में बाल केंद्रित शिक्षण की लहर चली। इससे पहले शिक्षा में विषय शिक्षण पर अधिक ज़ोर था, जो बच्चों के मनोविज्ञान के अनुरूप नहीं था। इस कारण अधिकांश छात्र शिक्षण से विमुख हो जाते थे। अब यह प्रयास किया गया कि शिक्षण कार्य ऐसा हो जिससे बच्चों को आनन्द आए और शिक्षण कार्य खेल, गीत आदि द्वारा गतिविधि आधारित हो। यह भी आग्रह था कि शिक्षक बच्चों से घुलमिलकर तथा दोस्ती करके सिखाएँ। विषय विशेषज्ञों, स्वयंसेवी संगठन के लोगों तथा शिक्षकों के भागीदारी से नई पाठ्यपुस्तकें बनीं और सहायक शिक्षण सामग्री बनीं। इस कार्यक्रम की एक बहुत बड़ी उपलब्धि यह रही कि देशभर में बाल केंद्रित शिक्षा, गतिविधि आधारित शिक्षा और आनंददायी शिक्षा का विचार फैला।

प्रशिक्षण

ज़ि.प्रा.शि.का. (D.P.E.P.)के तहत शिक्षकों के लिए अनेक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए गए। इन प्रशिक्षणों का उद्देश्य बाल केंद्रित अध्यापन कला अपनाने के लिए शिक्षक को प्रेरित करना एवं अध्यापकों का व्यक्तित्व विकास करना था ताकि वे विद्यार्थियों के साथ मित्र व पथप्रदर्शक की भूमिका निभा सकें। साथ ही शिक्षकों को आपस में विचार–विमर्श करने, अपने अनुभव आपस में बाँटने तथा आगे की योजना बनाने के लिए समय–समय पर बैठकें आयोजित की गईं।

अध्यापकों के अलावा संकुल संदर्भ केंद्र के सहयोगियों, आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं, आँगनवाड़ी सहायकों तथा विद्यालय प्रबंधन समिति व भवन निर्माण समिति के सदस्यों को भी प्रशिक्षण दिया गया।

भारत सरकार पर विश्व बैंक का दबाव था कि वह राजकीय खर्च कम करें, लेकिन नब्बे के दशक में सकल घरेलू उत्पादन के अनुपात में शिक्षा पर राजकीय खर्च क्रमशः घटता गया। परियोजनाओं पर जो खर्च होता था, वह सीमित समय के लिए उपलब्ध था, आमतौर पर पाँच या दस वर्षों के लिए। खर्च कम करने का एक तरीका था शिक्षकों की सेवा शर्तों में परिवर्तन। पहले शिक्षक अन्य शासकीय कर्मचारियों के तरह पूर्णकालिक थे और उन्हें नौकरी की सुरक्षा तथा अन्य सुविधाएँ उपलब्ध थीं, लेकिन नब्बे के दशक से देश के कई राज्यों में इनकी जगह अस्थायी और अनियमित शिक्षक नियुक्त होने लगे, जिन्हें अपेक्षाकृत कम मानदेय मिलता था। इन्हें कई नामों से पुकारा जाता था, जैसे, शिक्षाकर्मी, शिक्षामित्र, गुरूमित्र, संविदा शिक्षक, पैरा शिक्षक आदि। इनकी नियुक्ति सीमित समयावधि के लिए होती थी। कई विद्वानों का मानना है कि इससे शिक्षकों के व्यवसाय पर विपरीत असर पड़ा, लेकिन कुछ अन्य का मानना है कि इन आवश्यकता आधारित पहलों से सीखने–सीखाने की कारगर विधियाँ तथा अधिगम सामग्री का निर्माण हुआ।

ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम का राजस्थान में विस्तार

राजस्थान राज्य में भी प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम को एक साधन एवं प्रभावी व्यूहरचना के रूप में स्वीकार किया गया। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विश्व बैंक, भारत सरकार एवं राज्य सरकार की सहभागिता से ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम का शुभारंभ 2 अक्टूबर 1999 को किया गया।

राज्य में ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु राजस्थान प्राथमिक शिक्षा परिषद् का गठन किया गया। क्रियान्वयन के प्रथम चरण (1999 से 2004) में दस ज़िलों का चयन किया गया। इसके साथ ही द्वितीय चरण (2000 से 2005) में अन्य नौ ज़िलों में इसे प्रारंभ किया गया।

प्रथम चरण के ज़िले	द्वितीय चरण के ज़िले
अलवर, भीलवाड़ा, झालावाड, झुन्झुनू, कोटा, नागौर, सिरोही, श्रीगंगानगर, टोंक और सीकर।	भरतपुर, बूंदी, चुरू, दौसा, धौलपुर, हनुमानगढ़, जयपुर, करौली और सवाई माधोपुर।

इस प्रकार, राजस्थान के उन्नीस ज़िलों में ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम की क्रियान्विति की गई। राजस्थान के शेष ज़िलों में उस समय लोक जुंबिश परियोजना चल रही थी।

राजस्थान में कार्यक्रम का प्रबन्धन ढाँचा

कार्यक्रम की क्रियान्विति के लिए स्वशासी संस्था राजस्थान प्राथमिक शिक्षा परिषद् गठित कर उसके दो अंग बनाए गए – 'शासी परिषद्' एवं 'निष्पादक समिति'। नीतिगत निर्णय और समीक्षा का काम शासी परिषद का था जबकि योजना बनाना तथा क्रियान्वयन निष्पादक समिति का काम था। ज़िला स्तर पर भी यही दो अंग बनाए गए। राज्य एवं ज़िला स्तर की दोनों समितियों में स्वयंसेवी संस्था, शिक्षाविद् तथा जन प्रतिनिधियों को प्रतिनिधित्व दिया गया। 'ज़िला परियोजना समन्वयक' पर ज़िले में क्रियान्वयन की ज़िम्मेदारी दी गई। शिक्षकों के सशक्तिकरण के लिए पंचायत समिति स्तर पर शिक्षकों के सतत् प्रशिक्षण हेतु 'खंड संदर्भ केंद्र' की व्यवस्था की गई। विद्यालयों के प्रभावी परिवीक्षण एवं शैक्षिक संबलन हेतु प्रत्येक 8 कि.मी. के दायरे में एक 'संकुल संदर्भ केंद्र' को स्थापित किया गया जिसमें 10–15 विद्यालय रखे गए। विकेंद्रीकृत व्यवस्था के अंतर्गत गाँव का विद्यालय सबसे

प्रदर्श 5.6 : जिला प्राथमिक कार्यक्रम का चरणवार विवरण



छोटी इकाई माना गया, जिसमें विद्यालय प्रबंधन समिति का गठन किया गया। विद्यालय में नामांकन, ठहराव एवं गुणात्मक शिक्षा, प्रबंधन तथा निर्माण आदि विद्यालय प्रबंधन समिति के मुख्य कार्य निर्धारित किए गए।

(स्रोत – प्रगति प्रतिवेदन, वर्ष 1999–2000 प्रारंभिक शिक्षा, साक्षरता एवं सतत् शिक्षा, पंचायती राज विभाग, राजस्थान)

शैक्षिक गतिविधियाँ

ज़ि.प्रा.शि.का. के तहत गुणवत्ता सुधार के लिए राजस्थान में कुछ विशिष्ट प्रयास भी किए गए, उनमें से प्रमुख हैं–

नवीन पाठयक्रम का निर्माण – कक्षा 1 से 5 तक की पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा की गई। उसके आधार पर यह सिफारिश की गई कि पाठयपुस्तकों में अद्यतन ज्ञान का समावेश किया जाना चाहिए, नवीन आँकड़े और नवीन जीवन मूल्यों को स्थान दिया जाना चाहिए, विषयवस्तु को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाना चाहिए तथा पाठ्यपुस्तकों में अभ्यास कार्यों को और अधिक स्थान दिया जाना चाहिए। इसके साथ ही नई पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में बस्ते का बोझ कम करने की यशपाल समिति की सिफारिशों का भी ध्यान रखा गया और पंचायत राज प्रतिनिधि, समाज के विभिन्न वर्गों, स्वयंसेवी संस्थाएँ, अध्यापक, विद्यार्थी आदि के विचारों को ध्यान में रखते हुए एस.आई.आर.टी.ई. द्वारा कक्षा 1 से 5 तक के लिए 'जन सम्मत पाठ्यक्रम' का निर्माण किया गया। इस नए पाठ्यक्रम का प्रकाशन 2001 में हुआ।

नवीन पाठ्यपुस्तकों का निर्माण – नए पाठ्यक्रम के आधार पर नवीन पाठ्यपुस्तकों के निर्माण के लिए पुस्तक लेखकों, समीक्षकों एवं कलाकारों की एक कार्यशाला की गई। इसमें पाठ्यपुस्तक लेखन के सिद्धान्तों पर गहन चर्चा हुई। इसके बाद एस.आई.ई.आर.टी. द्वारा कक्षा 1 और 2 के लिए आनंद पोथी नाम की पुस्तकें तैयार करवाई गईं।

टी.एल.एम. कार्यपुस्तिका का विकास – अध्यापक अधिगम सामग्री (टीचिंग लर्निंग मटेरियल, टी.एल.एम.) के माध्यम से अध्यापन रोचक, आनंददाई और गुणात्मक बनाया जा सकता है। राजस्थान में ज़ि.प्रा.शि.का. के सभी 19 ज़िलों में प्रत्येक शिक्षक को 500 रूपए टी.एल.एम. अनुदान उपलब्ध कराया गया। इसमें अपेक्षा की गई कि शिक्षण अपनी रचनात्मकता का उपयोग करते हुए इस अनुदान की सहायता से ज़रूरत के मुताबिक स्थाई व अस्थाई टी.एल.एम. का निर्माण करेंगे। इसके लिए कुछ कार्यशालाएँ भी आयोजित की गई तथा शिवम् नामक पुस्तिका प्रकाशित की गई, जिसमें टी.एल.एम. निर्माण के बारे में जानकारी दी गई थीं।

कार्यक्रम की मुख्य उपलब्धियाँ

भारत में इस कार्यक्रम की मुख्य उपलब्धियाँ इस प्रकार रहीं –

1. इस कार्यक्रम के अंतर्गत 1 लाख 60 हजार नए विद्यालय खोले गए जिनमें 84 हजार वैकल्पिक शिक्षण केन्द्र सम्मिलित हैं। वैकल्पिक शिक्षण केंद्रों में 35 लाख विद्यार्थी शिक्षार्जन कर चुके हैं। इनके अलावा ब्रिज कोर्स द्वारा 2 लाख अतिरिक्त विद्यार्थियों को शिक्षा दी गई।
2. इस कार्यक्रम के अंतर्गत 52,758 विद्यालय भवनों, 58,604 अतिरिक्त कक्षा–कक्ष, 16,619 संसाधन केंद्र, 29,307 मरम्मत के कार्य, 64,592 शौचालय एवं 24,909 पीने के पानी की सुविधाओं (जैसे – हैंडपंप) का निर्माण किया गया। कार्यक्रम की एक महत्त्वपूर्ण सफलता पुराने विद्यालय भवनों की मरम्मत और नए विद्यालय भवनों का निर्माण है। इस कार्यक्रम ने लंबे समय से चली आ रही कमी को पूरा किया।
3. प्रथम चरण के राज्यों में सकल नामांकन अनुपात (Gross Enrolment Ratio) 95 प्रतिशत तक रहा। शेष चरणों में भी यह अनुपात 85 प्रतिशत से ज़्यादा रहा।
4. बालिकाओं के नामांकन में भी उल्लेखनीय सुधार रहा। प्रथम चरण के ज़िलों में नामांकन 49 प्रतिशत तक बढ़ा।

5. विशेष योग्य जनों का नामांकन 4,20,203 रहा, जो कि 76 प्रतिशत नामांकन था।
6. 1,77,000 शिक्षकों, जिनमें पैरा शिक्षक एवं शिक्षाकर्मी सम्मिलित थे, को नियुक्ति दी गई।
7. ब्लॉक स्तर पर शैक्षिणिक संबल एवं शिक्षक प्रशिक्षण सुविधाओं के लिए 29,725 क्लस्टर स्तरीय एवं 3,380 ब्लॉक स्तरीय संसाधन केंद्र बनाए गए।

(स्रोत – www.india.gov.in/sectors/education/education3.php#6)

प्रश्न

उपर्युक्त बिंदुओं के आधार पर आकलन करते हुए बताएँ कि आपकी राय में कार्यक्रम किस हद तक सफल रहा और उसमें क्या–क्या कमियाँ रहीं?

कार्यक्रम की समीक्षा

ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम द्वारा अर्जित उपलब्धियों के बावजूद सार्वभौमिक नामांकन एवं ठहराव का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो पाया। इसके अतिरिक्त प्राथमिक शिक्षा में गुणवत्ता का लक्ष्य भी अधूरा रहा। तत्पुरुष नौवीं पंचवर्षीय योजना में इस कार्यक्रम की समीक्षा कर इसे सर्व शिक्षा अभियान के नए रूप में प्रस्तुत किया गया।

5.2.2 वैकल्पिक शिक्षा व्यवस्था और पैरा शिक्षक

हमारे देश के अनेक बच्चों तक शिक्षा न पहुँचने के कई कारण रहे हैं। अँग्रेज़ों ने तो यह नीति अपनाई थी कि वे केवल एक सीमित समूह को शिक्षित करेंगे और बाकी लोगों की शिक्षा पर राजकीय व्यय नहीं किया जा सकता है। स्वतंत्रता के बाद हालाँकि हमने निर्णय लिया था कि सभी बच्चों को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराएँगे, लेकिन इस उद्देश्य की प्राप्ति अभी तक पूरी नहीं हो पाई है। आज भी बहुत से बच्चे हैं जिन तक शिक्षा नहीं पहुँच पाई है। कई बच्चे ऐसे हैं जिन्हें कारखानों, खेतों या दुकानों में काम करना पड़ता है। कई लड़कियाँ ऐसी हैं जिन्हें घर में अपने छोटे–भाई बहनों को सम्भालना होता है या घरेलू काम में मदद करनी पड़ती है। कुछ बालक पशु चराने जाते हैं। इसके अलावा अनेक गाँव, ढाँणियाँ आदि थे, जहाँ विद्यालय नहीं थे। ऐसी परिस्थिति वाले बच्चों की शिक्षा के लिए वैकल्पिक शिक्षा व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ। ऐसे विद्यालयों का प्रावधान डी.पी.ई.पी. अन्य परियोजनाओं तथा उसके बाद सर्व शिक्षा अभियान में रखा गया था।

इसका उद्देश्य था –

दूरस्थ एवं दुर्गम आवास स्थलों पर शिक्षा की पहुँच उपलब्ध करना।

अनामांकित तथा ड्रॉप–आउट बच्चों, विशेषकर बालिकाओं के लिए शैक्षिक सुविधा उपलब्ध कराना।

कामकाजी बच्चों को शैक्षिक सुविधा उपलब्ध कराना।

यह देखा गया कि ये बच्चे सामान्य विद्यालयी समय में विद्यालय नहीं आ पाते थे। अतः उनके लिए अनुकूल समय में विद्यालय चलाना आवश्यक था। यह शाम या रात को होता था। जो बच्चे छोटी ढाणियों में रहते थे उनके लिए वहीं कक्षा लगाना निर्धारित हुआ। इन्हें वैकल्पिक विद्यालय कहा गया, लेकिन वे सामान्य विद्यालयों से फर्क थे, इनमें उस तरह के भवन, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, खेल मैदान आदि नहीं होते थे। आम तौर पर इनमें एक शिक्षक ही होते थे। इनका मुख्य काम इन बच्चों को पढ़ना–लिखना और गणितीय संक्रियाएँ सिखाना मात्र था। अन्य विषयों पर ज़ोर नहीं था।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए 6 से 14 वर्ष के विद्यालय न जाने वाले बच्चों के लिए निम्नलिखित प्रकार से वैकल्पिक शिक्षा की व्यवस्था की गई –

पूर्णकालिक वैकल्पिक विद्यालय (6 घंटे) – वैकल्पिक शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत यह एक महत्त्वपूर्ण अंग था। यह ऐसी जगह खोला जा सकता था, जहाँ आबादी 100 से अधिक हो, जहाँ 1 किलोमीटर के दायरे में कोई विद्यालय न हो और विद्यालय जाने वाले (6 से 14 वर्ष के) 30 बच्चे उपलब्ध हों। औपचारिक विद्यालयों की भाँति ही इनमें विद्यालय प्रबंध समिति होती थी, जो प्रबन्धन और संचालन में सहयोग करती थी। 40 बच्चों तक की संख्या के लिए एक पैरा टीचर की व्यवस्था और 40 से अधिक की संख्या के लिए एक अतिरिक्त पैरा टीचर उपलब्ध कराया जाता था। इनका समय औपचारिक विद्यालयों की भाँति 6 घंटे तक होता था।

अल्पकालिक वैकल्पिक विद्यालय (4 घंटे) – अनेक बच्चे कारखानों, होटलों, दुकानों, खेतों आदि में काम करते हैं। इसके अलावा कई बच्चे पशुपालन, घरेलू कामकाज, छोटे भाई–बहनों की देखभाल आदि का भी काम करते हैं। ऐसे बच्चों के लिए अंशकालीन वैकल्पिक विद्यालयों की व्यवस्था की गई। इसमें 4 घंटों का समय बच्चों की अनुकूलता के हिसाब से तय किया जाता था, जिसमें समुदाय की भागीदारी भी सुनिश्चित की गई। इसमें 6 से 14 वर्ष के विद्यालय न जाने वाले कम से कम 15 बच्चे होने अपेक्षित थे।

मदरसा शिक्षा – चयनित मदरसों को पूर्णकालिक वैकल्पिक विद्यालयों (6 घंटे वाले) का दर्जा दिया गया। मदरसे में ही हिंदी, गणित व पर्यावरण अध्ययन पढ़ाने के लिए एक पैरा टीचर उपलब्ध कराया जाता था।

ब्रिज कोर्स – बालिका शिक्षा के लिए कैम्प – यह विशेष रूप से 6 से 14 वर्ष की अनामांकित व ड्रॉप–आउट बालिकाओं के लिए था। इसका मुख्य उद्देश्य आगामी शिक्षा सत्र के लिए बालिकाओं को उनकी आयु अनुरूप कक्षा में शामिल होने के लिए तैयार करना था। यह आम तौर पर 2 से 12 माह की अवधि के लिए होता था। इस अवधि के बाद अपेक्षा थी कि बालिकाएँ नियमित विद्यालयों में नामांकित होकर शिक्षा की मुख्याधारा में शामिल हो जाएँ।

सहज शिक्षा केंद्र – ये मुख्य रूप से घरेलू कामों में लगी 6 से 14 वर्ष की अनामांकित और ड्रॉप आउट बालिकाओं को लिए विशेष व्यवस्था थी। इसकी प्रेरणा लोक जुंबिश परियोजना से ली गई थी। यह कामकाजी बालिकाओं के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई।

शिक्षा मित्र – इसकी योजना उन बिखरे हुए आवासीय क्षेत्रों को ध्यान में रखकर बनाई गई थी, जहाँ 6 से 14 वर्ष के विद्यालय न जाने वाले बच्चों की संख्या 10 से भी कम हो। शिक्षा मित्र केंद्रों का संचालन दिन के समय में 4 घंटों के लिए होता था, इसके समय और स्थान का निर्धारण समुदाय के स्तर पर किया जाता था।

शिक्षा गारंटी योजना (राजीव गाँधी स्वर्ण जयंती पाठशाला, ई.जी.एस.) – भारत सरकार ने राज्य सरकारों के साथ मिलकर शिक्षा गारंटी योजना आरम्भ की। इसके तहत ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में दूरस्थ आवासीय स्थलों, बस्तियों आदि में केंद्र खोले गए। इन्हें उन स्थानों पर खोला जा सकता था जहाँ एक किलोमीटर के दायरे में कोई प्राथमिक विद्यालय न हो, रेगिस्तानी, पहाड़ी क्षेत्रों, राजमार्गों या नदियों के किनारे, जहाँ 6–14 आयु वर्ग के विद्यालय न जाने वाले कम से कम 25 बच्चे हों।

ये सभी वैकल्पिक शिक्षा के प्रयास विभिन्न परियोजनाओं एवं कार्यक्रमों के दौरान किए गए हैं, जिनका विस्तृत विवरण परियोजनाओं के संदर्भ में आगे दे दिया गया है।

इस तरह के प्रयासों के जरिए प्राथमिक शिक्षा तक बच्चों की पहुँच कुछ हद तक बढ़ी। इनमें कई जगह उन बच्चों की ज़रूरतों व सांस्कृतिक परिवेश के अनुरूप शैक्षणिक सामग्री बनी। प्रायः इनमें बच्चों की बोलचाल की भाषा में शिक्षा दी जाती थी, लेकिन साथ–साथ इनकी प्रबल आलोचना भी हुई कि यह व्यवस्था परोक्ष रूप से बाल श्रम का समर्थन करती है। बच्चों को दिन के समय विद्यालय में पढते और खेलते हुए बिताना चाहिए न कि मज़दूरी या घरेलू काम करते हुए। सामान्य विद्यालय में पढ़ना सब बच्चों का अधिकार है। यह भी कि इनके चलन से यह धारणा बनने लगी थी कि गरीब, मज़दूर बच्चों के लिए अल्पकालीन और अधूरी शिक्षा पर्याप्त है। इससे सबके लिए समान शिक्षा का अधिकार का हनन हो रहा था। इन बातों को देखते हुए जब शिक्षा का अधिकार कानून बना, तब वैकल्पिक विद्यालय की अवधारणा को त्याग दिया गया। सबके लिए एक ही तरह के राजकीय विद्यालय स्थापित करने का निर्णय हुआ।

गतिविधि

1. कक्षा में दो समूह बना कर वाद–विवाद करें कि क्या वैकल्पिक विद्यालय असमानता को बढ़ावा देते हैं या नहीं ?
2. अगर आप के क्षेत्र में कतिपय बालक–बालिका विद्यालय न जाकर मज़दूरी करने वाले बच्चे हैं तो पता करें कि वे विद्यालय क्यों नहीं जा पाते हैं?उन कारणों को कक्षा में प्रस्तुत कीजिए।
3. क्या वैकल्पिक शिक्षा की आज भी आवश्यकता है, कीजिए।
4. छह घंटे / चार घण्टे की वैकल्पिक व्यवस्था किन बच्चों के लिए उपयोगी हो सकती है व कैसे?
5. ब्रिज कोर्स से क्या आशय है?

पैरा शिक्षक

सामान्य रूप से शिक्षक बनने के लिए कुछ अर्हताएँ निर्धारित होती हैं और उनकी सेवा शर्तें ऐसी होती हैं कि उन्हें नौकरी की सुरक्षा, सम्मानजनक वेतन, अवकाश, भत्ते, बीमार होने पर दवा की राशि, भविष्यनिधि आदि प्राप्त हो और अपनी व्यावसायिक योग्यता बढ़ाने के मौके मिले। जहाँ शिक्षकों को ऐसी सेवा शर्ते नहीं उपलब्ध हैं और बिना अर्हता, बिना स्थायित्व या सम्मानजनक वेतन और अन्य सुविधा के काम किया जाता है, तो ऐसे शिक्षकों को पैरा शिक्षक या अनौपचारिक शिक्षक कहेंगे।

पैरा शिक्षक की संकल्पना राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में व्यापक रूप से सामने आई। पैरा शिक्षक सामान्यतः संविदा (ठेके) पर काम करने वाले विद्यालयी कर्मचारी होते हैं, जो नियमित शिक्षकों के समान विद्यालयों में शिक्षण करते हैं, परंतु नियमित शिक्षकों के लिए निर्धारित मानदेय (पारिश्रमिक) उन्हें नहीं मिलता है और जिन्हें कम कालावधि के लिए नियुक्ति दी जाती है। साथ ही इन्हें पेंशन, ग्रेच्यूटी जैसे लाभ भी नहीं मिलते, जो नियमित शिक्षकों को मिलते हैं।

पैरा शिक्षक की संकल्पना 1980–90 के दशक में बहुत तेज़ी से इसलिए अपनाई गई, क्योंकि सीमित वित्तीय संसाधन होने के बावजूद बुनियादी शिक्षा की माँग को पूरा करना ज़रूरी था। इनकी नियुक्ति, भर्ती प्रक्रिया, कार्य की स्थितियाँ पूरी तरह से नियमित शिक्षकों से अलग थी। अलग–अलग राज्यों में इन्हें अलग–अलग नामों से पुकारा जाता रहा है, जैसे – कॉन्ट्रेक्ट शिक्षक, शिक्षाकर्मी, शिक्षामित्र, शिक्षक–सेवक, विद्या–उपासक, गुरुजी, सामुदायिक शिक्षक, सामुदायिक जन विद्यालय शिक्षक इत्यादि।

पैरा शिक्षक सर्वप्रथम अनौपचारिक शिक्षा के लिए अधिकृत 'इन्स्ट्रक्टर' (प्रशिक्षक) के रूप में रात्रिकालीन विद्यालयों व प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों में नियुक्त होना शुरू हुए। राजस्थान में सबसे पहले पैरा शिक्षकों के विचार को 'शिक्षाकर्मी परियोजना' (1987) में मान्यता मिलनी शुरू हुई। धीरे–धीरे यह विचार, अनौपचारिक व औपचारिक दोनों प्रकार के विद्यालयों में 1990 के पश्चात् व्यापक स्तर पर अलग–अलग नामों के साथ अपनाया जाने लगा।

पैरा शिक्षकों की नियुक्ति के पीछे आम तौर पर दो तर्क दिए जाते है। पहला यह कि नौकरी की सुरक्षा होने पर शिक्षक काम में ढील देने लगते हैं, नौकरी अस्थिर होने पर वे अपना काम निष्ठा के साथ करेंगे। दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि भारत जैसे अधिक जनसंख्या वाले देश में अगर सभी बच्चों तक शिक्षा पहुँचाना है तो सामान्य नियमित शिक्षक बहुत महंगे पड़ेंगे। संसाधन की कमी के कारण हमें यह चयन करना पड़ेगा कि हम शिक्षकों को ऊँचा वेतन देना चाहते हैं या सभी बच्चों तक शिक्षा पहुँचाना चाहते हैं?

शिक्षा का अधिकार कानून, 2009 में शिक्षक की योग्यता, कार्य अवधि तो तय कर दिए हैं, परंतु शिक्षक के वेतन को राज्य पर छोड़ दिया गया है। शिक्षक के व्यवसाय का अनौपचारीकरण आज भी बना हुआ है, इसी वजह आज भी पैरा शिक्षक मौजूद हैं। कार्य का उचित प्रशिक्षण और स्थाई नौकरी न होने, कम पारिश्रमिक मिलने व सामाजिक

असुरक्षा के कारण पैरा शिक्षकों की जवाबदेही नहीं रहती, जिससे अंततः शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित होती है। अनेक विद्वान मानते हैं कि शिक्षा की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि सभी पैरा शिक्षकों को समुचित व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाए एवं उन्हें नियमित शिक्षक बनाया जाए।

शिक्षा के बढ़ते निजीकरण के कारण भी शिक्षकों की स्थिति में गिरावट आई है। निजी विद्यालयों में शिक्षकों को बिना अर्हता के नियुक्त करना, अस्थाई नियुक्ति, कम वेतन पर काम करवाना, किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा का न होना, आम बात है।

गतिविधि

- कक्षा में चर्चा करें कि शिक्षा में वित्तीय संसाधनों में कमी का तर्क कितना उचित है?
- सरकार किन–किन मदों में खर्च कम करके शिक्षा के लिए पर्याप्त संसाधन जुटा सकती है?
- शिक्षक व पैरा शिक्षक के कार्यों व प्राप्त सुविधाओं की तुलात्मक स्थिति पर चर्चा कीजिए।

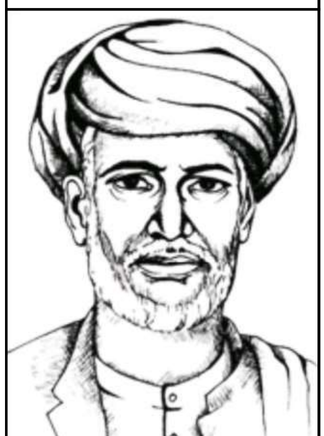
5.3 भारत में शैक्षणिक पहल–दूसरा चरण (2002 से अब तक)

शिक्षा के सार्वजनीकरण के सरकारी प्रयासों का दूसरा दौर 2002 से आरम्भ हुआ माना जा सकता है, जब सर्व शिक्षा अभियान का सूत्रपात हुआ। इस बीच सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ महत्त्वपूर्ण फैसले दिए जिनके परिणामस्वरूप शिक्षा नागरिकों के मौलिक अधिकारों में सम्मिलित हुई। संसद ने इन फैसलों को मूर्त रूप देने के लिए संविधान में संशोधन किए और शिक्षा का अधिकार सम्बन्धित कानून भी बनाया।

5.3.1 शिक्षा का अधिकार कानून की पृष्ठभूमि एवं विवेचना

भारत के 6 से 14 वर्ष के सभी बालक–बालिकाओं को अनिवार्य रूप से निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा देने के लिए सन् 2009 में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 पारित किया गया जिसे RTE एक्ट, 2009 के नाम से भी जाना जाता है। इस अधिनियम को वास्तविक धरातल पर आने में लम्बी यात्रा तय करनी पड़ी। हमें इसकी पृष्ठभूमि पर नज़र ड़ालनी होगी, ताकि इस अधिनियम के इतिहास को जाना जा सके।

शिक्षा का अधिकार कानून के प्रेरणा स्रोत



ज्योतिबा फुले
(1827 – 1890)

पृष्ठभूमि :– सर्वप्रथम ज्योतिबा फुले द्वारा 125 वर्ष पूर्व शिक्षा के अधिकार पर कार्य किया गया। सन् 1882 में इन्होंने हंटर कमीशन के सामने माँग पत्र पेश किया, जिसमें सम्पूर्ण जनता के लिए शिक्षा की माँग की गई। इसके बाद, 18 मार्च 1910 को गोपाल कृष्ण गोखले द्वारा विधान परिषद के सामने प्रस्ताव रखकर भारत में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान करने की माँग की गई, लेकिन यह अस्वीकार हो गया। सन् 1893 में बड़ौदा महाराजा ने लड़कों के लिए अनिवार्य शिक्षा शुरू कर दी थी। सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का एक कानून महाराष्ट्र के कोल्हापुर के राजा छत्रपति शाहू ने पारित किया था। (पिछले वर्ष 'भारतीय समाज और शिक्षा' विषय में आपने इसके बारे में पढ़ा है।)।

इसके बाद विट्ठल भाई पटेल ने 1918 में तत्कालीन बम्बई विधान परिषद् में एक विधेयक प्रस्तुत किया जिसमें प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने की बात कही गई थी। यह विधेयक पास होकर कानून बना और इससे प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में मदद मिली।

देश के अन्य प्रांतों को भी इससे प्रेरणा मिली और केंद्र सरकार ने भी प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने की ज़रूरत को सिद्धांततः स्वीकार किया, लेकिन

1928–29 में हार्टेग समिति की सिफारिशों ने शिक्षा के विकास और विस्तार में बाधा पहुँचाईं और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम लागू नहीं हो सका। 1921 तक कुछ और प्रांतों ने भी अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का कानून बनाया, जिसमें बिहार और ओडिशा (1919), संयुक्त प्रांत (1919), बंगाल (शहरी बालकों के लिए 1919 में और बालिकाओं के लिए 1922 में), मद्रास (1920), मध्य प्रांत (1920) शामिल थे, लेकिन यह शिक्षा उस तरह से सबको सुलभ नहीं थी, जैसी आज है। संयुक्त प्रांत में बना कानून ग्रामीण क्षेत्र के लिए नहीं था, इसलिए वहाँ के ग्रामीण बच्चों को इसका लाभ नहीं मिला सका। पंजाब में बना कानून शहरी और ग्रामीण दोनों इलाकों में लागू होता था, लेकिन सिर्फ बालकों के लिए, बालिकाओं के लिए नहीं। (स्रोत – हिस्ट्री ऑफ एज्यूकेशन इन इंडिया; राम नाथ शर्मा, राजेंद्र कुमार शर्मा)

संविधान सभा में शिक्षा के अधिकार पर वाद–विवाद :– सन् 1946 में संविधान सभा में संविधान का प्रारूप तैयार करने का काम शुरू किया। संविधान के प्रारूप में 14 साल तक के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने को शामिल किया गया। संविधान में यह व्यवस्था की गई कि संविधान के लागू होने के 10 वर्ष की अवधि में सभी बच्चों को, जब तक वे 14 वर्ष की आयु पूरी नहीं कर लेते, राज्य निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराएगा। अप्रैल 1947 को उन सुझावों पर संविधान सभा की सलाहकार समिति द्वारा इसे मौलिक अधिकार के रूप में खारिज कर दिया गया। खारिज करने का प्रमुख कारण संसाधनों की कमी बताया गया और इसे नीति निर्देशक सिद्धांत के अनुच्छेद 45 में स्वीकार किया गया। इसका मतलब यह हुआ कि शिक्षा मौलिक अधिकार नहीं बन सकी। विभिन्न प्रयासों के बावजूद 1990 तक भी सभी बच्चों को शिक्षा की व्यवस्था नहीं हो पाई।

शिक्षा के अधिकार के संबंध में न्यायपालिका की भूमिका :– शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकारों में शामिल करवाने में न्यायपालिका का विशेष योगदान रहा। आइए, हम इसे सिलसिलेवार रूप में देखते हैं –

जैसा कि आप जानते हैं, हमारे संविधान में हर व्यक्ति को जीवन जीने का अधिकार है। सर्वोच्च न्यायालय ने इस अधिकार की व्याख्या करते हुए निर्णय दिया कि जीने का अधिकार तभी सार्थक हो सकता है जब वह जीवन गुणवत्ता युक्त हो। जीवन की गुणवत्ता की कल्पना शिक्षा के बगैर नहीं की जा सकती है। इसलिए सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि शिक्षा का अधिकार जीने के अधिकार में ही निहित है, चाहे उसे अलग से कहा गया हो या नहीं।

बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ (1984) के मामले में अपने अहम फैसले में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट तौर पर कहा कि अनुच्छेद 21 'जीने के अधिकार' की बात करता है, उसमें 'शिक्षा सुविधाएँ' भी शामिल है। सन् 1992 के अपने अन्य फैसले 'मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य' (1992) में उच्चतम न्यायालय ने दोहराया कि जीवन के अधिकार को काफी व्यापक अर्थ में समझा जाए, जिसमें शिक्षा की सुविधाएँ भी शामिल हैं। इस मामले में यह फैसला मील का एक पत्थर साबित हुआ। फलस्वरूप 'शिक्षा सुविधाओं' को मौलिक अधिकार का एक महत्त्वपूर्ण आयाम माना गया।

उन्नीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश (1993) मामले में उच्च न्यायालय के फैसले के बाद शिक्षा के अधिकार पर चला समूचा विमर्श एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव पर जा पहुँचा। अपने फैसले में न्यायालय ने निम्नांकित बातें कहीं –

1. संविधान निर्माताओं ने ज़िम्मेदारी राज्य पर सौंपी है कि वह नागरिकों को पैदा होने से लेकर चौदह वर्ष तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराए।
2. संविधान की प्रस्तावना में लिखे गए उद्देश्यों को तब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि नागरिकों को शिक्षा उपलब्ध न कराई जाए।
3. संविधान के भाग 3 (मौलिक अधिकार) व 4 (नीति निर्देशन तत्व) एक–दूसरे के पूरक हैं। इसलिए जब तक नीति निर्देशन तत्त्व (अनुच्छेद 45) में वर्णित शिक्षा के अधिकार को वास्तविक नहीं बनाया जाता, तब तक भाग–3 में वर्णित मौलिक अधिकार, निरक्षर बहुसंख्यकों की पहुँच से काफी दूर रहेंगे।

86 वाँ संविधान संशोधन

उन्नीकृष्णन फैसले से प्रेरित होकर और शिक्षा के अधिकार को लागू करने की जनता की माँग पर 1993 से परवर्ती सरकारों को शिक्षा को मूल अधिकार बनाने हेतु संवैधानिक संशोधन लाने की दिशा में काम किया। इस संदर्भ में दिसम्बर 2002 में 86वाँ संविधान संशोधन प्रस्तुत हुआ जिसके द्वारा संविधान में निम्नलिखित अनुच्छेद शामिल किए गए –

(1) संविधान के अनुच्छेद 21 (जीवन जीने का अधिकार) के बाद नए अनुच्छेद 21 (क) [21 (A)] का समावेश हुआ जिसमें कहा गया कि ''राज्य द्वारा 6 से 14 आयु वर्ग वाले सभी बालकों और बालिकाओं को निःशुल्क प्रारंभिक शिक्षा उस नीति से दी जाएगी, जिसे राज्य कानून द्वारा निर्धारित करेगा।

इस संशोधन के अनुरूप एक और कानून पारित होना था जो सात वर्ष बाद बना।

निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा विधेयक (2008) राज्यसभा एवं लोकसभा में पारित होकर अगस्त 2009 में राष्ट्रपति की मंजूरी के बाद अप्रैल 2010 से लागू हुआ।

(स्रोत – निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009, (क्र. 35, सन् 2009) 26 अगस्त, 2009 पृष्ठ सं. 1–16 ।)

छह वर्ष से चौदह वर्ष की आयु के सभी बालकों और बालिकाओं को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपलब्ध करने के लिए यह अधिनियम बना। आपने देखा कि प्रारंभिक स्तर तक की निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के अधिकार को कानूनी जामा पहनाने में आज़ादी के बाद भी 62 वर्ष लग गए। जबकि अन्य देशों में यह काफी पहले लागू हो गया था और अब वे माध्यमिक स्तर की शिक्षा से भी आगे की शिक्षा की बात करने लग गए हैं।

इस अधिनियम में 7 अध्याय एवं 38 धाराएँ एवं उनकी उपधाराएँ भी हैं। इसके मुख्य प्रावधानों के बारे में हम आगे पढ़ेंगें।

नोटः इस आलेख में अधिनियम के जो उद्धरण दिए जा रहे हैं उनकी कानूनी भाषा को सरल करके दिया जा रहा है, ताकि विद्यार्थी अध्यापकों को समझने में आसानी हो।

बच्चों की निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार कानून के प्रावधान

6 से 14 साल के प्रत्येक बालक को, प्रारम्भिक शिक्षा को पूरी होने तक आसपास के विद्यालय में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार होगा। अपनी प्रारम्भिक शिक्षा को पाने और पूरा करने में कोई बालक किसी प्रकार की फीस या प्रभार या व्यय करने के लिए बाध्य नहीं होगा।

इस अधिनियम के प्रावधानों की क्रियान्विति के लिए राज्य सरकार और स्थानीय प्रशासन को अपने क्षेत्र और पड़ोस की सीमा के भीतर जहाँ विद्यालय नहीं है वहाँ इस अधिनियम के लागू होने के तीन साल की अवधि के भीतर विद्यालय स्थापित करना होगा।

टिप्पणी और सवाल

ध्यान देने की बात यह है कि निःशुल्क शिक्षा का मतलब यहाँ केवल विद्यालय की फीस से नहीं है बल्कि हर प्रकार का खर्च जो शिक्षा के लिए ज़रूरी है, जैसे– पुस्तक, कॉपी, पेंसिल, बस्ता, यातायात, गणवेश आदि भी इसमें सम्मिलित हैं, यानी सरकार को इन सबकी व्यवस्था करनी होगी, लेकिन यह प्रावधान सभी राजकीय विद्यालयों पर लागू होगा तथा सरकार द्वारा निजी विद्यालयों के 25 प्रतिशत आरक्षित सीट पर प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों पर भी लागु होगा।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस कानून ने सभी वैकल्पिक शैक्षणिक व्यवस्थाओं को नकार दिया और मानक

विद्यालयों में शिक्षा पाना हर बच्चे का अधिकार बना दिया। एक तरह से यह बाल मज़दूरी को रोकने का प्रयास है।

तीसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि शिक्षा के लिए इस कानून ने बच्चों या अभिभावकों को नहीं बल्कि स्वयं सरकार को ज़िम्मेदार ठहराया है। अगर बच्चे किसी भी कारण स्कूल नहीं जा पाते तो उसके निराकरण का ज़िम्मा सरकार पर है।

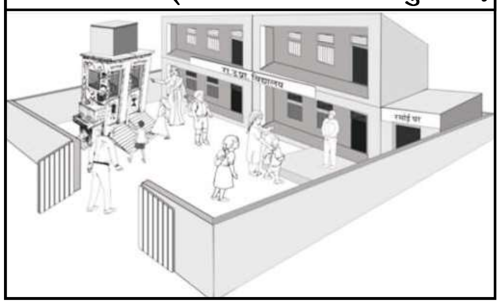
गतिविधि

1. बच्चों को शिक्षा पाने के लिए किस–किस तरह के खर्च करने पड़ते हैं – एक विस्तृत सूची बनाइए और देखिए कि इनमें से कौन–से खर्च अभी सरकार वहन करती है ?
2. क्या आपको यह न्यायसंगत लगता है कि निजी विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्राप्त नहीं है? अपने तर्क दीजिए।
3. रज्जू का कहना है, अगर उसकी बच्ची मज़दूरी करने नहीं जाएगी तो परिवार को भुखमरी का सामना करना पड़ेगा। वह स्कूल नहीं जा सकती है। ऐसे में आपके विचार से सरकार का क्या दायित्व होगा?

विद्यालय प्रवेश और मानक विद्यालय

विद्यालय प्रवेश के समय बालक या उसके अभिभावकों का किसी प्रकार का परीक्षण नहीं किया जाएगा। न ही प्रवेश के लिए बालक से किसी प्रकार के प्रमाण–पत्र की माँग की जाएगी।

प्रदर्श 5.7 विद्यालय में उपलब्ध सुविधाएँ



6 वर्ष से ज़्यादा उम्र के ऐसे बालक जिनका किसी विद्यालय में प्रवेश नहीं हो पाया है या नामांकित हैं पर प्रारंभिक शिक्षा को पूरा नहीं कर पाए हैं, तो उन्हें अपनी उम्र के मुताबिक उपयुक्त कक्षा में प्रवेश दिया जाएगा। यदि उम्र के अनुसार कक्षा में प्रवेश नहीं हो पाए हैं तो दूसरे बच्चों के बराबर आने के लिए विशेष प्रशिक्षण का अधिकार होगा, जैसा कि प्रस्तावित किया जाएगा।

इस कानून के द्वारा स्कूल के कुछ मापदंड तय किए गए हैं। सरकार की यह ज़िम्मेदारी है कि इन मापदंडों के अनुरूप स्कूल बनें। (स्कूल के मापदंड के लिए परिशिष्ट एक देखें।)

टिप्पणी

अपनी आयु के अनुरूप कक्षा में जो बालक–बालिका प्रवेश लेते हैं, अगर ज़रूरत पड़े तो उनके लिए ब्रिज कोर्स जैसी व्यवस्था की जाएगी, ताकि वे अपनी कक्षा के स्तर के अनुरूप अध्ययन कर सकें।

कई विद्वानों का मानना है कि अधिनियम के विद्यालय के लिए निर्धारित मानक बहुत न्यून हैं, जबकि केंद्र सरकार द्वारा संचालित केंद्रीय विद्यालय या नवोदय विद्यालयों को मानक विद्यालय मानना चाहिए। दूसरी तरफ तर्क यह भी है कि ऐसे विद्यालय हर बच्चे को उपलब्ध करवाने के लिए सरकार के पास पर्याप्त संसाधन नहीं हैं। वित्त मंत्रालय के अनुमान से वर्तमान मापदंड पर भी विद्यालय स्थापित करने का वित्तीय भार बहुत अधिक है। इसके लिए आयकर देने वाले नागरिकों पर एक विशेष कर (शिक्षा उपकर) लागू किया गया है।

कैसी शिक्षा?

किसी बच्चे को शारीरिक रूप से दंडित या उनका मानसिक उत्पीड़न नहीं किया जाएगा।

पाठ्यक्रम और मूल्यांकन विधि को तय करने वाले शैक्षणिक प्राधिकारी इन बातों पर ध्यान देंगे –

- संविधान के निहित मूल्यों से इसकी अनुरूपता।
- बच्चे का समग्रता में विकास।
- बच्चे के ज्ञान, संभावित क्षमता और प्रतिभा का विकास।
- शारीरिक एवं मानसिक योग्यताओं का पूर्णतम सीमा तक विकास।
- बालकेंद्रित और बालसुलभ तरीके से विभिन्न क्रियाकलापों, अन्वेषण और खोज के माध्यम से सीख उत्पन्न करना।
- जहाँ तक हो सके पढ़ाई का माध्यम बच्चे की मातृभाषा हो।
- बच्चे को भय, सदमा और चिंता से मुक्त बनाना और उसे अपने विचारों को खुलकर कहने में सक्षम बनाना।
- बच्चे के ज्ञान की समझ और इसे व्यवहार में लाने की योग्यता का व्यापक और सतत् मूल्यांकन।

प्रवेश प्राप्त किसी बच्चे को किसी कक्षा में रोका नहीं जाएगा अथवा प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने से पहले स्कूल से बाहर नहीं निकाला जाएगा। प्रारंभिक शिक्षा को पूरा करने से पहले किसी बच्चे को बोर्ड की परीक्षा पास करना ज़रूरी नहीं होगा। प्रारभिक शिक्षा को पूरा करने वाले हर बच्चे को निर्धारित तरीके और प्रारूप पर प्रमाण–पत्र प्रदान किया जाएगा।

टिप्पणी

यह इस कानून का बहुत महत्त्वपूर्ण अंश है। बच्चों को विद्यालय में भयमुक्त वातावरण मिले, उनको किसी प्रकार की प्रताड़ना न हो। शिक्षा केवल पढ़ने–लिखने पर केंद्रित न होकर बच्चों का सर्वांगीण विकास (खेलकूद, गायन–वादन, चित्रकला, आदि) भी हो। शिक्षण रटंत तरीके से न होकर खोज, प्रयोग और अन्य बालकेंद्रित तरीकों से हो।

शिक्षण मातृभाषा में हो – यहाँ यह कहा गया है कि जहाँ तक सम्भव हो...। शायद इसलिए कि हमारे देश में हर विद्यालय में कई मातृभाषा बोलने वाले बच्चे पढ़ते हैं।

गतिविधि

निम्नलिखित बिंदुओं पर समूह चर्चा एवं प्रस्तुति

1. उम्र के अनुसार कक्षा में प्रवेश देने की व्यवस्था क्यों की गई? क्या इससे बच्चे के सीखने पर विपरीत असर पड़ेगा? बारबियाना स्कूल के बच्चों के विचारों के संदर्भ में इस प्रश्न का जवाब दें।
2. उम्र के अनुसार कक्षा में प्रवेश देने की व्यवस्था पर कुछ शिक्षकों में काफी असंतोष और सवाल हैं। उन्हें इस प्रावधान का औचित्य आप कैसे समझाएँगे?
3. कानून में दिए गए मानकों का ध्यान से अध्ययन करें और बताएँ कि क्या ये बच्चों को उचित शिक्षा देने के लिए पर्याप्त हैं? आप इसमें किस तरह के बदलाव चाहेंगे?
4. बच्चों को फेल न करने का प्रावधान के बारे में आपका क्या मत है? क्या इससे बच्चों के सीखने पर बुरा असर पड़ेगा?
5. बच्चों को परीक्षा के भय के आधार पर पढ़ाना क्या भय और चिंता मुक्त शिक्षा के सिद्धांतों के विपरीत है?
6. देश में हर विद्यालय में कई मातृभाषा बोलने वाले बच्चे पढ़ते हैं, तो –

- ऐसे में उन्हें किस भाषा में पढ़ाना चाहिए?

- अगर वास्तव में बच्चों को भय व चिंता से मुक्त शिक्षा देना हो तो शिक्षक को कैसे पेश आना होगा?
- इसमें बच्चों को अपने विचार खुलकर कहने पर विशेष ज़ोर क्यों दिया गया है?

शिक्षक

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (एन.सी.टी.ई.) द्वारा निर्धारित न्यूनतम अर्हता जो कि केंद्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित हो, अध्यापक के तौर पर नियुक्ति के लिए योग्य मानी जाएगी।

अध्यापक निम्नांकित कार्य करेगा –

अ. विद्यालय में नियमित रूप से समय की पाबंदी के साथ अपनी उपस्थिति बनाए रखें।

ब. प्रावधानों के मुताबिक पाठ्यक्रम को चलाए और पूरा करें।

स. निर्दिष्ट समयवधि में समूचा पाठ्यक्रम पूरा करें।

द. हर बच्चे के सीखने की क्षमता का आकलन करते हुए ज़रूरत पड़ने पर उसे अतिरिक्त शिक्षण प्रदान करें।

य. माता–पिता या अभिभावकों के साथ नियमित बैठक आयोजित करे ताकि बच्चों की उपस्थिति की नियमितता, सीखने की क्षमता, सीखने की प्रगति और आवश्यक जानकारी उन्हें दी जा सके।

राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकारी यह सुनिश्चित करेगा कि अनुसूची में वर्णित छात्र–शिक्षक अनुपात को हर विद्यालय में ठीक तरह बनाए रखा जा रहा है। छात्र–शिक्षक अनुपात को बनाए रखने के लिए स्कूल में नियुक्त किसी शिक्षक से किसी अन्य कार्यालय में कार्य नहीं लिया जाएगा, न ही खण्ड 27 में वर्णित कार्यों के अलावा शिक्षण से संबंध नहीं रखने वाला कोई कार्य कराया जाएगा।

कोई भी शिक्षक निजी ट्यूशन अथवा निजी शिक्षण के कार्य में संलिप्त नहीं होगा।

टिप्पणी

इस कानून की सबसे बड़ी आलोचनाओं में से है एक यह है कि इसमें शिक्षकों की अर्हता व कर्तव्यों के बारे में तो लिखा गया है, मगर उनकी सेवाशर्त और वेतन के बारे में चुप्पी साधी गई है। इसके पीछे सम्भवतः यह तर्क है कि कई राज्यों में शिक्षकों को समान वेतनमान व सेवाशर्त उपलब्ध नहीं है। पूरे देश में एक जैसा मानदंड स्थापित करने के लिए शायद वित्तीय प्रावधान पर्याप्त नहीं हैं।

विद्यालय प्रबन्धन समिति

विद्यालय में एक प्रबंधन समिति गठित होगी जिसमें स्थानीय प्राधिकारी के निर्वाचित प्रतिनिधि, विद्यालय में प्रवेश प्राप्त बच्चों के माता–पिता या अभिभावकों और अध्यापकों का प्रतिनिधित्व होगा।

इसका काम विद्यालय के संचालन की मॉनीटरिंग; विद्यालय के विकास की योजना को तैयार करना; सरकार आदि स्रोतों से प्राप्त अनुदान के उपयोग की मॉनीटरिंग करना। मॉनीटरिंग यानी देखना कि काम हो रहा है या नहीं।

टिप्पणी

विद्यालय प्रबंधन समितियों की भूमिका के बारे में आपके क्या विचार हैं, इस कानून में उन्हें वास्तव में कोई अधिकार नहीं दिए गए हैं–केवल मॉनीटरिंग और अनुशंसा का अधिकार है। क्या ऐसे में अभिभावक इसे गम्भीरता से लेंगे? उन्हें अधिक अधिकार देने से क्या समस्याएँ हो सकती हैं?

1. इन समितियों की बैठक में सब की भागीदारी बढ़ाने और उन्हें प्रभावी बनाने के लिए क्या–क्या किया जा सकता है, सुझाव दें।

निजी विद्यालय

यदि कोई निजी विद्यालय संबंधित अधिकारी से मान्यता प्राप्त नहीं करता है तो वह स्थापित नहीं हो सकेगा। यदि निर्धारित मानकों और मापदंडों का अनुपालन किसी विद्यालय द्वारा नहीं किया जा रहा हो तो उसे मान्यता नहीं प्रदान की जाएगी।

निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान निजी विद्यालयों में कक्षा 1 अथवा विद्यालय की प्रारंभिक कक्षा (जैसे–L.K.G, U.K.G, H.K.G. आदि) की कुल छात्र संख्या का पच्चीस प्रतिशत पड़ोस के कमज़ोर और वंचित वर्ग के बच्चे होंगे जिन्हें, निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रारंभिक शिक्षा (कक्षा 1 से 8 तक) स्तर तक प्रदान की जाएगी। उसे राज्य के द्वारा किए जा रहे प्रति बच्चे खर्च की दर से प्रतिपूर्ति की जाएगी।

टिप्पणी

निजी विद्यालयों में गरीब और वंचित तबकों के बच्चों को प्रवेश कराने के इस प्रावधान पर काफी बहस चली है। कुछ लोगों का मानना है कि इससे राजकीय विद्यालयों से बच्चे हट जाएँगे। कुछ और लोगों का मत है कि इससे उन गरीब बच्चों को काफी प्रताड़ना का सामना करना पड़ेगा। कुछ और लोगों का मत है कि यह इसलिए ज़रूरी है, क्योंकि निजी विद्यालय वर्तमान में सामाजिक दूरियाँ बढ़ा रहे हैं। उसे कुछ हद तक पाटने में यह प्रावधान काम आएगा। निजी विद्यालयों के बच्चे भी गरीब तबकों के बच्चों के जीवन अनुभव व कुशलताओं से काफी सीख सकते हैं।

गतिविधि

1. इन तर्कों के बारे में आपके विचार लिखें।

वित्तीय प्रावधान

केंद्र सरकार और राज्य सरकार दोनों की साथ–साथ ज़िम्मेदारी है कि वे इस अधिनियम के प्रावधानों के कार्यान्वयन के लिए धन का प्रावधान करें।

केंद्र सरकार की भूमिका

अ. शैक्षणिक प्राधिकारी के सहयोग से धारा 29 के तहत राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा विकसित करेगी।

ब. शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु मानकों को विकसित करेगी और उन्हें प्रभावी बनाएगी।

स. नवाचार के उन्नयन, शोध, नियोजन और क्षमता वृद्धि हेतु राज्य सरकार को तकनीकी सहायता एवं संसाधन प्रदान करेगी।

राज्य सरकार की भूमिका

अ. छह से चौदह साल की उम्र के हर बच्चे को निःशुल्क एवं अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करेगी।

ब. यह सुनिश्चित करना कि किसी भी आधार पर कमज़ोर वर्ग और वंचित वर्ग के बच्चों को भेदभाव के चलते प्रारंभिक शिक्षा पाने और उसे पूरा करने से रोका न जाए।

स. आधारभूत संरचना (जिसमें स्कूल भवन शामिल हैं), शिक्षकगण एवं सीखने के उपकरणों को प्रदान करना।

द. प्रारम्भिक शिक्षा हेतु समायोजित तरीके से पाठ्यक्रम और अध्ययन के विषय निर्धारित करना।

य. शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण सुविधा उपलब्ध कराना।

गतिविधि

समूह चर्चा

1. निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा क्यों ज़रूरी है?
2. भारत के संविधान के निर्माण के समय निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा को नीति निर्देशक सिद्धांतों में रखा गया। यदि उस समय इसे मूल अधिकारों में रखकर कानूनी दर्ज़ा दिया जाता तो आपके विचार से भारत की वर्तमान शिक्षा परिदृश्य में क्या बदलाव होता?
3. जीवन का अधिकार और शिक्षा के बीच क्या अंतर्संबंध है?
4. शिक्षा के अधिकार कानून का सबसे अधिक लाभ किसे हुआ? किस प्रकार?
5. क्या सरकार द्वारा निःशुल्क शिक्षा देने को आप उचित मानते हैं? कारण सहित समझाइए।
6. मातृभाषा में बच्चों को पढ़ाना क्यों ज़रूरी है? कोई चार कारण बताइए।
7. सतत् मूल्यांकन से आप क्या समझते हैं? यह पूर्ववर्ती परीक्षा प्रणाली से किस प्रकार भिन्न है?
8. शिक्षक को उत्तरदायित्वपूर्ण बनाने के लिए शिक्षा का अधिकार कानून क्या–क्या कहता है?
9. निजी विद्यालयों में गरीब और वंचित तबके के बच्चों के दाख़िले से वे शिक्षा की मुख्यधारा से जुड़ पाएँगे। इस कथन के पक्ष अथवा विपक्ष में कारण सहित अपनी राय दीजिए।

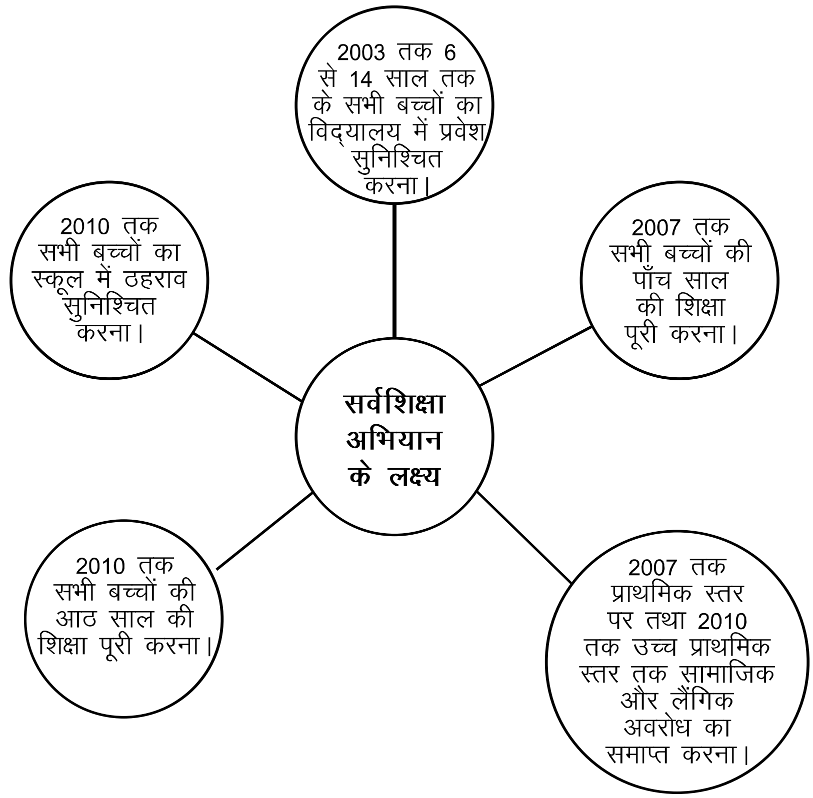
5.3.2 सर्व शिक्षा अभियान (एस.एस.ए.)

जैसा कि हमने पूर्व में उप इकाई क्रमांक 5.1 में पढ़ा, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी.पी.ई.पी.) से शिक्षा तक लोगों की पहुँच बढ़ी, विद्यालयों के लिए कई भवनों का निर्माण हुआ, लेकिन फिर भी जोम्तियन सम्मेलन में शिक्षा के सार्वजनीकरण के जो लक्ष्य निर्धारित किए गए थे, उन्हें हासिल नहीं किया जा सका। इस परिप्रेक्ष्य में भारत सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान के रूप में एक नई पहल की। इस पहल के अंतर्गत शिक्षा के अन्य सभी कार्यक्रमों और परियोजनाओं को समाहित कर दिया गया। यह कुछ ज़िलों तक सीमित न रहकर पूरे देश में लागू है और केवल प्राथमिक कक्षाओं तक सीमित न रहकर उच्च प्राथमिक स्तर तक सभी बच्चों की पहुँच सुनिश्चित करने का प्रयास कर रहा है। शिक्षा अधिकार अधिनियम लागू होने के साथ ही सर्व शिक्षा अभियान उस कानून को लागू करने का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम बन गया।

परिचय

सन् 2002 में संविधान के 86वें संशोधन के द्वारा 6 से 14 साल के सभी बच्चों की शिक्षा सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी केंद्र और राज्य सरकारों को दी गई। आप जानते हैं कि उन्नीकृष्णन फैसले (1996) के बाद से ही संविधान में संशोधन करने और शिक्षा को मूल अधिकार बनाने की बात चल रही थी। इसकी पूर्ति की प्रक्रिया 2002 तक संसद और उसके बाहर चलती रही। इसी परिप्रेक्ष्य में 6 से 14 साल के सभी बच्चों के लिए कक्षा एक से आठ तक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए सर्व शिक्षा अभियान की 2001–02 में शुरूआत की गई। इसका मुख्य उद्देश्य प्रारम्भिक शिक्षा के लिए सभी बच्चों का नामांकन कराना, शत प्रतिशत ठहराव सुनिश्चित करना, शिक्षा में सामाजिक वर्ग भेद व लिंगभेद को समाप्त करना तथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराना रखा गया। यह अब तक सरकार द्वारा शिक्षा के लिए उठाए गए कदमों में सबसे व्यापक और महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम है।

प्रदर्श 5.8 सर्व शिक्षा अभियान के लक्ष्यों का ग्राफिक



सर्व शिक्षा अभियान की मुख्य गतिविधियाँ

सर्व शिक्षा अभियान द्वारा उपर्युक्त लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए निम्नांकित कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है –

विद्यालय विकास के प्रयास

अभियान के अंतर्गत सुदूर इलाकों में जहाँ पहले विद्यालय नहीं थे, में नए प्राथमिक व उच्च प्राथमिक विद्यालय खोले गए अथवा क्रमोन्नत किए गए। दूर–दराज के क्षेत्रों में नए विद्यालय खोलने की ज़िम्मेदारी सर्व शिक्षा अभियान (एस.एस.ए.) को दी गई। इसके अलावा वर्तमान राजकीय विद्यालयों में पर्याप्त कमरे, पीने का पानी, चारदिवारी दीवार आदि के निर्माण का भी प्रावधान है। राजकीय प्राथमिक विद्यालय, उच्च प्राथमिक विद्यालय, संस्कृत विद्यालय, शिक्षाकर्मी बोर्ड द्वारा संचालित विद्यालय, पंजीकृत मदरसों आदि को विद्यालय सुविधा अनुदान दिया जाता है। जो प्राथमिक विद्यालय के लिए, 5,000.00 रु. और उच्च प्राथमिक विद्यालय के लिए 12,000.00 रु. वार्षिक दिए जाते हैं।

यह अनुदान भवन मरम्मत, रंग–रोगन, पुताई, फर्नीचर आदि उपकरणों के रख–रखाव के लिए अनुदान दिया जाता है। विद्यालय में निर्माण कार्य के रूप में नए कक्ष, शौचालय, बिजली फिटिंग, बाउंड्री वाल, फर्नीचर, पेयजल व्यवस्था आदि के लिए भी एस.एस.ए. द्वारा अनुदान दिया जाता है।

शिक्षक संबलन के प्रयास

इस कार्यक्रम के तहत शिक्षा अधिकार कानून द्वारा निर्धारित मापदंड के अनुसार हर राजकीय विद्यालय में

पर्याप्त शिक्षकों की नियुक्ति करने का प्रयास है।

शिक्षक नवीनतम विधियों से अध्यापन करा सकें तथा पाठयक्रम को सरल तरीके से पढ़ा सकें, इस हेतु सभी शिक्षकों के अनिवार्य प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। यह प्रशिक्षण प्रत्येक वर्ष आयोजित किया जाता है। इसके लिए प्रशिक्षण का एक ढाँचा बनाया गया। इसमें राज्य, ज़िला व ब्लाक स्तर पर शिक्षक प्रशिक्षकों का प्रशिक्षण दिया जाता है, जो ब्लाक व संकुल स्तर पर विद्यालयी शिक्षकों को प्रशिक्षण देते हैं।

निःशुल्क पाठ्यपुस्तक

राजकीय विद्यालयों में सभी बालक और बालिकाओं के लिए निःशुल्क पाठ्यपुस्तक वितरित करने का प्रावधान है। इसके लिए सभी राज्यों में नई आकर्षक व रंगीन पुस्तकें तैयार की गईं और वितरित की गई।

कार्यपुस्तिकाएँ (वर्क बुक) – एस.एस.ए. के अंतर्गत कक्षा एक से आठ तक के सभी बच्चों के अधिगम स्तर में वृद्धि करने के लिए पाठ्यपुस्तकों के आधार पर वर्कबुक विकसित करके वितरित की गईं।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए लहर कार्यक्रम – गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को लेकर सर्व शिक्षा अभियान द्वारा अनेक प्रयास किए जाते रहे हैं। इन्हीं प्रयासों में से एक प्रयास है– लहर कार्यक्रम। इसके बारे में विस्तार से वर्णन अगली इकाई (इकाई 6) में किया गया है।

कम्प्यूटर आधारित शिक्षण – कम्प्यूटर एडेड लर्निंग प्रोग्राम (C.A.L.P.) – विज्ञान, अँग्रेज़ी व गणित विषय के सरल तरीके से शिक्षण के लिए विद्यालयों में कम्प्यूटर उपलब्ध कराए गए। इनके उपयोग के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित किया गया। इसमें इन विषयों के जटिल अध्यायों के शिक्षण के लिए पाठ्यक्रम के रूप में 'ई–कंटेंट' पाठ्यक्रम तैयार किए गए, जिनमें इन विषयों की अवधारणाएँ समझाने का प्रयास किया गया।

विज्ञान और गणित किट का निःशुल्क वितरण – विज्ञान और गणित विषय को प्रयोग करके सरल तरीके से समझने के लिए इनकी प्रायोगिक सामग्री का किट विकसित कर विद्यालयों में निःशुल्क वितरण किया गया। इसके लिए राज्य के सभी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के सम्बद्ध शिक्षकों के प्रशिक्षित किया गया।

क्वालिटी एश्योरेंस प्रोग्राम – इसके अंतर्गत राज्य स्तर पर प्रश्न–पत्रों का निर्माण कर नियमित परीक्षाओं के अतिरिक्त परीक्षा का आयोजन किया गया। इन परीक्षाओं में बच्चों के प्रदर्शन को देखते हुए, जिन दक्षताओं में कमज़ोरी नज़र आई, उनके विकास के लिए विशेष शिक्षक प्रशिक्षण आयोजित किए गए।

ब्रिज कोर्स – इसके अंतर्गत स्कूल से बाहर रह गए बच्चों को फिर से शिक्षा से जोड़कर उनमें आयु के अनुसार दक्षताएँ विकसित की जाकर उन्हें उपयुक्त कक्षा में प्रवेश दिलाने का प्रयास किया जाता था। ब्रिज कोर्स का आयोजन खासकर विरल आबादी, घुमंतू परिवार, अल्पसंख्यक, अनुसूचित जाति व जनजाति आदि समुदायों के बच्चों के लिए आवासीय या गैर आवासीय रूप में किया जाता था।

माइग्रेटरी छात्रावास – ऐसे समुदाय जो काम के लिए पलायन करते हैं, उनके बच्चों की पढ़ाई छूट जाती है। ऐसे बच्चों की शिक्षा जारी रखने के लिए बालक व बालिकाओं के शिक्षण व आवास के लिए अलग–अलग छात्रावास की व्यवस्था माइग्रेटरी छात्रावास के तौर पर की गई।

विशेष सक्षम जन (बालक–बालिकाओं) की शिक्षा के प्रयास – 40 प्रतिशत से अधिक अस्थि दोष, दृष्टि दोष, श्रवण दोष, मानसिक विमंदता व सेरेबल पल्सी वाले बच्चों की पहचान की गई उनके लिए चिकित्सा सहायता शिविर, आवश्यक अंग एवं उपकरण व सुविधाएँ उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया।

ऐसे बच्चों के स्कूल प्रवेश की पूर्व तैयारी के लिए ''आवासीय स्कूल रेडिनेस शिविर'' की व्यवस्था की गई। रोग से संबधिंत तीव्रता कम करने के लिए और शेष रही क्षमताओं को बढ़ाने के लिए ब्लॉक स्तर पर संदर्भ कक्ष बनाए गए। पुनर्वास विशेषज्ञों आदि की सेवाएँ उपलब्ध कराई गईं। साथ ही इनके शिक्षण की व्यवस्था की गई।

रीडिंग कैंपेन कार्यक्रम – सत्र 2012–13 में राजस्थान में प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों का सघन अवलोकन कार्यक्रम चलाया गया। इसमें वर्ष में तीन बार शिक्षा मंत्री से लेकर ब्लॉक शिक्षा अधिकारी तक निर्धारित तारीखों में विद्यालयों में गए तथा वहाँ जाकर उन्होंने बच्चों के शैक्षिक स्तर का आकलन किया। इसे शिक्षा संबलन कार्यक्रम का नाम दिया गया था। इस कार्यक्रम के बाद इस बात की ज़रूरत महसूस हुई कि कक्षा तीन, चार व पाँच के बच्चों को भाषा व गणित की मूल दक्षताओं व अवधारणाओं को समझाने के लिए विशेष प्रयास आवश्यक है। इसके लिए 2013–14 में ''रीडिंग कैंपेन'' प्रारंभ किया गया। इस कार्यक्रम के अंतर्गत विद्यालयों में ऐसा वातावरण बनाने का काम किया गया जिसमें बच्चे कक्षा स्तर के अनुसार अधिगम स्तर को प्राप्त कर सकें।

इस कार्यक्रम के प्रभावी संचालन के लिए बच्चों के प्रारभिंक स्तर का आकलन करते हुए आधार रेखा तैयार की गई। बच्चों को साल के अंत तक क्या–क्या दक्षताएँ सीख लेना अपेक्षित है, इसके लिए लर्निंग इंडीकेटर विकसित किए गए। उपयुक्त शिक्षण के लिए प्रारम्भिक स्तर के आकलन के अनुसार बच्चों को कक्षा की बजाए 'ए', 'बी', और 'सी' ग्रेड में बाँटा गया और इसी के अनुसार शिक्षण कार्य कराया गया। इस कार्यक्रम का एक अच्छा पक्ष इसकी प्रभावी मानिटरिंग रहा, जिसके कारण शिक्षकों को उचित संबलन मिल सका।

शोध कार्य

एस.एसए. द्वारा शिक्षा में शोध के लिए दो तरह के अनुदान दिए जाने का प्रावधान है। ज़िला स्तर के शोध डाईट द्वारा संपादित किए जाते हैं। विद्यालय स्तर पर हर ज़िले में तीन क्रियात्मक शोध किए जाने का प्रावधान है।

ज़िला शिक्षा सूचना प्रणाली (District information System for Education - DISE)

एस.एस.ए. के अंतर्गत एक ज़िला शिक्षा सूचना प्रणाली (डाइस) लागू की गई है। यह भारत सरकार तथा न्यूपा (National University of Education Planning and Administration) के सहयोग से विकसित की गई है। इसमें हर विद्यालय का अपना निजी डाइस कोड होता है। इसमें विद्यालयों से संबंधित सभी आँकड़े व सूचनाएँ रखी जाती है। शैक्षिक नियोजन में डाइस के आँकड़ों का उपयोग किया जाता है। इन आँकड़ों के विश्लेषण से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर कमज़ोर क्षेत्र में संबलन तथा मानिटरिंग व फॉलोअप की कार्यवाही की जाती है। सिविल निर्माण कार्यों की स्वीकृति डाइस डाटा से प्राप्त आवश्यकता के आधार पर दी जाती है। शिक्षक अनुदान, शिक्षक प्रशिक्षण, विद्यालय अनुदान आदि डाइस डाटा के आधार पर दिए जाने का प्रावधान है।

पूर्व में यह व्यवस्था राजकीय व गैर राजकीय प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों के लिए लागू थी। अब राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के प्रारम्भ होने के पश्चात् माध्यमिक व उच्च माध्यमिक विद्यालयों सहित सभी प्रकार के विद्यालयों में डाइस का प्रावधान है।

बालिका शिक्षा

बालिका शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम (National Programme for Education of Girls at Elemantary Level; NPGL) - राजस्थान के 31 ज़िलों में (सीकर व झुंझनू को छोड़कर) शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े 186 ब्लाक और 4,710 मॉडल क्लस्टर विद्यालयों में यह कार्यक्रम संचालित रहा है। इसमें बालिकाओं का नामांकन व ठहराव सुनिश्चित करने के लिए माँ–बेटी सम्मेलन, व्यावसायिक प्रशिक्षण, खेल प्रशिक्षण (योगासन और मार्शल आर्ट) आदि का आयोजन किया गया। ब्लाक स्तर पर बालिकाओं के लिए शैक्षिक भ्रमण का आयोजन किया गया। शैक्षिक क्षेत्र में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाली बालिकाओं और

प्रदर्श 5.9 बालिकाएँ घरेलू कार्य तथा छोटे बच्चों की देखभाल में



बालिका शिक्षा का वातावरण बनाने व इसे बढ़ावा देने वाले अध्यापकों और विद्यालयों को पुरस्कृत किया गया था। वर्ष 2013–14 में बालिका शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम सारे देश में बन्द हो गया किन्तु राजस्थान में उन्हीं 186 ब्लॉक में जहाँ कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय पहले से संचालित किए जा रहे थे, अभी भी जारी हैं।

कस्तूरबा गाँधी आवासीय विद्यालय – यह भारत सरकार द्वारा संचालित योजना है। कस्तूरबा गाँधी आवासीय विद्यालय में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक वर्ग और गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले परिवार की बालिकाओं को प्रवेश दिया जाता है। इसमें मुख्य बात यह है कि बालिकाओं के आवास हेतु चार पाँच बड़े कमरे, एक रसोईघर और पर्याप्त शौचालय की व्यवस्था की जाती है। बालिकाओं को निःशुल्क भोजन दिया जाता है। इसमें स्टेशनरी, स्टाफ का वेतन, पानी, बिजली, चिकित्सा व्यय के लिए पर्याप्त प्रावधान रखे गए हैं। लड़कियों को औपचारिक शिक्षा के साथ–साथ जीवन सुरक्षा, व्यावसायिक कौशल, कम्प्यूटर शिक्षा आदि का प्रशिक्षण भी दिया जाता है, जिससे वे जीवन जीने का कौशल सीख कर अपने भविष्य को सँवार सकें।

प्रश्न

आपके मत में एस.एस.ए. का कौन सा कार्यक्रम प्रारंभिक शिक्षा के विकास में सबसे ज़्यादा सफल रहा है, कारण सहित बताएँ?

एस.एस.ए. प्रबंधन का ढाँचा

अभियान के संचालन का ढाँचा – एस.एस.ए. की गतिविधियों के संचालन के लिए एक अलग पंजीकृत संस्था 'राजस्थान प्रारंभिक शिक्षा परिषद्' (Rajasthan Council of Elementary Education) का गठन किया गया है। इसके मुखिया आयुक्त होते हैं। ज़िला स्तर पर ज़िला परियोजना समन्वयक (D.P.C.), एवं अतिरिक्त ज़िला परियोजना समंवयक (A.D.P.C.) और ब्लाक स्तर पर खंड संदर्भ केंद्र (B.R.C.) बनाए गए हैं। ये सभी पहले से कायम शिक्षा संचालन के ढाँचों के अतिरिक्त हैं।

योजना निर्माण की प्रक्रिया – एस.एस.ए. में योजना निर्माण के काम में व्यापक भागीदारी का प्रावधान रखा गया है। इसमें जनसमुदाय, जनप्रतिनिधि और विद्यालय के शिक्षक शामिल होते हैं। ग्राम पंचायत स्तर पर बनाई जाने वाली योजनाओं में पंच, सरपंच, शिक्षक, अभिभावक व अन्य सरकारी विभागों के अधिकारी भागीदार होते हैं। इनके द्वारा बनाई गई योजनाओं की स्वीकृति के लिए ब्लाक के माध्यम से ज़िला स्तर पर भेजा जाता है। विद्यालय स्तर पर योजना बनाने व क्रियान्वित करने में विद्यालय प्रबंध समिति की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

प्रश्न

1. आपके विचार से स्कूल के विकास के लिए योजना बनाने के काम में समुदाय की भागीदारी किस तरह की रहती है?
2. एस.एम.सी. को और अधिक प्रभावी बनाने हेतु चर्चा करें।

अभियान की समीक्षा

लहर, ब्रिज कोर्स, शिक्षक संबलन, माइग्रेटरी छात्रावास, क्वालिटी एश्योरेंस प्रोग्राम तथा वर्क बुक विकसित करने जैसे अनेक प्रयासों के चलते यह अपेक्षित था कि बच्चों में सभी विषयों को पढ़ने–लिखने की आधारभूत समझ विकसित होती।

एस.एस.ए. के कई कामों में स्पष्ट प्रगति दिखाई देती है। इनमें नए स्कूल खोलना, विद्यालयों को क्रमोन्नत करना, पाठ्यपुस्तकें व अन्य शिक्षण सामग्री विकसित करना, शिक्षकों का प्रशिक्षण करना आदि काम शामिल हैं। चूँकि

एस.एस.ए. राजस्थान में प्रारम्भिक शिक्षा से जुड़े सभी कामों का संचालन करने की भूमिका में रहा है इसलिए अभियान के कार्यकाल के दौरान राज्य में प्रारंभिक शिक्षा के लिए हुए सभी काम एस.एस.ए. के अंतर्गत ही हुए हैं। पर अभी भी बच्चों के विद्यालय प्रवेश, ठहराव और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने की दिशा में बहुत काम किए जाने की आवश्यकता है, जो रीडिंग कैम्पेन और संबलन अभियान से भी दृष्टिगोचर हुआ है।

अब तक हमने प्रारम्भिक शिक्षा के दो बड़े कार्यक्रमों के बारे में जानकारी प्राप्त की है। इनके माध्यम से किए गए प्रयासों से नामांकन और ठहराव दर में आशातीत वृद्धि हुई। जिसके परिणामस्वरूप सरकारों का ध्यान माध्यमिक शिक्षा के विस्तार एवं गुणवत्ता की ओर गया।

आपके मन में यह जिज्ञासा हो रही होगी कि प्रारंभिक शिक्षा के शिक्षक होने के नाते हमें माध्यमिक शिक्षा अभियान के बारे में जानना क्या ज़रूरी है ? एक शिक्षक बनने की तैयारी के दौरान शिक्षा के सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य को जानना ज़रूरी होता है। शैक्षिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से योजना बनाते समय भी शिक्षा को अलग–अलग स्तरों में बाँटकर एकाकी दृष्टिकोण से उन पर विचार करने की भूल नहीं करनी चाहिए। इसी को ध्यान में रखते हुए आइए हम राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के बारे में जानकारी प्राप्त करें।

गतिविधि

आपकी दृष्टि में सर्व शिक्षा अभियान द्वारा शिक्षा में गुणवत्ता सुधार हेतु क्या उपाय करने चाहिए?

5.3.3 राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (रमसा)

प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के उद्देश्य की पूर्ति हेतु भारत सरकार तथा विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा अनेक प्रयास किए गए। इन सभी प्रयासों से भारत प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की ओर अग्रसर हुआ। प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के फलस्वरूप माध्यमिक शिक्षा (कक्षा 9 और 10) की आवश्यकता भी तेज़ी से बढ़ी। इन्हीं परिस्थितियों के बीच 2008 में भारत सरकार द्वारा गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा के समान अवसर सभी को प्रदान करने हेतु 'राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान' सितम्बर 2009 से शुरू हुआ। जनवरी 2010 से यह कार्यक्रम राजस्थान में भी शुरू हो गया।

पृष्ठभूमि

यह सभी जानते हैं कि युवाओं को व्यवसाय और जीवन के लिए तैयार करने तथा उन्हें सक्षम नागरिक बनाने की दृष्टि से आठ वर्ष की शिक्षा अपर्याप्त है। प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने के पश्चात् माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले अर्थात् 14 से 18 आयु वर्ग के विद्यार्थियों को कक्षा बारहवीं तक (माध्यमिक शिक्षा) देने, वैश्विक प्रतिस्पर्धा, सहभागिता एवं सफलता योग्य बनाने हेतु गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया।

उद्देश्य

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं :–

1. राष्ट्रीय स्तर पर माध्यमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण जिससे 14–18 वर्ष के विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराई जा सके।
2. प्रत्येक 5 किमी की दूरी पर माध्यमिक स्तर के विद्यालय तथा 7–10 किमी पर उच्च माध्यमिक विद्यालय उपलब्ध कराना।
3. 2017 तक माध्यमिक शिक्षा में नामांकन को 100 प्रतिशत के लक्ष्य तक पहुँचाना।
4. 2020 तक माध्यमिक शिक्षा में शत–प्रतिशत ठहराव सुनिश्चित करना।
5. समाज के विशेष वर्ग, खास कर लड़कियों व कमज़ोर वर्ग के विद्यार्थी तथा दुर्गम स्थानों पर शिक्षा की सुविधा

उपलब्ध कराना।

6. आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर वर्गों और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों, जैसे – बालिकाओं, ग्रामीण क्षेत्र के बच्चों और अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यक वर्ग जैसे सीमांत स्थिति (हाशिए) पर पहुँचे हुए वर्गों को भेदभाव रहित माध्यमिक शिक्षा उपलब्ध कराना।

कार्य प्रणाली

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान में मुख्यतः गुणवत्तापूर्ण व समान शिक्षा की उपलब्धता पर ज़ोर दिया गया है। इस कार्य के लिए विशेष शिक्षण पद्धति व प्रशिक्षण देने का निर्णय किया गया। बालिका शिक्षा पर ज़ोर दिया गया तथा उनके लिए अलग विद्यालय और अगर किसी कक्षा में 20 लड़कियाँ हैं तो बालकों के विद्यालय में ही अलग कक्षा बनाने का प्रबंध किया गया अथवा बालकों के विद्यालय में महिला शिक्षिका की उपलब्धता की बात कही गई है।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान में माध्यमिक शिक्षक हेतु निर्धारित किए गए मापदंडों के अनुसार सभी प्रकार के विद्यालयों में भौतिक व आधारभूत सुविधाएँ, स्टाफ की पूर्ति करवाने पर ज़ोर दिया गया। कक्षा 9 के बाद ही अकादमिक व व्यावसायिक दोनों प्रकार की शिक्षा देने पर बल दिया गया। जिससे विद्यार्थी व्यावसायिक ज्ञान प्राप्त कर अच्छा रोज़गार पा सकें। इन सभी कार्यों के लिए कई व्यावसायिक विद्यालय प्रस्तावित किए गए, शिक्षकों की नियुक्ति प्रस्तावित हुई। इनमें से कुछ कार्य हो गया है और कुछ कार्य शेष है।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान को प्रारंभ करने से पूर्व राज्यों ने माध्यमिक शिक्षा की स्थिति जानने के लिए आधारभूत अध्ययन करवाए थे। उन प्रतिवेदनों से यह स्पष्ट हो गया है कि माध्यमिक शिक्षा की भौतिक एवं शैक्षिक स्थितियाँ प्रारंभिक शिक्षा से भी ज़्यादा खराब हैं। स्टाफ को कार्य करने हेतु उचित आधारभूत ढाँचा उपलब्ध नहीं करवाया जा रहा है।

इस अभियान के क्रियान्वयन हेतु मानव संसाधन विकास मंत्रालय वित्तीय सहायता सीधे राज्य सरकारों को उपलब्ध करवाता है। इसमें केंद्र सरकार 75 प्रतिशत सहायता उपलब्ध कराती है एवं शेष राशि की व्यवस्था राज्य सरकारें करती हैं।

गतिविधि

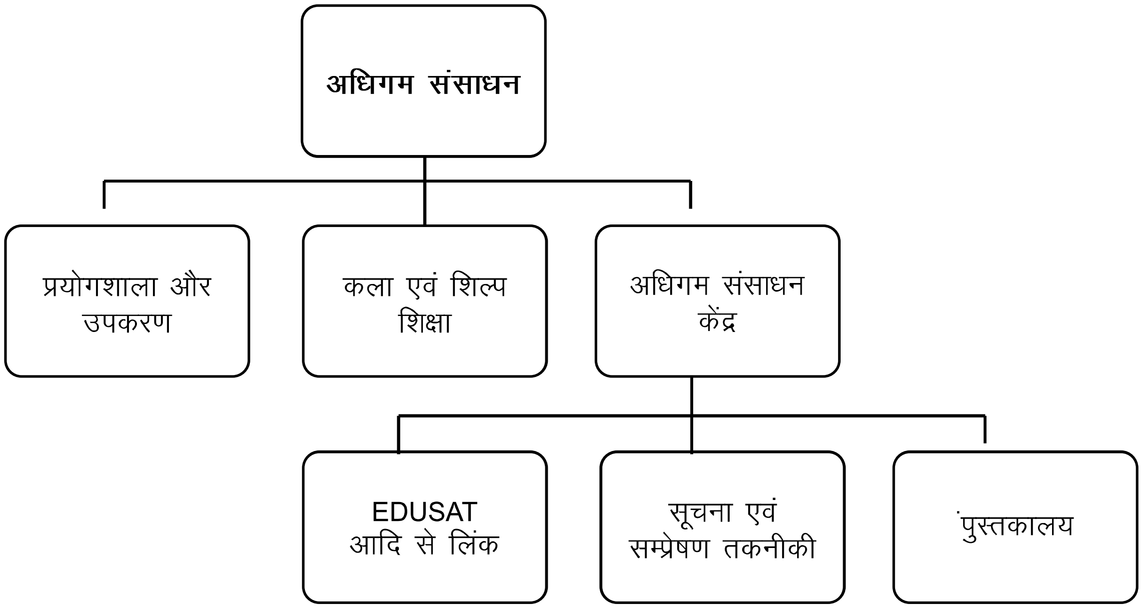
- शिक्षा का अधिकार कानून 2009 के पश्चात् माध्यमिक शिक्षा अभियान को शुरू करने के कारणों पर चर्चा करें।
- माध्यमिक शिक्षा अभियान के तहत राज्य के स्तर पर जो प्रयास किए जा रहे हैं उनकी जानकारी प्राप्त करें तथा चर्चा करें कि क्या वे पर्याप्त हैं।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के महत्त्वपूर्ण घटक

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान द्वारा शैक्षिक गुणवत्ता में सुधार हेतु निम्नलिखित बिंदुओं का उल्लेख किया गया है:–

1. शिक्षा के क्षेत्र में पाठ्यक्रम निर्माण और उसका क्रियान्वयन राज्य और राष्ट्र दोनों स्तरों पर मुख्य स्थान रखता है। NCERT द्वारा स्वीकृत NCF-2005 में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि राज्य एवं संघ समान पाठ्यक्रम लागू करें। राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के प्रथम चरण में यह कार्य पूर्ण करने की बात कही गई है।
2. अधिगम संसाधन : चूँकि शिक्षण विषयवस्तु, विधि तथा अधिगम संसाधन का है अतः उपयुक्त अधिगम संसाधनों के उपयोग करने पर से शिक्षण प्रभावी बनता है। अभी सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी – आधारित संसाधन भी स्कूलों को उपलब्ध करवाए जा रहे जिस से उन के चयन का दायरा भी बढ़ गया है जो नीचे दिए प्रदर्श से स्पष्ट है –

प्रदर्श 5.10 अधिगम संसाधनों के विस्तार का प्रतिचित्र



गतिविधि

EDUSAT, पुस्तकालय, सूचना एवं संप्रेषण तकनीक के बारे में परिचर्चा आयोजित कीजिए।

यह अनुभूत किया गया है कि अधिकांश छात्रों को अध्ययन के दौरान गणित एवं विज्ञान विषय में कठिनाई का अनुभव होता है। गणित, विज्ञान जैसे विशिष्ट विषयों की शिक्षण प्रक्रिया संदर्भ सामग्री व प्रयोगशाला अनुभव से युक्त होनी चाहिए। सहायक शिक्षण सामग्री के प्रयोग से शिक्षार्थी का अधिगम पुष्ट होता है और उसे सीखने में सहायता मिलती है। राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान में विद्यालय में प्रयोगशाला की सुनिश्चितता के साथ ही उनमें उपकरणों आदि के प्रयोग पर बल दिया गया है, जिससे विद्यार्थियों की सीखने की स्थिति में सुधार हो सके।

माध्यमिक स्तर की पाठ्यचर्चा में स्वास्थ्य एवं अन्य क्षेत्रों के ज्ञान को संवर्धित करने के लिए विद्यालय में शारीरिक शिक्षा, कला शिक्षा, शिल्प शिक्षा, योग शिक्षा आदि को समाहित किया गया है। राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान में न सिर्फ इन विषयों से संबंधित शिक्षकों की अनिवार्यता पर ज़ोर दिया गया है, बल्कि शिल्प प्रयोगशाला की स्थापना की बात भी कही गई है, जिससे विद्यार्थियों में व्यावसायिक दक्षता व कौशल का विकास हो सके। इस अभियान में माध्यमिक एवं उच्चतर स्तर पर शैक्षिक गुणवत्ता वैश्विक स्तर की प्रतिस्पर्धा के योग्य बनाने हेतु विद्यालय में पुस्तकालय अनिवार्य किया गया है।

किशोरावस्था में विद्यार्थियों का सामना अनेक प्रकार की जिज्ञासाओं एवं समस्याओं से होता है। उनकी इन जिज्ञासाओं एवं समस्याओं का समाधान करने के लिए राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के अंतर्गत विद्यार्थियों में एच.आई.वी. / एड्स की जानकारी एवं किशोरावस्था की शिक्षा को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया।

विद्यार्थियों में परीक्षा के तनाव को कम करने के लिए वर्तमान परीक्षा प्रणाली में सुधार पर बल दिया गया है। इसके अंतर्गत सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन पर ज़ोर दिया गया है। परीक्षा में अंकों के स्थान पर ग्रेडिंग सिस्टम को लागू किया गया है। बाह्य परीक्षा (बोर्ड परीक्षा) के स्थान पर आंतरिक मूल्यांकन पर बल दिया गया है।

वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक एवं संक्रमण काल में भौतिक एवं मानसिक अंत द्वदव के समाधान के लिए निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता प्रतिदिन अनुभव की जा रही है। राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान में संघ एवं राज्य सरकारें पूर्णकालिक काउंसलर की नियुक्ति ब्लाक स्तर पर करने की बात कही गई है। शिक्षक एवं संस्था प्रधान के लिए भी निर्देशन एवं परामर्श का ज्ञान सेवारत प्रशिक्षण के माध्यम से प्राप्त करना आवश्यक किया गया है।

शिक्षक, शिक्षण प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण घटक है। शिक्षकों में नई ऊर्जा व उत्साह का संचार करने के लिए राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान ने सेवारत प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया है। इस योजना में सभी शिक्षकों और प्रधानाध्यापकों के लिए प्रत्यक वर्ष में 5 दिवस का प्रशिक्षण अनिवार्य है।

माध्यमिक विद्यालयों में बालिकाओं के कम नामांकन दर को अधिक और विद्यालय त्यागने की दर को कम करने के लिए राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान ने निम्नलिखित पहल की है –

राज्यों का यह कर्तव्य है कि वे बालिकाओं को विद्यालय तक पहुँचने के लिए यातायात की सुविधा प्रदान करे।

कक्षा – 9 में प्रवेश लेने वाली प्रत्येक छात्रा को साइकिल का वितरण सुनिश्चित किया जाए।

बालिकाओं के लिए आवश्यकतानुसार छात्रावास की व्यवस्था की जाए।

ऐसे दुर्गम क्षेत्र जहाँ महिला साक्षरता दर कम है, अध्यापिकाओं को रु. 300 प्रति माह का रुरल पोस्टिंग अलाउंस प्रदान किया जाए। ब्लॉक स्तर पर इन अध्यापिकाओं के लिए आवासीय सुविधा की व्यवस्था की जाए।

बालिकाओं की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए गणवेश तथा नकद प्रोत्साहन राशि का प्रावधान किया जाए।

बालिका छात्रावास खोले गए जाएँ।

अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग एवं अल्पसंख्यक समुदाय के छात्रों को विद्यालय तक पहुँचने के लिए निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं –

- छात्रवृत्ति प्रदान करना।
- पाठ्यपुस्तकें, कार्य पुस्तिका, स्टेशनरी उपलब्ध कराना।
- जनजातीय क्षेत्रों में एक अतिरिक्त क्षेत्रीय जनजातीय भाषा शिक्षक की नियुक्ति करना।
- ऐसे छात्रों के लिए छात्रावास की सुविधा/निःशुल्क भोजन की व्यवस्था करना।
- अधिगम सामग्री हेतु विशेष शिक्षण सहयोग प्रदान करना।
- वित्तीय रूप से कमज़ोर बच्चों को स्वयं के रोज़गार या अंशकालीन रोज़गार के लिए तैयार कर सीखने के दौरान आय अर्जित करने का प्रावधान करना।

पहाड़ी तथा दुर्गम क्षेत्रों में विद्यालय खोलने के मापदंडों में ढ़ील दी जा सकती है। ऐसे क्षेत्रों में आवासीय विद्यालय स्थापित करने को वरीयता दी जा सकती है।

गतिविधि

अभी राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान का प्रारम्भिक दौर है अतः

- मॉडल स्कूल एवं बालिका छात्रावास योजना के बारे में जानकारी प्राप्त करें।
- प्रारम्भिक शिक्षा की प्रगति के आँकड़ों के प्ररिप्रेक्ष्य में राज्य में उपलब्ध माध्यमिक शिक्षा की सुविधाओं के आँकड़ों का तुलनात्मक विवरण तैयार करें।
- राज्य में व्यावसायिक शिक्षा की स्थिति की जानकारी प्राप्त करें।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के माध्यम से शिक्षा के मौजूद ढ़ाँचे को सशक्त करने का कार्य किया जा रहा है, इस कार्य में भौतिक सुविधाओं के साथ–साथ कक्षा कक्ष संस्कृतियों को किशोर वय के बालकों–बालिकाओं की सीखने की क्षमता के अनुरूप रूपांतरित किया जा रहा है। इस दिशा में संस्थाप्रधान व शिक्षकों के सतत् व व्यापक प्रशिक्षण आयोजित किए जा रहे हैं। सामुदायिक सहभागिता एवं पब्लिक प्राईवेट पार्टनरशिप (पी.पी.पी) के माध्यम से शिक्षा में नवाचार की संभावनाएँ तलाशी जा रही हैं। इस सब प्रयासों से सभा बालकों–बालिकाएँ माध्यमिक स्तर तक की बेहतर शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे।

प्रदर्श 5.11 अनुसूची स्कूल हेतु मानक एवं मापदंड (देखें 19 और 25)

क्र.सं.	विषय	मानक	मापदंड
1.	शिक्षकों की संख्या (अ) पहली से पाँचवीं कक्षा तक	दाख़िला प्राप्त बच्चे साठ तक; इकसठ से नब्बे के मध्य; इक्यानवे से एक सौ बीस के मध्य; ऊपर बच्चों पर ; दो सौ से ऊपर बच्चों पर	शिक्षकों की संख्या दो तीन चार पाँच और एक प्रधानाध्यापक छात्र शिक्षक अनुपात चालीस से अधिक नहीं (प्रधानाध्यापक को छोड़ कर)
2.	(ब) छठी से आठवीं कक्षा तक	(1) कम से कम एक शिक्षक प्रति कक्षा ताकि प्रत्येक के लिए कम से कम एक शिक्षक हो जाए – 1. विज्ञान और गणित; 2. सामाजिक विज्ञान; 3. भाषाओं के लिए कम; (2) प्रति पैंतीस बच्चे पर एक शिक्षक; (3) जब बच्चों का दाख़िला सौ से ऊपर हो 1. एक पूर्णकालिक प्रधानाध्यापक 2. निम्न के लिए अंशकालिक अनुदेशक (इन्स्ट्रक्टर) (अ) कला शिक्षण (ब) स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षण (स) कार्य शिक्षण	

2. भवन – सभी मौसम वाला भवन जिसमें निम्नलिखित होंगे –

1. प्रत्येक शिक्षक के लिए कम से कम एक कक्षा और एक कार्यालय–सह–भंडार–सह प्रधान अध्यापक कक्ष;
2. बाधा मुक्त पहुँच;
3. बालकों और बालिकाओं के लिए पृथक शौचालय;
4. सभी बालकों और बालिकाओं के लिए सुरक्षित और पर्याप्त पेय जल;
5. रसोई, जहाँ दोपहर का भोजन विद्यालय में पकाया जाए;
6. खेल का मैदान;
7. सीमा, दीवार या बाड़े द्वारा विद्यालय भवन की सुरक्षा करने के लिए व्यवस्थाएँ।

3. एक अकादमिक वर्ष में कार्य दिवसों / शिक्षण घंटों की न्यूनतम संख्या –

1. पहली से पाँचवीं कक्षा के लिए 200 कार्य दिवस;

2. छठी कक्षा से आठवीं कक्षा के लिए 220 कार्य दिवस;

3. पहली कक्षा से पाँचवीं कक्षा के लिए प्रति अकादमिक वर्ष 800 शिक्षण घंटे;

4. छठी कक्षा से आठवीं कक्षा के लिए प्रति अकादमिक वर्ष 1000 शिक्षण घंटे।

4. शिक्षक के लिए प्रति सप्ताह कार्य घंटों की न्यूनतम संख्या – शिक्षण के 45 घंटे जिसमें तैयारी के घंटे शामिल हैं।

5. अध्यापन शिक्षण सामग्री – प्रत्येक कक्षा के लिए यथा अपेक्षित उपलब्ध कराए जाएँगे।

6. पुस्तकालय – प्रत्येक विद्यालय में एक पुस्तकालय होगा, जिसमें समाचार–पत्र, पत्रिकाएँ और सभी विषयों पर पुस्तकें, जिसके अंतर्गत कहानी की पुस्तकें भी हैं, उपलब्ध होंगी।

7. खेल सामग्री, खेल और क्रीड़ा उपस्कर – प्रत्येक कक्षा को यथा अपेक्षित उपलब्ध कराए जाएँगे।

5.4 भारतीय शिक्षा में उभरते मुद्दे

5.4.1 शिक्षा का निजीकरण

आपने पिछली कक्षा (भारतीय समाज और शिक्षा पाठ्य पुस्तक के अंतर्गत) में पढ़ा है कि स्वतंत्रता से पूर्व जो शिक्षण संस्थाएँ संचाालित थीं उनमें निजी संस्थाएँ, राजकीय संस्थाएँ व कुछ मिशनरी संस्थाएँ थीं। कुछ शैक्षिक संस्थाओं को राजकीय अनुदान प्राप्त होने लगा था। परिणामस्वरूप तीन तरह के विद्यालय सामने आए, जिनमें निजी विद्यालय, राजकीय विद्यालय एवं राजकीय अनुदान प्राप्त निजी शिक्षण संस्थाएँ थे।

आज़ादी के बाद अब तक शिक्षा के प्रसार में ऊपर वर्णित तीनों प्रकार की संस्थाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह माना गया कि स्कूली शिक्षा की व्यवस्था करना मुख्य रूप से राज्य की ज़िम्मेदारी रहेगी। अतः राजकीय विद्यालयों का जाल तेज़ी से फैला, लेकिन निजी विद्यालय भी बने रहे तथा उनका भी विस्तार होता रहा। यह स्थिति 1980 के दशक तक चलती रही। इसके बाद कई राज्य सरकारों ने निजी विद्यालयों को अनुदान देना बंद कर दिया या कम कर दिया। जिससे अनुदान प्राप्त शिक्षण संस्थाएँ धीरे–धीरे राजकीय तंत्र में सम्मिलित हो गई या पूर्णतया निजी बन गई।

1990 के बाद निजीकरण के कारण

1990 के बाद हम देखते हैं ऐसे निजी विद्यालयों की संख्या बढ़ती गई जो विद्यार्थियों से फीस लेकर अपना खर्च पूरा करते हैं। यह देखा जाता है कि इन निजी विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा और उपलब्ध संसाधन फीस के अनुरूप होते हैं। इसका अर्थ है कि सबको एक समान शिक्षा नहीं मिल रही है। भारत में कक्षा 1 से 8 तक लगभग 35 प्रतिशत और राजस्थान में लगभग 45 प्रतिशत विद्यार्थी इन निजी विद्यालयों में पढ़ते हैं। यह परिवर्तन कैसे हुआ?

1986 की शिक्षा नीति के चलते शिक्षा के सार्वभौमीकरण के परिणामस्वरूप राजकीय विद्यालयों को यह ज़िम्मेदारी सौंपी गई कि वे प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों के माध्यम से शिक्षा से वंचित बच्चों को विद्यालय से जोड़ने का प्रयास करें। फलस्वरूप राजकीय विद्यालयों में समाज के अल्प आय वर्गों के बच्चे बड़ी मात्रा में नामांकित हो सके, लेकिन दूसरी ओर समाज के उच्च आय वर्ग के लोग यह मानने लगे कि राजकीय विद्यालयों में गुणवत्ता की कमी है। इसके कई कारण हो सकते हैं। इसका यह कारण यह हो सकता है वे चाहने लगे कि शिक्षण का माध्यम अँग्रेज़ी हो, ताकि उनके बच्चों को उच्च आय वाली नौकरियाँ मिले। लेकिन राजकीय विद्यालयों में हिंदी या अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षा दी जाती है, क्योंकि देश के अधिकांश शिक्षाविद् और नीति निर्माताओं ने माना है कि मातृभाषा में ही प्रारंभिक शिक्षा दी जानी चाहिए। मध्यमवर्गीय अभिभावक अपने बच्चों को अँग्रेज़ी माध्यम के निजी विद्यालयों में

स्थानांतरित करने लगे। इससे राजकीय विद्यालयों में नामांकन कम हुआ व निजी विद्यालयों में नामांकन बढ़ा तथा नए निजी विद्यालय भी अस्तित्व में आए। आगे हम कुछ आँकड़ों पर नज़र डालेंगे जिससे निजी तथा राजकीय विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चों की संख्या के अंतर को हम देख सकते हैं –

1. प्राथमिक शिक्षा (कक्षा 1–5) में भारत में 36 प्रतिशत बच्चे निजी विद्यालयों में जा रहे थे व राजस्थान में 45 प्रतिशत बच्चे निजी विद्यालयों में जा रहे थे।
2. उच्च प्राथमिक स्तर (कक्षा 6–8) तक भारत में 41 प्रतिशत बच्चे व राजस्थान में 47 प्रतिशत बच्चे निजी विद्यालयों में जा रहे थे।
3. माध्यमिक स्तर (कक्षा 9–12) में राजस्थान में 56 प्रतिशत बच्चे निजी विद्यालयों में जा रहे थे।
4. भारत में कुल 64 प्रतिशत बच्चे राजकीय विद्यालयों में पढ़ते थे, राजस्थान में कुल 55 प्रतिशत बच्चे राजकीय विद्यालयों में जा रहे थे।
5. राजकीय विद्यालयों में पढ़ने वाले अधिकांश बच्चे दूर–दराज के इलाकों में रहने वाले तथा अल्प आय वर्ग से है। (स्रोत– (1) Elementary education in India, Progress to words UEE प्रकाशन एवं NUEPA, नई दिल्ली 2013 (2) राजस्थान में शिक्षा की प्रगति 2012–13 मा.शि. निदेशालय बीकानेर।)

विद्यालयी शिक्षा में बढ़ते निजीकरण का प्रभाव

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सभी के लिए स्कूल व्यवस्था सरकारों के सामने एक चुनौती थी, ऐसी स्थिति में शिक्षा के प्रसार और सार्वभौमीकरण में निजी विद्यालयों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। हालांकि यह स्कूल एक विशेष वर्ग के बच्चों के लिए ही उपयोगी रही। निजी विद्यालयों की फीस एवं अन्य खर्चे बहुत अधिक होने के कारण अभिभावकों पर अपने बच्चों की शिक्षा का बोझ बढ़ता गया है। इस विद्यालयों के खर्चों को सामान्य आय वर्ग के अभिभावक वहन नहीं कर पाते है।

निजीकरण का प्रभाव माध्यम व गरीब वर्गों के अभिभावकों पर पड़ा है जो साधन सम्पन्न निधि विद्यालयों में अपने बालकों को पढ़ाने में असमर्थ होते है। जिसमें शिक्षक और अभिभावकों के राजकीय व निजी विद्यालयों को लेकर विषमताएँ बढ़ी है जिनके परिणामस्वरूप समाज में आर्थिक व सामाजिक विषमता बढ़ने का अंदेशा रहता है।

गतिविधि

अपने क्षेत्र के किन्हीं 2 राजकीय व 2 निजी विद्यालयों में जाकर वहाँ प्राथमिक, उच्च प्राथमिक व माध्यमिक स्तर पर दर्ज नामांकन के आँकड़ें प्राप्त करें तथा उनके आधार पर पता करें कि कितने प्रतिशत बच्चे निजी विद्यालय व राजकीय विद्यालय में जा रहे है? इनके कारणों पर कक्षा में चर्चा कीजिए।

आज हम अपने आसपास के विद्यालयों पर दृष्टि ड़ालें तो पाएँगे कि वे कई स्तरों में बँटे हैं, जैसे कम शिक्षा सुविधाओं वाले और अधिक शिक्षा सुविधाओं वाले विद्यालय, कम और अधिक फीस वाले विद्यालय, राज्य शिक्षा बोर्ड और केंद्रीय शिक्षा बोर्ड (सी.बी.एस.सी.) वाले विद्यालय एवं अँग्रेजी और प्रादेशिक भाषा माध्यम वाले विद्यालय। अभिभावक अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार अपने बच्चों को इनमें भेजते हैं। जो बच्चे अच्छी शिक्षा सुविधाओं वाले विद्यालयों (जैसे अँग्रेज़ी माध्यम, नई तकनीकों का उपयोग करने वाले आदि) में शिक्षा प्राप्त करते हैं, आम तौर पर देखा गया है कि उन्हें आगे चलकर अधिक आमदनी वाली नौकरी व पद मिलने की सम्भावना ज़्यादा रहती है। इस तरह के विद्यालयों से निकलकर उच्च शिक्षा और प्रतियोगी परीक्षाओं में वे आसानी से सफलता हासिल कर पाते हैं, लेकिन कम शिक्षा सुविधाओं वाले विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चों को आगे बढ़ने का उतना मौका नहीं मिलता है। जिससे समाज में स्तरीकरण की स्थिति बनी रहती है आर्थिक विषमता बढ़ते रहने की संभावना रहती है।

निजीकरण का शिक्षकों की परिस्थिति पर भी विशेष प्रभाव पड़ा। निजी विद्यालयों के शिक्षक व राजकीय विद्यालय के शिक्षकों को मिलने वाले वेतन व भत्तों के अंतर के चलते निजी तथा राजकीय शिक्षकों के बीच विषमताएँ बढ़ी हैं। समान योग्यता होने के बावजूद निजी विद्यालयों व राजकीय विद्यालय के शिक्षकों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति बहुत अंतर पाया जाता है। निजी विद्यालयों के शिक्षकों की नौकरी स्थाई नहीं होती। अक्सर देखने में आता है कि उन्हें प्रति सत्र के आधार पर नियुक्त किया जाता है। उन्हें छुट्टियों आदि के वेतन देने का प्रावधान अधिकतर निजी विद्यालयों में नहीं है। इस दृष्टि से राजकीय व निजी विद्यालयों के शिक्षकों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में एक बड़ा अंतर होता है।

इस प्रकार यहाँ हमने यह समझने का प्रयास किया है कि शिक्षा के क्षेत्र में राजकीय विद्यालयों के स्थान पर निजी विद्यालयों का प्रसार गत कुछ दशकों में अधिक हुआ है। इसका एक परिणाम यह स्पष्ट बताया गया है कि शिक्षकों व अभिभावकों के बीच राजकीय एवं निजी विद्यालयों को लेकर विषमताएँ बढ़ी हैं।

गतिविधि

1. आपके विचार से विद्यालयों के निजीकरण का गरीब वर्गों के बच्चों की शिक्षा, विशेषकर लड़कियों, की शिक्षा पर पर क्या प्रभाव पड़ेगा?
2. राजकीय विद्यालयों में नामांकन कम होने के कारणों पर कक्षा पर चर्चा कीजिए।
3. अपने क्षेत्र के एक निजी व एक राजकीय विद्यालय में जाएँ व वहाँ किसी एक कक्षा के सभी बच्चों का जातिगत व आर्थिक वर्ग का प्रोफाइल बनाएँ व उनका तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

5.4.2 विद्यालयी व्यवस्था में जवाबदेही

विद्यालय को शिक्षा प्रदान करने का केंद्र माना जाता है, जहाँ अभिभावक अपने बच्चों को शिक्षा प्राप्ति के लिए भेजते हैं। आशा यह कि जाती है कि विद्यालय बच्चों को शिक्षा व ज्ञान देकर उनके सर्वांगीण विकास में मदद करेंगे और वे अपनी रुचि की आजीविका के लिए तैयार हो सकेंगे। लेकिन विद्यालयों की स्थापना और प्रबंधन सरकार या निजी संस्थाओं द्वारा किया जाता है, जिनके अपने–अपने अलग उद्देश्य होते हैं। ऐसे में यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि विद्यालय और शिक्षक किसके प्रति उत्तरदायी है? क्या वे बच्चों के प्रति उत्तरदायी हैं या फिर अभिभावकों के प्रति, या फिर शिक्षा विभाग के अधिकारियों के प्रति? पहले यह माना जाता था कि विद्यालयों की जवाबदेही शिक्षा विभाग के प्रति है और चूँकि विभाग ही इस पर खर्च करता है वह ही जवाबदेही भी सुनिश्चित करें।

साथ में यह भी माना गया कि अगर व्यवस्था की कमी, जैसे शिक्षकों या शैक्षणिक सामग्री की कमी के कारण शिक्षा की गुणवत्ता में कमी है तो इसका सुधार विभाग ही कर सकता है। लेकिन यह देखा जाने लगा कि यह अपर्याप्त है और विद्याालयों की गुणवत्ता के लिए कहीं स्थानीय समुदाय और विशेषकर अभिभावक जिनके बच्चे वहाँ पढ रहे हैं की देखरेख की भूमिका होनी चाहिए। कुल मिलाकर यह माना गया कि विद्यालयों की जवाबदेही एक जटिल विषय है जिसमें कम से कम तीन या चार स्तर हैं। पहला, शिक्षकों के अपने ही पेशेवर आदर्शों के प्रति जवाबदेही, दूसरा विद्यालयों के अपने विशिष्ठ उद्देश्यों के प्रति जवाबदेही, तीसरा, स्थानीय समाज और अभिभावकों के प्रति जवाबदेही और अंत में शिक्षा विभाग के अधिकारियों के प्रति जवाबदेही।

गतिविधि

कक्षा में चर्चा करें –

– जो अभिभावक अपने बच्चों को विद्यालय भेजते हैं, क्या वे विद्यालय प्रबंधन या शिक्षक से यह पूछने में समर्थ हैं कि उनके बच्चों को किस प्रकार की शिक्षा दी जा रही है?

– अगर केवल विभाग के प्रति जवाबदेही हो तो इसका क्या प्रभाव होगा?

– अगर केवल अभिभावकों के प्रति जवाबदेही हो तो इसका क्या प्रभाव होगा?

सामान्य तौर पर विभागों की संरचना ऐसी होती है कि उसमें विभाग के अधिकारियों के प्रति जवाबदेही निहित होता ही है। लेकिन समुदाय और अभिभावकों की भूमिका को लेकर कई समस्याएँ रहीं हैं। चुने गए जनप्रतिनिधियों को अक्सर समुदाय का पर्याय माना जाता है। एक ओर इनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण तो है चूँकि वे दलीय राजनीति से संबद्ध होते हैं, उनका हस्तक्षेप राजनैतिक रूप ले सकता है। यानी जनप्रतिनिधियों के साथ साथ अभिभावकों की भी भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

इसको ध्यान में रखते हुए शिक्षा अधिकार अधिनियम में शाला प्रबंधन समिति का प्रावधान रखा गया है जिसमें विभागीय अधिकारी, प्रधानाध्यापक, शिक्षक, स्थानीय जन प्रतिनिधि और अभिभावक जिनमें महिलाओं व अनुसूचित जाति व जनजाति के लोग अनिवार्य रूप में सम्मिलित होंगे। ये सब मिलकर विद्यालय की वार्षिक योजना बनाएँगे और उसके क्रियान्वयन पर निगरानी रखेंगे।

इस प्रावधान से यह सुनिश्चित हो गया है कि विद्यालय के शिक्षक एवं प्रबंधक विद्यालय विकास समिति के प्रति जवाबदेह होंगे। समिति को उनसे प्रश्न पूछने का अधिकार होगा व उसके द्वारा उनके आय–व्यय तथा कार्यों की जाँच की जा सकती है।

गतिविधि

1. विद्यालय प्रबंधन समिति (SMC) की भूमिका से विद्यालय की जवाबदेही कहाँ तक वास्तव में सुनिश्चित हुई है? इस पर परिचर्चा कीजिए।
2. क्या विद्यार्थियों के प्रति उत्तरदायित्व भी होना चाहिए?

कई लोगों का यह मानना है कि इन तरीकों से वास्तव में विद्यालयों की जवावदेही नहीं हो पाई है और विद्यालयों का स्तर लगातार गिर रहा है। उनका कहना है कि इसका एक ही निदान है विद्यालयों का निजीकरण। ऐसे लोगों का मानना है कि अगर विद्यालय निजी हाथों में होगा तो वे अपनी गुणवत्ता के आधार पर प्रतिस्पर्धा करेंगे और अभिभावक सही विद्यालयों को चुन सकेंगे। इस तरह शिक्षा भी बाज़ार के दबाव में आकर अपने आप को सुधार सकती है। इस विचार के समर्थकों का आग्रह है कि राज्य सभी अभिभावकों को वाउचर दें जिन्हें अभिभावक अपनी पसंद के विद्यालय में देकर अपने बच्चों का प्रवेश दिला पाएँ। इस विचार को कई देशों में आज़माकर भी देखा गया है।

उपर्युक्त विचार के समालोचक भी हुए हैं जिनका कहना है कि इससे केवल निजीकरण को बढ़ावा मिला है, मगर शिक्षा की गुणवत्ता में कोई सुधार नहीं हो सकता है। बाज़ार का दबाव है कि बच्चों को कुछ विशेष बातें ही सिखाई जा जाएँ और सभी बच्चों को एक जैसे कामकाज के लिए तैयार किया जाए। इससे शिक्षा के व्यापक आदर्शो का ह्रास होता है। शिक्षा के व्यापक आदर्श, जैसे – लोकतांत्रिक नागरिक तैयार करना, उदार व खोजी प्रवृत्ति उत्पन्न करना आदि सबके लिए समान व राजकीय विद्यालयों में ही हो सकता है।

गतिविधि

1. पता करने का प्रयास करें कि जिन देशों में वाउचर प्रणाली लागू हुआ, वहाँ क्या परिणाम हुए?
2. आप अपने विचार रखें कि यह व्यवस्था सैद्धांतिक और व्यावहारिक रूप में उचित है या नहीं?

5.4.3 शिक्षकों की बदलती परिस्थितियाँ

शिक्षक विद्यालयी व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण अंग हैं। विद्यालयी व्यवस्था के विकास और परिवर्तन के साथ–साथ शिक्षक की भूमिका व परिस्थितियाँ भी लगातार परिवर्तित होती रही हैं। आपने पिछले वर्ष भारतीय समाज और शिक्षा' नामक विषय में भारत में स्वतंत्रता पूर्व के शैक्षिक इतिहास का अध्ययन किया है, जिसमें मूल रूप से उस समय की शिक्षा की परिस्थितियाँ, प्रकृति व उद्देश्य को जानने का प्रयास किया गया था। उस संदर्भ में शिक्षक की भूमिका 'ज्ञान प्रदान करने वाले अभिकर्ता' के रूप में समझी जाती थी, जो विद्यार्थियों को ज्ञान देने का कार्य करता था। बालक/बालिकाएँ उस समय 'कोरी स्लेट' अथवा 'पौधा' समझे जाते थे। जिन्हें शिक्षक ज्ञान देकर 'सीखाता' व 'सींचता' था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शुरूआती दशकों में बने शिक्षा आयोगों की सिफारिशों से स्पष्ट होता है कि शिक्षक कमोबेश उसी भूमिका में रहा इसका अध्ययन हम इकाई 4 में कर चुके हैं।

20 वीं सदी के अंतिम दशकों के दौरान शिक्षक की भूमिका बदलना शुरू हुई और यह माना जाने लगा कि शिक्षक एक सहायकर्त्ता (facilitator) है, जिसका कार्य ज्ञान प्रदान करना नहीं है, बल्कि विद्यार्थी जिन सामाजिक विविधताओं के साथ विद्यालय में आए हैं, उन विविधताओं को स्वीकार करते हुए उन्हें ज्ञान प्राप्त में सहायता करना है। शिक्षक का काम किसी पूर्व निर्धारित ज्ञान को विद्यार्थियों तक पहुँचाना नहीं बल्कि उनके द्वारा ज्ञान के निर्माण में सहायता करना और उसके लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ निर्मित करना है। यशपाल समिति भी शिक्षक की भूमिका में इसी बात पर बल देती है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 भी मानती है कि,

> *''शिक्षक की भूमिका अब उसकी ज्ञान के स्रोत के बदले एक सहायक की होगी जो सूचना को ज्ञान/बोध में बदलने की प्रक्रिया में विविध उपायों से शिक्षार्थियों को उनके शैक्षणिक लक्ष्यों की पूर्ति में मदद करें।''* (NCF 2005 ; PP 122)

पहले एक आम धारणा थी कि अगर ज़रूरत पड़े तो शिक्षक विद्यार्थियों को मार सकता है या अन्य तरह की प्रताड़ना दे सकता है, ताकि वे निर्धारित विषयवस्तु सीख पाएँ, लेकिन आज यह माना जाता है कि विद्यार्थियों को किसी प्रकार की प्रताडना न केवल उनके सीखने में व ज्ञान निर्माण में बाधा डालती है, बल्कि उनके मानस को विकृत भी कर देती है। इस परिवर्तन के कारण अकसर शिक्षकों में एक असमंजस की स्थिति पैदा हो जाती है, क्योंकि वे अपने इस नई भूमिका के लिए अपने आप को तैयार नहीं कर पाएँ हैं।

गतिविधि

1. ज्ञानदाता और सहायकर्ता में क्या अंतर होगा? इस पर कक्षा में चर्चा करें।
2. सहायकर्ता बनने के लिए शिक्षकों की किस प्रकार की तैयारी की आवश्यकता है?

शिक्षकों की पेशेवर परिस्थितियों में भी व्यापक बदलाव आ रहा है। साथ ही 90 के दशक में वैश्वीकरण के जिस नए दौर का आगमन हुआ, उससे निजीकरण व उदारीकरण के साथ हर व्यवसाय का अनौपचारीकरण होने लगा है। यानी, काम करने वालों की नियुक्ति अल्पकालीन होती है, उन्हें भविष्यनिधि, स्वास्थ्य सुरक्षा, नियमित वेतन, भत्ते, छुट्टी आदि की पात्रता नहीं होती है। उन्हें अपनी पेशेवर उन्नति के लिए प्रशिक्षण आदि के मौके भी कम मिलता है। जहाँ राजकीय व्यवस्थाएँ थीं वहाँ निजीकरण भी हो रहा है जिसके चलते काम करने वालों की सेवा शर्तें और शिथिल हो जाते हैं। ऐसी प्रवृत्तियों को हम शिक्षा के क्षेत्र में भी देख सकते है।

पिछले दशकों में शिक्षक के स्थान पर पैरा शिक्षक की संकल्पना सामने आई। जिससे कम वेतन और अल्पकालीन नियुक्ति के आधार पर शिक्षण के कार्य को स्वीकृति मिली। इसके परिणामस्वरूप शिक्षकों की व्यावसायिक पहचान प्रभावित हुई और उस व्यवसाय का अनौपचरिकीकरण हुआ। शिक्षक के पद की गरिमा में गिरावट आई और शिक्षा भी प्रभावित होने लगी। कई राज्यों में तो पहले जैसे नियमित शिक्षकों की नियुक्ति न होकर

केवल संविदा नियुक्ति हो रही है।

इसके साथ साथ शिक्षा के व्यापक निजीकरण के चलते शिक्षकों की परिस्थितियाँ में बहुत असर पड़ा है।

गतिविधि

1. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 के अनुसार शिक्षक की भूमिका किस प्रकार की है?
2. स्वतंत्रता पूर्व व वैश्वीकरण के दौर में भारत में शिक्षक की परिस्थितियों में क्या प्रमुख परिवर्तन आए हैं?

5.5.4 शिक्षा में समुदाय की भूमिका

शिक्षा के विस्तार में समुदाय सर्वाधिक प्रभावी भूमिका निभाते हैं आज की परिस्थितियों में विविध समुदायों के प्रभावशाली परिवार एवं सामुदायिक संगठन, न्यास, संस्थाएँ, फाउंडेशन आदि शिक्षा के प्रचार–प्रसार में अपनी विशेष भागीदारी निभा रहे हैं। बालक–बालिकाओं के विकास, उनकी आदतों, व्यक्तिगत विशेषताओं तथा रुचियों पर समुदाय का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार के समुदाय में बालक–बालिका रहते हैं वैसा ही उसका व्यवहार बन जाता है।

शिक्षा की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि समुदाय एवं विद्यालय आपस में समन्वय स्थापित करके काम करें। विद्यालय के सुचारू प्रबंधन के लिए आवश्यक है कि समाज में रहने वाले सभी लोगों का सहयोग विद्यालय को मिले। सभी लोग विद्यालय में होने वाली गतिविधियों में भाग लें व शिक्षकों का पूर्ण सहयोग करें। वहीं विद्यालय प्रबंधन एवं शिक्षकों के लिए आवश्यक है कि जो बच्चे उनके पास आ रहे हैं वे उनकी भावनाओं एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षण कार्य करवाएँ। जिसमें समाज और विद्यालय में सहयोग व समंवय की भावना विकसित होगी। इसमें विद्यालय और समाज दोनों का विकास संभव होगा।

शिक्षक–अभिभावक संघ – विद्यालय एवं समुदाय के मध्य सहयोग बढ़ाने के लिए प्रत्येक विद्यालय में शिक्षक अभिभावक संघ स्थापित होने चाहिए, जिससे अभिभावकों को विद्यालय की गतिविधियों से जोड़ा जा सकें।

सामुदायिक सहभागिता हेतु केंद्र एवं राज्य सरकार के प्रयास – सामुदायिक सहभागिता हेतु समय–समय पर केंद्र एवं राज्य सरकार द्वारा अनेक प्रयास किए गए हैं। जिससे समुदाय एवं स्वैच्छिक संगठनों के साथ मिलकर सामूहिक प्रयास द्वारा शिक्षा के सार्वजनीकरण (मुख्यतः प्राथमिक शिक्षा) को बढ़ावा दिया जा सके। समुदाय से महिला सहभागिता पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार विधेयक 2009 की धारा 21 और राजस्थान निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार नियम 2011 के नियम 3, 4 एवं 5 की अनुपालना में राज्य के समस्त राजकीय एवं सहायता प्राप्त अनुदानित प्राथमिक विद्यालयों में विद्यालय प्रबंधन समिति का गठन किया गया है। समिति में साधारण सभा और कार्यकारिणी समिति होती है।

विद्यालय प्रबंधन समिति और शिक्षक– एक शिक्षक को विद्यालय में शैक्षिक प्रक्रियाओं के समुचित संचालन में अनेक तरह की चुनौतियों का सामना करना होता है, जैसे –

- कक्षा या विद्यालय में किए जाने वाले कार्यों का घर पर अभ्यास करना।
- बच्चों के सीखने की कतिपय गतिविधियों के विषय में अभिभावकों और आस–पास के लोगों से बातचीत करना।
- बच्चों की, विशेषकर बालिकाओं की, विद्यालय में नियमित उपस्थिति सुनिश्चित करना।
- कक्षा में विद्यालय में बालक के व्यवहार में अनेपक्षित बदलाव को समझना।

यदि शिक्षक को समुदाय से, विशेषकर अभिभावकों से, संवाद का मौका मिले तो वे विद्यालय से जुड़ी हुई चुनौतियों का बेहतर तरीके से सामना कर सकते हैं। विद्यालय प्रबंधन समिति शिक्षकों को यह अवसर मुहैया कराती है कि वे शिक्षण में आने वाली उपर्युक्त चुनौतियों पर चर्चा कर बच्चों के शैक्षिक विकास को सुनिश्चित कर सकें।

समिति की बैठक के दौरान यदि शिक्षक समय–समय पर अभिभावकों को बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि के बारे में बताते रहें, तो समुदाय की स्कूल से अपेक्षा भी पूरी होगी और शिक्षक को अपनी चुनौतियों पर चर्चा करने का अवसर भी मिलेगा।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 में भी कहा गया है कि स्कूल, समुदाय को अपने परिसर में बुलाकर बाहरी संसार को पाठ्यचर्चा की प्रक्रियाओं को प्रभावित करने में एक अवसर दे सकता है। स्पष्ट है कि विद्यालय प्रबंधन समिति एक विद्यालय की शैक्षिक प्रक्रियाओं और प्रबंधकीय प्रक्रियाओं के बेहतर समन्वयन और संचालन के लिए एक लोकतांत्रिक उपकरण है।

स्रोत – समझ पत्र (प्रारंभिक शिक्षा में सेवारत प्रधानाध्यापकों एवं शिक्षकों के लिए अध्ययन समाग्री रा.प्रा.शि. परिषद, जयपुर एस.आई.ई.आर.टी., उदयपुर वर्ष 2013)

गतिविधि

विद्यालय एवं समुदाय के बीच किस प्रकार का समन्वय होना चाहिए?इसके क्या उपाय हो सकते हैं?

विद्यालय समुदाय का प्रतिबिंब होता है। कैसे? चर्चा करें।

एक विद्यालय की दो स्तर पर जवाब देही बनती है। एक ओर उसे अभिभावकों की अपेक्षाओं पर खरा उतरकर गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा उपलब्धि करानी है वहीं दूसरी और उसे अपने से ऊपर केंद्रीकृत व्यवस्था को भी संतुष्ट करना होता है। इस दोहरी जवाबदेही के परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक है कि स्थानीय स्तर पर एक ऐसी संस्था हो जो केंद्रीकृत व्यवस्था और विद्यालय की स्थानीय जवाबदेही में समन्वयन कर सें।

समुदाय के लोग अधिक से अधिक शिक्षा की प्रगति में सहयोग करें, इसके लिए क्या प्रयास होने चाहिए?

एक शिक्षक द्वारा समुदायिक सहभागिता के लिए क्या प्रयास किए जा सकते हैं?

सामुदायिक सहभागिता को बढ़ावा देने के लिए केंद्र व राज्य सरकारें क्या प्रयास कर रही है। तथा अभी और क्या प्रयास होने चाहिए?

समेकन

इस इकाई में हमने देखा कि शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए 1990 के दशक से भारत में किस–किस तरह के प्रयास हुए। अब आप जानने हैं कि किसी भी राष्ट्र के लिए शिक्षा का विस्तार, उसकी गुणवत्ता में सुधार और आमजन की शिक्षा तक पहुँच महत्त्वपूर्ण होती है। भारत सरकार ने खुद की पहल से और कुछ अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं व संगठनों की मदद से विविध परियोजनाएँ व कार्यक्रम संचालित किए, जिनमें ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम, सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान उल्लेखनीय हैं। आम तौर पर इनका उद्देश्य वंचित और दूर–दराज के बच्चों की विद्यालय तक पहुँच सुनिश्चित करना, शिक्षा की गुणवत्ता सुधारना और विद्यालयों में मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध, नामांकन और ठहराव दर बढ़ाना था।

हमने देखा कि ज़ि.प्रा.शि.का. में अनेक विद्यालय भवनों को निर्माण हुआ और नामांकन की दर भी बढ़ी। इससे कहा जा सकता है कि शिक्षा तक लोगों की पहुँच बढ़ी है, लेकिन इसके बावजूद शिक्षा की गुणवत्ता में वांछित सुधार न हो सका। इन कार्यक्रमों व नवाचारों में हम पाते हैं कि नियमित शिक्षकों के साथ कम वेतन और कम सुविधाएँ पाने वाले 'पैरा शिक्षक' जैसी व्यवस्थाएँ बनाई गईं। दरअसल ये सरकार द्वारा शिक्षा के खर्च में कटौती के दवाब में लिए गए फैसले हो सकते हैं। इससे विद्यालयों और शिक्षक जगत् में अनेक प्रकार की व्यावहारिक समस्याएँ भी पेश आईं, लेकिन यह स्पष्ट है कि विद्यालयी शिक्षा के सार्वजनीकरण में इस पैरा शिक्षकों की एक उल्लेखनीय भूमिका रही है।

सरकार द्वारा किए गए इन नवाचारों के साथ ही विद्यालयों के विविध कार्यों में समुदाय की भागीदारी भी बढ़ी और अब हम यह देखते हैं कि विद्यालयों के साथ विद्यालय प्रबंध समिति आदि मंचों के माध्यम से समुदाय निरंतर

जुड़ा हुआ है। यह अपने आप में एक क्रांतिकारी कदम है। इसके साथ ही शिक्षकों की जवाबदेही भी बढ़ रही है। अब शिक्षक का यह दायित्व माना जाने लगा है कि वह विद्यालय से जुड़े लगभग हर काम में समुदाय को जोड़ें और किसी ना किसी रूप में उसके प्रति जवाबदेह भी हो।

इस तरह हम देखते हैं कि इन पहलों के जरिए विद्यालयी शिक्षा का प्रसार हो रहा है और साथ ही वह समुदाय के साथ क्रमशः जुड़ती भी जा रही है, किंतु, अभी हमें और लंबा रास्ता तय करना है। शिक्षा का अधिकार कानून इस मार्ग में एक मील का पत्थर है। इसमें शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार, विद्यालय के स्वरूप, उसका प्रबंधन आदि के बारे में स्पष्ट और जनहितकारी प्रावधान किए गए हैं।

अगली इकाई में हम कुछ गैर सरकारी नवाचारों के बारे में जानने का प्रयास करेंगे। आम तौर पर सरकारी और गैर सरकारी, दोनों ही प्रकार के नवाचार आपस में जुड़े हुए हैं और एक–दूसरे से प्रेरित हैं। ये वे नवाचार है जो किन्हीं खास आवश्यकताओं एवं पृष्ठभूमि के कारण शुरू किए गए। इनके मिले–जुले प्रयासों से भारत में शिक्षा का सार्वजनीकरण हो रहा है।

दत्त कार्य

1. अपने आस–पास के किसी विद्यालय में किसी सेवारत शिक्षक या शिक्षका का साक्षात्कार करें जो जिला प्राथमित शिक्षा कार्यक्रम, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा कार्यक्रम या सर्व शिक्षा अभियान से जुड़े रहे हों। उनसे कार्यक्रम के व्यावहारिक कार्यान्वयन, प्रशिक्षण, समुदाय की भागीदारी और जवाबदेही पर कुछ सवाल पूछें और उनके जवाब लिख कर कक्षा में प्रस्तुत करें।
2. अपने पास के किसी विद्यालय की प्रबंध समिति की बैठक में अवलोकनकर्ता के रूप में शामिल हो और पूरी कार्यवाही को दर्ज कर एक रिपोर्ट के रूप में लिखें। उस रिपोर्ट पर विद्यालय प्रधान और कम से कम 2 अभिभावकों की हस्ताक्षर लें।
3. पैरा शिक्षक की भूमिका के विषय कक्षा में चर्चा आयोजित करें और उसकी रिपार्ट लिखें।
4. बच्चों के विद्यालय नहीं आने या बीच में ही छोड़ने के विभिन्न कारणों को जानें एवं इस संदर्भ में अभिभावकों से चर्चा करें। उनके विचारों के आधार पर उन उपायों की सूची बनाएँ जो नामांकन और ठहराव दर बढ़ाने के लिए संभव हो सकते हैं।
5. इस इकाई में वर्णित सभी परियोजनाओं अथवा नवाचारों के उद्देश्य पढ़ें। इनमें, वे कौन से उद्देश्य हैं जो अधिकांश परियोजनाओं में सम्मिलित हैं ? ऐसा क्यों है?
6. अपने पास के ब्लॉक शिक्षा अधिकारी को अपने संस्थान में आमंत्रित कर उनसे डाइस डाटा को एकत्र करने की पूर्ण प्रक्रिया एवं शिक्षा योजना बनाते समय इसके उपयोग को समझें।
7. वर्ष 2010 से राज्य में शिक्षा का अधिकार कानून लागू किया गया है। इस संबंध में राज्य सरकार के स्तर से अब तक किए कार्यों को जानें। क्या उससे वंचित वर्ग के बच्चे लाभान्वित हो रहे हैं ?
8. निकट के एक निजी एवं एक राजकीय विद्यालय के किन्हीं 3 शिक्षकों और 3 अभिभावकों के विचारों को जानें व सूचिबद्ध करें।
9. शिक्षक और समुदाय के रिश्ते पर एक निबंध लिखिए।
10. विद्यालय प्रबंधन समितियों को सशक्त बनाने के लिए क्या–क्या किया जा सकता है? सुझाव दीजिए।
11. उन्नीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश सरकार मामले पर सर्वोच्च न्यायलय के फैसले की प्रति प्राप्त करें। उसकी विवेचना करते हुए बताएँ कि किस प्रकार इस फैसले ने शिक्षा के अधिकार कानून का मार्ग प्रशस्त किया ?
12. ज्योतिबा फुले के शिक्षा के लिए किए गए कार्यों से संबंद्ध सामग्री का अध्ययन करके एक निबंध लिखिए।
13. शिक्षा के अधिकार कानून में शिक्षकों के जो कार्य बताए गए हैं उनके आधार पर किसी विद्यालय (राजकीय अथवा निजी) के शिक्षकों का एक प्रोफाइल तैयार करें और एक प्रतिवेदन बनाएँ।

इकाई–6
शैक्षणिक नवाचार और पहल से परिचय

- परिचय
- उद्‌देश्य
- विषयवस्तु

6.1 देश के अन्य राज्यों में शैक्षिक पहल व नवाचार

- 6.1.1 गुजरात में आश्रम शालाएँ
- 6.1.2 एम.वी. फाउंडेशन हैदराबाद
- 6.1.3 होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम
- 6.1.4 ऋषि वैली प्रयोग

6.2 राजस्थान में शैक्षिक पहल व नवाचार

- 6.2.1 शिक्षाकर्मी परियोजना
- 6.2.2 लोक जुंबिश परियोजना
- 6.2.3 जनशाला कार्यक्रम
- 6.2.4 लहर कार्यक्रम
- 6.2.5 दूसरा दशक परियोजना

- समेकन
- दत्त कार्य

इकाई 6

शैक्षणिक नवाचार और पहल से परिचय

परिचय

पिछले अध्याय में आपने प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए भारत सरकार की ओर से किए जा रहे प्रयासों के अंतर्गत कुछ राज्यों में संचालित कार्यक्रमों तथा अभियानों के बारे में जाना। इन सबके बावजूद राज्यों की अपनी भौगोलिक सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं के कारण सभी बच्चों तक विद्यालयों की पहुँच सुनिश्चित नहीं हो सकी। ऐसे बच्चों विशेषकर बालिकाओं की शिक्षा के लिए विशेष प्रयासों की जरूरत अनुभव की गई। इस अध्याय में हम ऐसे नवाचारों को जानने का प्रयास करेंगे, जो विशेष पृष्ठभूमि एवं आवश्यकताओं के कारण संचालित किए गए।

अन्य प्रदेशों में हुए नवाचारों के अंतर्गत हम आश्रम शालाएँ (गुजरात), होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (मध्यप्रदेश) एम.वी. फाउंडेशन, (हैदराबाद) ऋषि वैली (कनार्टक) प्रयोग तथा राजस्थान में संचालित परियोजनाओं व नवाचारों, शिक्षाकर्मी परियोजना, लोक जुंबिश परियोजना, जनशाला कार्यक्रम, लहर कार्यक्रम तथा दूसरा दशक आदि की चर्चा करेंगे। यहाँ यह जानना जरूरी है कि शैक्षिक नवाचार की पहल क्यों की जाती है?

नवाचार और शैक्षिक परियोजनाओं की एक विशेषता यह होती है कि ये सामान्य तौर पर चल रहे शिक्षण के अलावा होते हैं, या उसमें कुछ नया जोड़ते हैं। कई नवाचार सामान्य तौर पर चल रहे शिक्षण से एकदम अलग भी हो सकते हैं, नवाचार का यह पहलू हम होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में देखेंगे, जिसमें कार्यक्रम के क्षेत्र में शिक्षक प्रशिक्षण, अनुवर्तन, पाठ्यपुस्तक और मूल्यांकन पद्धति को बदल दिया गया था। नवाचारों का उद्देश्य मुख्य रूप से किसी विषय विशेष के शिक्षण को व्यवहार में लागू करके दिखाना होता है। विभिन्न शैक्षिक समस्याओं जैसे नामांकन बढ़ाना, ठहराव सुनिश्चित करना, किसी विशेष समस्याग्रस्त वर्गों के बच्चों की शिक्षा सुनिश्चित करने आदि के लिए भी परियोजनाएँ संचालित की जाती रही हैं, इसके उदाहरण के तौर पर हम गुजरात की आश्रम शालाओं को ले सकते हैं, जिनके द्वारा अनुसूचित जाति व जनजाति के बालक–बालिकाओं की प्रारंभिक शिक्षा सुनिश्चित करने की कोशिश की गई।

राजस्थान में भी लोकजुंबिश परियोजना, शिक्षाकर्मी परियोजना, जनशाला और दूसरा दशक जैसे नवाचारी कार्यक्रम इस बात के उदाहरण हैं। सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था में नवाचारों का योगदान यह रहा है कि किसी एक विशेष क्षेत्र में हुए सफल प्रयोग को व्यापक दायरे में फैलाया जा सकता है। मध्यप्रदेश और तमिलनाडु का गतिविधि आधारित शिक्षण कार्यक्रम (ए. बी. एल.) और राजस्थान का लहर कार्यक्रम इसके उदाहरण हो सकते हैं। इन तीनों ही कार्यक्रमों में ऋषिवैली स्कूल के तरीके को कुछ फेरबदल के साथ अपनाया गया है। नवाचारों और परियोजनाओं का एक उल्लेखनीय पक्ष यह है कि इनमें हर बच्चे तक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पहुँचाने की इच्छा शक्ति दिखाई देती है, खासकर उन बच्चों तक, जो अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति, अलग भाषा, संस्कृति या सामाजिक परम्परा के कारण शिक्षा से वंचित रह जाते हैं।

उद्देश्य

1. प्रारंभिक शिक्षा के विकास व विस्तार में नवाचारों व परियोजनाओं की भूमिका समझना।
2. शैक्षणिक नवाचारों की समालोचना से परिचित होना।
3. वर्तमान शैक्षिक चुनौतियों को समझकर कार्ययोजना बना पाना।

6.1 देश के अन्य राज्यों में शैक्षिक पहल व नवाचार

प्रारंभिक शिक्षा के विस्तार, विकास एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के संदर्भ में देश के अन्य राज्यों के शैक्षिक नवाचारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इन प्रयासों को अन्य राज्यों ने अपनी आवश्यकतानुसार बदलाव के साथ स्वीकार करते हुए अपने यहाँ नवाचार प्रारंभ किये।

इस संदर्भ में हम अन्य राज्यों में हुई शैक्षिक पहल तथा नवाचारों में से गुजरात की आश्रम शालाओं, मध्यप्रदेश के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम आंध्रप्रदेश के एम. वी. फाउंडेशन तथा कृष्णमूर्ति फाउंडेशन के ऋषिवैली स्कूल के बारे में पढ़ेंगे।

6.1.1 गुजरात की आश्रमशाला

गुजरात में अनुसूचित जनजाति की बस्तियाँ मुख्यतः घने जंगलों व पहाड़ी क्षेत्रों में हैं। ऐसे स्थानों पर शैक्षिक सुविधाओं का अभाव अनुसूचित जनजातियों के बालक–बालिकाओं को शिक्षा से वंचित रख सकता है। इनके बीच शिक्षा सुविधाओं का विकास और प्रसार करने के लिए गुजरात सरकार ने सन् 1953–54 में आश्रमशाला योजना को लागू किया। आश्रमशालाओं में अनुसूचित जनजाति के बालक–बालिकाओं के लिए रहने खाने–पीने व शिक्षण की निःशुल्क व्यवस्था की जाती है।

वर्ष 2012–13 में राज्य में कक्षा 1 से 7 के विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए 453 आश्रमशालाएँ संचालित हो रही थीं। इनका संचालन स्वैच्छिक संस्थाओं के माध्यम से किया जा रहा था। इसके अलावा कक्षा 9–10 के विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए 86 उत्तर बुनियादी आश्रमशालाएँ तथा कक्षा 11–12 के लिए 10 उच्चतर उत्तर बुनियादी आश्रमशालाएँ संचालित थीं। इस तरह कुल 549 आश्रमशालाएँ संचालित हो रही थी। 2012–13 में आश्रमशालाओं मे बच्चों की कुल संख्या 59748 थी। 86 उत्तर बुनियादी आश्रमशाला तथा 10 उच्चतर उत्तर बुनियादी आश्रमशालाओं में विद्यार्थियों की संख्या 12858 थी, इनमें 6510 बालक और 6348 बालिकाओं का नामांकन था। आश्रम शालाओं में 10 प्रतिशत स्थान स्थानीय गाँव के विद्यार्थियों के लिए आरक्षित होते हैं।

आश्रमशालाओं में प्रथम वर्ष में कक्षा एक में कुल 30 विद्यार्थी दर्ज किए जाते हैं, जिनमें 15 बालक व 15 बालिकाओं को प्रवेश दिया जाता है। इसके पश्चात प्रतिवर्ष 10 बालक व 10 बालिकाओं को प्रवेश दिया जाता है। आश्रमशालाओं में बालकों को खेती और बालिकाओं को धागा बनाना व कम भूमि में बागवानी करना सिखाया जाता है।

आश्रमशाला में प्रति विद्यार्थी 31000 रुपये खर्च किए जाने का प्रावधान है। इससे बच्चों के लिए भोजन, आवास, वस्त्र और शैक्षिक सुविधाओं जैसे पुस्तकें, लेखन सामग्री, शिक्षण सहायक सामग्री इत्यादि की व्यवस्था की जाती है।

आश्रमशालाओं के भवन निर्माण के लिए 50 प्रतिशत राशि केंद्र सरकार और 50 प्रतिशत राज्य सरकार द्वारा खर्च की जाती थी, अब केंद्र सरकार द्वारा वित्तीय सहायता बंद कर दी गई है। इसलिए इनका पूरा खर्च राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाता है।

आश्रमशालाओं की वर्तमान स्थिति

आश्रमशालाओं द्वारा युवाओं में प्रशिक्षण द्वारा व्यावसायिक कौशल विकसित किया जा रहा है, ताकि वे खुद का व्यवसाय शुरू कर पाएँ। इसी कारण व्यवसायिक प्रशिक्षण केंद्रों के पाठ्यक्रम में सुधार किया गया है। बुनियादी प्रशिक्षण केंद्र को उद्योग केंद्रित कौशल विकास केंद्र के रूप में विकसित किया जाएगा।

बच्चों की स्वास्थ्य जाँच, मध्याह्न भोजन पालन–पोषण योजना का भी व्यावहारिक रूप में प्रयोग किया जा रहा हैं। इस योजना के अंतर्गत अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों में उच्च शिक्षा की आकांक्षाएँ बढ़ने के कारण कॉलेज जाने वाले विद्यार्थियों के लिए छात्रावास खोले जाएँगे।

गतिविधि

- राजस्थान में संचालित कौन से काम आश्रमशाला से मिलते जुलते हैं? जानकारी प्राप्त कर दोनों के अंतर को समझें?

6.1.2 एम.वी. फाउंडेशन, हैदराबाद (आंध्रप्रदेश)

पृष्ठभूमि – भारत में आज भी हम सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य से दूर हैं। इस प्रयास में हैदराबाद स्थित गैर सरकारी संगठन एम.वी. फाउंडेशन का कार्य उल्लेखनीय रहा है जिसने बालश्रमिकों की तथा स्कूल न जाने वाले बच्चों की स्कूली पहुँच हेतु गम्भीर प्रयास किए हैं। एम.वी. फाउंडेशन मानता है कि 6 से 14 साल के जो भी बच्चे विद्यालय में दर्ज नहीं हैं, वे सब बाल मजदूर हैं।

परिचय – एम.वी. फाउंडेशन की स्थापना सन् 1981 में शिक्षाविद एवं इतिहासकार प्रो. मामिडीपुडी वैंकटरंगैया की स्मृति में की गई। यह फाउंडेशन बालश्रम को रोकने के लिए युवाओं के क्षमतावर्धन का कार्य करता है। आंध्रप्रदेश के रंगारेड्डी जिले में बालश्रम की इस समस्या ने जब लोगों का ध्यान खींचा तो इसके समाधान के लिए एम.वी. फाउंडेशन की स्थापना की गई। इस फाउंडेशन की सचिव शांता सिन्हा के अनुसार– ''बच्चों के लिए सही जगह विद्यालय है। बच्चों को बालश्रमिक बनाने के बजाय विद्यालयों में ही भेजा जाए।'' एम.वी. फाउंडेशन प्रत्येक बच्चे के अधिकारों के बारे में बात करता है और उन्हें पूर्णकालिक औपचारिक शिक्षा देने का समर्थन करता है। यह बच्चों के लिए ऐसी व्यवस्था करता है कि वे श्रम कार्य से हटकर विद्यालयी शिक्षा से जुड़ें।

एम.वी. फाउंडेशन ने शिक्षा के लिए समाज को संगठित करने के क्रम में समाज के सभी वर्गों को भागीदार बनाया है। इसमें शामिल किए गए भागीदार कई तरह के है, जिनमें अभिभावक से लेकर लगभग पूरा ग्राम समाज, निर्वाचित प्रतिनिधि बच्चों को रोजगार देने वाले और सबसे महत्त्वपूर्ण, शिक्षक और शिक्षा अधिकारी सम्मिलित है। इस पूरी प्रक्रिया में सबसे महत्त्वपूर्ण गाँवों के वे शिक्षित युवक–युवतियाँ हैं जिन्हें संगठन ने शिक्षा कार्यकर्ता के रूप मे प्रभावशाली ढंग से संगठित किया है। इस फाउंडेशन के निम्नलिखित उद्देश्य रहे हैं–

उद्देश्य

1. औपचारिक शिक्षा का सार्वजनीकरण करना।
2. विद्यालय एवं विद्यालय के बाहर 5 से 14 वर्ष के बच्चों के शैक्षिक अधिकारों के प्रति जागरूक बनाना।
3. शिक्षा से वंचित एवं विकास की संभावनाओं से दूर बच्चों को शिक्षा के अवसर उपलब्ध करवाना।

आवासीय ब्रिज कैंप का आयोजन – एम.वी. फाउंडेशन विविध तरीकों के माध्यम से बच्चों को स्कूल और उनकी उम्र अनुसार कक्षा तक पहुँचाने का कार्य करता है। इसके लिए एम.वी. फाउंडेशन आवासीय ब्रिज कैम्प करता है। ये कैम्प शिक्षा से वंचित बच्चों को चिह्नित कर उन्हें एक ऐसा समायोजन काल प्रदान करते हैं जिससे कि वे बचपन, परिवार, समाज और विद्यालय के साथ समायोजित हो सकें। ब्रिज कैंप में बच्चे 18 माह तक आवश्यकतानुरूप रहकर अपनी आयु के अनुसार दक्षता प्राप्त करते हैं। एम.वी. फाउंडेशन का मानना है कि जब तक बच्चों को उनके अपने परिवेश से दूर न किया जाए, उन पर फिर से काम करने का दबाव बना रहता है, जिसे रोक पाना कठिन होता है। यदि बच्चा दूर होगा तो परिवार अपने आप उन दायित्वों को पूरा करने का विकल्प खोजेगा जिसका भार वर्तमान में बच्चा उठा रहा है।

उपलब्धियाँ – एम. वी. फाउंडेशन के प्रयासों से लगभग 4 लाख 20 हजार बच्चे विद्यालयों में नामांकित किए गए। फाउंडेशन द्वारा 6000 से ज्यादा गाँवों में आवासीय ब्रिज कैम्प क्रियान्वित किए गए जिनसे लगभग 45000 बालश्रमिक लाभांवित हुए। देश में कस्तूरबा गाँधी आवासीय बालिका विद्यालयों की अवधारणा इनके ब्रिजकोर्स आधारित शिक्षण का ही विस्तृत रूप है। केंद्र व राज्यों द्वारा इसकी अवधारणाओं से प्रेरित होकर विविधि परियोजनाओं का क्रियावयन किया गया।

बाल अधिकार सुरक्षा फोरम CRPF (Child rights Protection Forum) और बाल श्रम रोको अभियान के अनुसार एम. वी. फाउंडेशन ने बालश्रम के विरुद्ध खड़ा होने के लिए समुदायों को सफलतापूर्वक प्रेरित किया। उसने समुदाय

को यह समझाने में सफलता हासिल की कि स्कूल जाना बच्चों का मौलिक अधिकार है।

समेकन :– एम.वी. फाउंडेशन ने यह संभावना प्रदर्शित की कि औपचारिक शिक्षा व्यवस्था व्यापक सामाजिक मुद्दों का समाधान दे सकती है। राजस्थान की लोकजुंबिश परियोजना, जि. प्रा. शि. कार्यक्रम तथा मुंबई की प्रथम जैसी संस्थाओं ने बाल श्रमिकों की समस्याओं को सुलझाने में एम.वी. फाउंडेशन के अनुभवों से बहुत मदद ली है।

गतिविधि

आप इस बात से सहमत हैं या असहमत, कि 6 से 14 साल के जो बच्चे शाला से बाहर हैं, वे सभी बाल श्रमिक हैं?

6.1.3 होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (होविशिका)

भारत में विज्ञान शिक्षा में परिवर्तन की संभावनाओं को उजागर करने के साथ–साथ परिवर्तन की दिशा व उसके क्रियांवयन के विभिन्न आयामों के संदर्भ में काम करने की ज़रूरत साठ के दशक में महसूस की गई। इसी दौरान 1972 में मध्य प्रदेश में दो स्वैच्छिक संस्थाओं – किशोर भारती और फ्रेंड्स रूरल सेंटर ने राज्य शासन के समक्ष सरकारी मिडिल स्कूलों में विज्ञान शिक्षा में नवाचार करने का प्रस्ताव दिया जिसे शासन ने मंजूरी दे दी।

उपर्युक्त प्रस्ताव के आधार पर होशंगाबाद जिले के 16 स्कूलों के शिक्षक, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च के वैज्ञानिक, ऑल इंडिया साइंस टीचर्स एसोसिएशन के सदस्य तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के अध्यापक दोनों संस्थाओं द्वारा उपलब्ध कराए गए मंच पर साथ आए। यहीं से शुरूआत हुई एक शैक्षिक उत्सव की जिसमें लोगों ने मिलकर विज्ञान शिक्षा को बच्चों के लिए एक सार्थक व आनंददायी अनुभव बनाने के लिए प्रयास किये।

होविशिका (होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम) की सबसे बड़ी खूबी और उपलब्धि यही है कि इसने समूचे देश में शिक्षा के क्षेत्र में सृजनात्मक ऊर्जा को मुक्त किया और उसे एक मंच दिया। इस कार्यक्रम में शामिल हर व्यक्ति सीखने–सिखाने की एक मिली–जुली प्रक्रिया में भागीदार रहा। खोज व पर्यावरण पर आधारित इस कार्यक्रम में बच्चे अपने पर्यावरण से अंतर्क्रिया करते हुए प्रयोग करके ऐसी परिकल्पनाएँ गढ़ते थे जिनको वे जाँच सकें। यह संभवतः पहली बार था कि माध्यमिक कक्षाओं में बच्चे रटंत प्रणाली से मुक्त, समूह में बैठकर प्रयोग करते थे, उनका विश्लेषण करके निष्कर्ष निकालते थे, विज्ञान के सिद्धांत सीखते थे और आनंद उठाते थे।

उद्देश्य

विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के निम्नलिखित उद्देश्य थे –

1. विज्ञान शिक्षण का उद्देश्य मात्र जानकारी प्राप्त करना न होकर, अवधारणाओं की समझ विकसित करना।
2. विज्ञान की अवधारणाओं को वैज्ञानिक तरीकों जैसे स्वयं करना, आँकड़े इकट्ठे करना और उनका विश्लेषण करके निष्कर्ष निकालते हुए समझना।
3. विज्ञान शिक्षण में शिक्षक की भूमिका को सहायक की बनाते हुए बच्चों को स्वयं करके सीखने में मदद करना,
4. विज्ञान शिक्षण को आनंददायी बनाना, सीखने की प्रक्रिया को सरल बनाना व बच्चों को जिज्ञासु बनाना।

होविशिका की मुख्य गतिविधियाँ

1. **नवाचार पाठ्यक्रम एवं शिक्षण सामग्री का सतत विकास**– शिक्षकों तथा छात्रों द्वारा दी गई प्रतिक्रियाओं के आधार पर पाठ्यपुस्तकों में कई संशोधन किए गए। पाठ्यक्रम बच्चों के अनुकूल बातचीत की शैली के आधार पर बनाया गया। पुस्तकों में बच्चों के परिचित शब्दों का प्रयोग किया गया और आवश्यकतानुसार धीरे–धीरे बच्चों के समक्ष मानक शब्दावली प्रस्तुत की गई।
2. **शिक्षक प्रशिक्षण**– प्राथमिक स्तर पर बड़ी संख्या में विज्ञान के शिक्षकों में विज्ञान के प्रयोग तथा अवधारणा संबंधित समझ का अभाव था। इसके लिए शिक्षक प्रशिक्षण के अंतर्गत शिक्षकों में अवधारणात्मक समझ, प्रयोग,

गतिविधियाँ, विश्लेषण, विमर्श, निष्कर्ष तक पहुँच आदि बिंदु शामिल किए गए।

3. **स्रोत समूह तैयार करना**— इस कार्यक्रम के तहत 200 मिडिल तथा सैकेंडरी शिक्षकों का एक स्रोत समूह तैयार किया गया, जिनसे शिक्षकों को मार्गदर्शन करने में तथा बाल वैज्ञानिक पुस्तक को विकसित करने में सहयोग लिया गया। साथ ही उनकी भूमिका शिक्षक सहजकर्ता की मासिक बैठक, वार्षिक मूल्यांकन के टेस्ट पेपर, मूल्यांकन दिशा निर्देश तैयार करना आदि में भी थी।
4. **परीक्षा प्रणाली एवं मूल्यांकन पद्धति में सुधार**— शिक्षा में कौशल दृष्टिकोण विकास, समस्या समाधान क्षमता तथा अवधारणात्मक समझ विकसित करना ही मूल्यांकन पद्धति के आधार थे।
5. **स्कूलों के लिए किट सामग्री उपलब्ध करना**— हो.वि.शि.का. ने इस मिथक को गलत साबित किया कि गरीब देशों में प्रायोगिक आधार पर विज्ञान शिक्षण काफी महँगा होता है। इसके लिए इस कार्यक्रम में कम खर्च पर वैज्ञानिक उपकरणों का विशेष विज्ञान किट बनाया गया।
6. **शैक्षणिक एवं प्रशासनिक संरचना तैयार करना**— इस कार्यक्रम के तहत एक प्रशासनिक विकेंद्रीकृत ढाँचा तैयार किया गया। इसमें स्कूल प्रबंधन के कार्य संशोधित किए गए, जैसे— बच्चों को पारंपरिक तरीके से हटाकर 4 समूह में बिठाना, समय सारणी में बदलाव, ब्लॉक, ज़िला तथा राज्य स्तर पर समन्वय केंद्र बनाना। इससे बच्चों की आपस में बातचीत तथा समझ—साझेकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा मिला।
7. **अध्ययन सहगामी प्रयास**— इस कार्यक्रम के अंतर्गत बच्चों को कक्षा के बाहर सीखने के अवसर बढ़ाने के लिए अलग तरह के अध्ययन सहगामी प्रयास किए गए, जैसे— बच्चों की मासिक पत्रिका चकमक का प्रकाशन, पुस्तकालय का संचालन, बाल मेला, प्रदर्शनी आदि।

होविशिका की प्रमुख विशेषताएँ

होविशिका के पाठ्यक्रम की विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

1. पाठ्यक्रम गतिविधि आधारित हो, जिसमें बच्चे खुद प्रयोग करें। केवल शिक्षक द्वारा प्रयोग करके दिखा देने से काम नहीं चलेगा। बच्चे आपस में प्रयोग करके चर्चा करें। इस आपसी चर्चा से बच्चे धीरे—धीरे विज्ञान के सिद्धांत निकालें और वैज्ञानिक सिद्धांतों की ओर बढ़ें।
2. पाठ्यक्रम बच्चों के पर्यावरण से संबंधित होना चाहिए। स्कूली शिक्षण को पर्यावरण से जोड़ने के लिए परिभ्रमण को पाठ्यक्रम का अंग बनाया गया।
3. बच्चों में अध्याय के उद्देश्य की समझ बने, वे इससे जुड़ी अन्य बातों पर विचार व अध्ययन करें और खोजबीन की प्रक्रिया को समझें।
4. पाठ्यक्रम का एक अहम हिस्सा यह था कि बच्चे अपने शब्दों में अपने अनुभवों को व्यक्त करें तथा प्रयोग के पश्चात प्रश्नों के उत्तर खुद अपने शब्दों में लिखें।
5. पाठ्यक्रम में इस बात पर भी ज़ोर दिया गया कि हस्त कौशल का विकास हो और बच्चे खुद से प्रयोग सामग्री बनाएँ।
6. पाठ्यक्रम में आँकड़ों के महत्त्व पर काम किया गया, जैसे— आँकड़े क्या होते हैं ? कैसे इकट्ठे किए जाते हैं ? कैसे उनका विश्लेषण कर व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किए जाते हैं।
7. पाठ्यक्रम में समूहीकरण की प्रक्रिया व उसके उपयोग पर काफी ज़ोर दिया गया।
8. कार्यक्रम पूरी तरह प्रयोग व गतिविधि आधारित था, पाठ्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण अंग कम लागत का विज्ञान किट होता था।

9. छात्रों का मूल्यांकन भयमुक्त वातावरण में खुली पुस्तक परीक्षा तथा प्रयोग विधि से किया जाता था।

समेकन

होविशिका के काम का असर देश और प्रदेश में विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों पर पड़ा, इसके प्रभाव में विज्ञान शिक्षण को प्रयोग और गतिविधि आधारित किया जाने लगा। देश की कई संस्थाओं ने इस तरीके को अपनाया। विज्ञान की अवधारणाओं को समझने के लिए कम लागत की सामग्री को इस्तेमाल करने का चलन भी बढ़ा।

गतिविधि

1. विज्ञान शिक्षा के उद्देश्य क्या होने चाहिए?
2. अपने पास के किसी उच्च प्राथमिक विद्यालय में जाकर पता करें कि वहाँ विज्ञान के प्रयोग करने की सामग्री उपलब्ध है या नहीं, अगर उपलब्ध है तो वे इसका प्रयोग किस प्रकार करते हैं?

6.1.4 ऋषिवैली स्कूल

परिचय – जिद्दू कृष्णमूर्ती एक दार्शनिक समाजसेवी एवं लेखक थे, जिन्होंने शिक्षाशास्त्र पर भी कई किताबें लिखी हैं। उन्होंने सन् 1926 में ऋषिवैली स्कूल स्थापित किया, जिस पर श्रीमती एनीबीसेंट के विचारों का भी प्रभाव रहा। ये एक आवासीय विद्यालय है, जिसे कृष्णमूर्ती के शिक्षाशास्त्रीय लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर खोला गया। ऋषि वैली 375 एकड़ में फैला हुआ है और चारों तरफ से पहाड़ियों से घिरा हुआ है, इसके निकट छोटे–छोटे गाँव स्थित है। कक्षा के अंदर और बाहर (अंतः संवाद), समूह बैठक एवं समूह चर्चा इस विद्यालय की विविध गतिविधियाँ हैं। सामुदायिक सेवाएँ और लिखित गतिविधियाँ शिक्षण के महत्त्वपूर्ण हिस्से हैं। यह विद्यालय प्रदूषणविहीन, प्राकृतिक घाटी में स्थित है। यहाँ पर विद्यार्थी एवं शिक्षकों के मध्य संबंध गहरे एवं अनौपचारिक होते है। विद्यार्थी अपने सामाजिक एवं भावनात्मक संबंधों के विकास के लिए शिक्षकों पर निर्भर होते हैं।

शिक्षा जगत में इस विद्यालय को भारत का सर्वश्रेष्ठ आवासीय विद्यालय बताया गया है।

ऋषि वैली के प्रमुख उद्देश्य

- गतिविधि आधारित शिक्षण प्रदान करना, ताकि बच्चे विविध विधाओं से परिचय प्राप्त कर सकें।
- इसका दूरगामी उद्देश्य विद्यालय में ऐसा पर्यावरण प्रदान करना है, जिसमें एक बच्चा संपूर्ण मनुष्य बन सके।
- प्रकृति से तादात्म्य स्थापित कर सौंदर्य की सही परिभाषा विकसित करना, जिससे वे समाज व जीवन का सही अर्थ समझ सके।
- व्यक्तिगत विश्वास, धर्म, राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन का सही अर्थ समझे व निःसंकोच अपने प्रश्नों का उत्तर ढूँढ सके।

अनुगामी विद्यालयों का संचालन

ऋषिवैली द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में कई अनुगामी विद्यालय खोले गये हैं जो इसकी शिक्षण पद्धति के अनुसार काम कर रहे हैं, इनमें एक विद्यालय'' वाल्मीकि वनम्'' है। इस विद्यालय के वातावरण के बारे में ''सरकारी स्कूल में सुधार प्रयास'' (बुक्स फार चेंज) द्वारा प्रकाशित पुस्तक में कहा गया है–

चमेली की सुगंध, हरियाली भरा वातावरण और मिट्टी के बने दो बड़े घोड़े प्रवेश द्वारा पर हमारा स्वागत करते हैं। स्कूल साधारण से एक कमरे की इमारत है जो एक बड़ी खिड़की से सुप्रकाशित है। यहाँ स्कूल के प्रति स्थानीय समाज की अपनत्व की भावना उल्लेखनीय है जिसके कारण चोरी का कोई डर नहीं। आखिर इन्हीं लोगों ने विद्यालय के लिए भूमिदान की है और उन्होंने ही इसे हरा–भरा बनाया है।

कमरे के अंदर हाथ से बनी रंग–बिरंगी कलाकृतियाँ छत से लटकी दिखती है, इनमें बच्चों द्वारा बनाए गए चित्र, मुखौटे और कोलाज हैं। दीवार से लगी एक साफ सुथरी अलमारी में कार्डों के बॉक्स रखे हैं और दूसरी दीवार पर सीखने की चार सचित्र सीढ़ियाँ लटकी हैं। इनकी व्यवस्था हर कक्षा में सीखने के क्रम के हिसाब से की गई है, हरेक का रंग अलग हैं। ....बच्चे पंक्तिबद्ध होकर नहीं बैठे हैं जो कि प्राथमिक स्कूलों की विशेषता है वरन् छोटे–छोटे समूहों में बैठे हैं और अपनी–अपनी गतिविधियों में तल्लीन हैं, वे चुपचाप नहीं बैठे हैं, लेकिन शोर भी नहीं कर रहे हैं।

शिक्षण पद्धति

ऋषि वैली के विद्यालयों में समूह आधारित शिक्षण किया जाता है जिसमें सभी कक्षा व मिश्रित आयु के बच्चे होते हैं। कार्डो और समूह का वर्गीकरण बच्चों के सीखने के स्तर के आधार पर किया जाता है।

बच्चे जिन कार्डों पर काम करते है वे विषय, गतिविधि स्तर और कक्षा के अनुसार बनाए जाते हैं। भाषा के लिए ''पशुकार्ड'' गणित के लिए ''पक्षीकार्ड'' और पर्यावरण शिक्षा के लिए ''कीट पतंग कार्ड'' का प्रयोग होता है। कार्ड का रंग वहीं होता है जो उस कक्षा का स्तर होता है।

इसमें हर बच्चा अपनी गति और स्तर के अनुसार सीख सकता है। एक गतिविधि सीखने पर वह अगली गतिविधि करने के लिए कार्ड उठा लेता है। अगली कार्ड की गतिविधि के लिए उसे अपना समूह बदलने की आवश्यकता हो सकती है या शिक्षक/शिक्षिका से संवाद करना पड़ सकता है। इस तरह हर बच्चा अपनी क्षमता के अनुसार बढ़ता है और अध्यापक उन समूहों के साथ काम करता है जहाँ उसकी आवश्यकता है।

कनार्टक शासन ने ऋषि वैली की अवधारणा को 6000 स्कूलों में लागू किया है। राजस्थान में चलाए गए लहर कार्यक्रम तथा तमिलनाडु और मध्यप्रदेश के ए. बी. एल कार्यक्रम की मूल अवधारणा भी ऋषि वैली से ही ली गई है।

समेकन

सार रूप में हम कह सकते हैं कि 19 वीं शताब्दी के अंत व 20 वीं शताब्दी में शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के साथ–साथ स्तरीय शिक्षण का ढाँचा एक आदर्श बन गया। यह व्यवस्था स्कूल कक्षा व पाठ्यक्रम के संयोजन पर हावी हो गयी। एक आयु वर्ग के लिए एक कक्षा वाली व्यवस्था की बात इतनी दृढ़ता से हमारे मन में बैठ गई है कि हम यह समझते हैं कि स्कूल चलाने का यही एक मात्र या सबसे अच्छा तरीका है। बहुस्तरीय समूह आधारित ऋषि वैली शिक्षण कार्यक्रम की उपलब्धियाँ यह बताती हैं कि एक कक्षा के लिए एक शिक्षक वाली व्यवस्था का प्रभावी विकल्प हो सकता है। चुनौती यह है कि इसे व्यापक स्तर पर कैसे लागू किया जाए। बहुस्तरीय समूह आधारित शिक्षण स्वीडन फिनलैण्ड और आस्ट्रेलिया जैसे देशों में भी स्कूली शिक्षा का आवश्यक अंग है। तथ्य यह है कि भिन्न आयु समूह के बीच बच्चे अच्छी तरह सीखते हैं और भावनात्मक रूप से सुरक्षित महसूस करते हैं।

गतिविधि

प्राथमिक कक्षाओं अर्थात् पहली से पाँचवीं तक हर कक्षा के लिए एक शिक्षक हों या पहली से पाँचवीं तक दो या तीन शिक्षक हों?गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए इनमें से क्या उचित है, तर्क दीजिए?

6.2 राजस्थान में शैक्षिक पहल व नवाचार

अब तक हमने अन्य प्रदेशों में हुए नवाचार व कार्यक्रमों पर बात की। अब हम राजस्थान में संचालित कार्यक्रमों के बारे में जानेंगे। इनमें हम देख सकेंगे कि राज्य में संचालित रहे इन कार्यक्रमों में खासतौर से यहाँ की विशिष्ट भौगौलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए प्रयास किए गए हैं।

6.2.1 शिक्षाकर्मी परियोजना

पृष्ठभूमि

राजस्थान में भौगौलिक परिस्थितियों की विविधता है, यहाँ की विषम भौगालिक परिस्थितियों के कारण सरकारी विद्यालय खोलने के पश्चात भी 6 से 14 आयु वर्ग के बालक–बालिका शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। इन परिस्थितियों में स्थानीय जनशक्ति, स्रोत और स्थानीय हितों को विकसित कर शिक्षा का स्तर बढ़ाए जाने हेतु 1987 में शिक्षाकर्मी परियोजना लागू की गई। इसे स्वीडिश इंटरनेशनल डेवलपमेंट एजेन्सी (सीडा) के वित्तीय सहयोग से प्रारंभ किया गया।

इस परियोजना का लक्ष्य प्राथमिक शिक्षा को राजस्थान के सुदूर और आर्थिक सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए गाँवों के बच्चों तक पहुँचाना था। जिसमें प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन, उपस्थिति एवं ठहराव में जन सहभागिता से सुधार लाना एवं गुणवत्ता बढ़ाना शामिल था। मूलतः इस विचार पर काम स्वैच्छिक संगठन ''समाज कार्य एवं अनुसन्धान केंद्र'' (एस.डब्ल्यू.आर.सी.) ने सिलोरा, जिला अजमेर में किया था। सिलोरा में हुए प्रयोग की भाँति शिक्षाकर्मी परियोजना में भी अध्यापकों के स्थान पर गाँव के स्थानीय निवासियों को शैक्षिक कार्यकर्ताओं के रूप में रखा गया, जिन्हें शिक्षाकर्मी पदनाम दिया गया।

परियोजना के अंतर्गत राज्य सरकार द्वारा खोले गए प्राथमिक विद्यालयों में से समस्याग्रस्त प्राथमिक विद्यालयों का अधिग्रहण किया जाता था। साथ ही विद्यालय विहीन ग्रामों/ढाणियों में नवीन शिक्षाकर्मी एवं प्राथमिक विद्यालय खोलकर प्राथमिक शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराई जाती थी। इन प्राथमिक विद्यालयों में उसी गाँव के दो युवक–युवतियों का चयन ग्रामवासियों के माध्यम से किया जाता था। इनको विशेष प्रशिक्षण के बाद नियुक्ति दी जाती थी। पहले से कार्यरत शिक्षकों को पंचायत समिति के अन्यत्र स्कूल में स्थानांतरित कर दिया जाता था। विद्यालय को सुव्यवस्थित चलाने का सम्पूर्ण दायित्व दोनों शिक्षाकर्मियों को सौंप दिया जाता था। ये शिक्षाकर्मी दिन में दिवस विद्यालय चलाते और दिवस–विद्यालय में नहीं आने वाले बालक–बालिकाओं की सुविधा को ध्यान में रखकर रात्रि में या अन्य उचित समय में प्रहर पाठशालाओं का संचालन करते थे।

परियोजना के उद्देश्य

- दूरदराज के इलाकों में रह रहे शिक्षा से वंचित बालक–बालिकाओं तक शिक्षा की पहुँच बनाना।
- विद्यालय छोड़ चुके या बीच में विद्यालय छोड़कर जाने वाले बच्चों के लिए शिक्षा की अनौपचारिक व्यवस्था करना।
- विद्यालय संचालन में स्थानीय समुदाय/ग्रामवासियों की भागीदारी सुनिश्चित करना।
- शिक्षा से वंचित बालिकाओं की शिक्षा सुनिश्चित करना।
- स्थानीय युवक–युवतियों को प्रशिक्षित कर उन्हें शिक्षक की भूमिका निभाने के लिए तैयार करना।
- सतत् अनुवर्तन और प्रभावी शिक्षक संबलन की व्यवस्था करना।

परियोजना की अवधारणा के तीन मुख्य सूत्र इस प्रकार हैं–

- स्थानीय व्यक्ति, सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रभावी ढंग से कार्य कर सकता है।
- जिनमें भी सीखने की ललक और काम करने की लगन है उन्हें प्रभावी प्रशिक्षण दिया जाए तो वे दक्षता और योग्यता के साथ शिक्षक की भूमिका निभा सकते हैं।
- किसी भी क्षेत्र की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए समुदाय तथा अभिभावकों की भागीदारी एवं

सहयोग आवश्यक है।

परियोजना की प्रमुख गतिविधियाँ

अनियमित रूप से खुलने वाले विद्यालयों का अधिग्रहण

अनियमित खुलने वाले और अप्रभावी विद्यालयों का शिक्षाकर्मी परियोजना के अंतर्गत अधिग्रहण किया गया, इसके आधार इस प्रकार थे–

- ऐसे विद्यालय जो अनियमित थे व नियत समय पर नहीं खुलते थे।
- बालक–बालिकाओं की उपस्थिति एवं ठहराव कम था।
- शैक्षिक स्तर बहुत कम था।
- ग्रामवासी इस परियोजना को स्वीकारते हों तथा पंचायत समिति ऐसे विद्यालय को योजनान्तर्गत देने को तैयार हों।

विद्यालय विहीन ग्रामों में नया विद्यालय खोलना :– परियोजना के अंतर्गत उन गाँवों/मजरों/ढाणियों/फलियों को चुना गया जहाँ विद्यालय नहीं हैं। ग्रामवासी या अन्य द्वारा विद्यालय भवन उपलब्ध कराने पर तथा वांछित आबादी होने पर (मरुस्थलीय एवं पहाड़ी क्षेत्रों में 150 या अधिक और मैदानी क्षेत्रों में 250) नए विद्यालय खोले गए। उन स्थानों पर भी नए विद्यालय खोले गए जहाँ निकटतम विद्यालय की दूरी प्रस्तावित विद्यालय से 1 किलोमीटर से अधिक हो अथवा वह नदी–नाले से बाधित हो।

आँगन पाठशालाएँ :– बालिकाओं को अपने घर के निकट ही शिक्षा सुलभ कराने की दृष्टि से आँगन पाठशालाएँ खोली गई। आँगन पाठशाला खोलने के लिए कम से कम 15 बालिकाओं का होना अनिवार्य रखा गया। इसके लिए पाठशाला हेतु भवन तथा महिला शिक्षाकर्मी का गाँव में होना आवश्यक था।

प्रहर पाठशाला :– जो बालक–बालिका स्कूल समय में अन्य कामों में व्यस्त रहने के कारण विद्यालय नहीं जा रहे थे, उनके लिए प्रहर पाठशालाएँ चलाईं गई। इनके समय का निर्धारण ग्राम शिक्षा समिति के परामर्श से विद्यार्थियों की सुविधानुसार किया गया। प्रहर पाठशाला प्रतिदिन 2–3 घंटे संचालित की जाती थी।

प्रदर्श 6.2 प्रहर पाठशाला में अध्ययन करती हुई बालिकाएँ



महिला सहयोगी/महिला मार्गरक्षी :– जो बालक–बालिकाएँ अपने छोटे भाई–बहिनों को संभालने के कारण विद्यालय नहीं जा पाती थी, उनकी देखभाल करने के लिए महिला मार्गरक्षी को नियुक्त किया गया। यह महिला गाँव की अधेड़ उम्र साक्षर या अनपढ़ महिला हो सकती थी जो ऐसी बालिकाओं को उनके छोटे भाई–बहिनों के साथ घर से बुलाकर विद्यालय में ले जाती थीं।

महिला शिक्षाकर्मी प्रशिक्षण :– बालिकाओं का नामांकन बढ़ाने के लिए महिला शिक्षाकर्मी तैयार करने हेतु पाठ्यक्रम बनाया गया। इस पाठ्यक्रम में साक्षर महिलाओं का चयन उसी गाँव से किया जाता था, जहाँ विद्यालय प्रस्तावित है। उन्हें 6 माह, एक वर्ष तथा 2 वर्ष के आवासीय पाठ्यक्रम में आवश्यकतानुसार शिक्षण कराया जाता था। कक्षा 5 की योग्यता विकसित होने पर उन्हें 37 दिवसीय प्रशिक्षण में भेजा जाता। वहाँ सफल होने पर उन्हें शिक्षाकर्मी के रूप में कार्य करने के लिए नियुक्त किया जाता था।

शिक्षाकर्मी की पात्रता व दायित्व :– शिक्षाकर्मी उसी गाँव के युवक/युवती होते थे उनकी न्यूनतम योग्यता युवक

के लिए 8वीं पास तथा युवती के लिए 5वीं पास रखी गई। इनके चयन का मुख्य आधार उनकी कार्य में रुचि, लगन, निष्ठा और सामाजिक कार्यकर्ता होने की योग्यता आदि थी। शिक्षाकर्मी को निम्न कार्य करने होते थे–

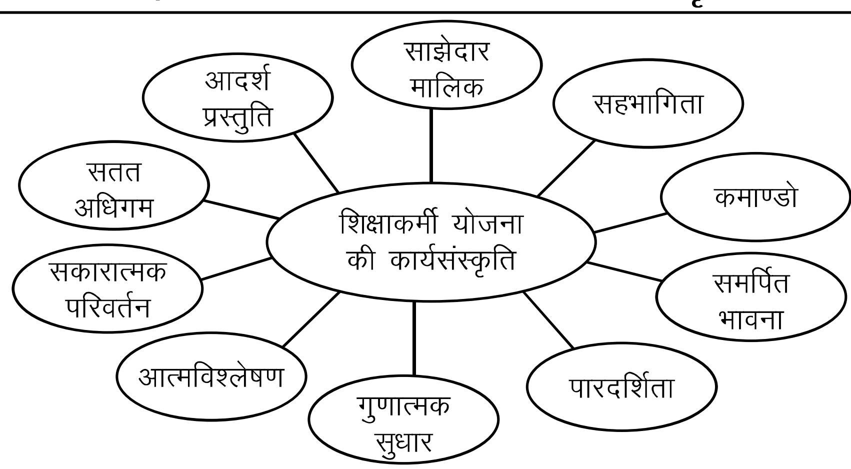
- गाँव के 6–14 आयु वर्ग के बालक–बालिकाओं का शत–प्रतिशत नामांकन करना।
- शत–प्रतिशत उपस्थिति सुनिश्चित करना।
- 90 प्रतिशत ठहराव सुनिश्चित करना।
- दिवस एवं प्रहर पाठशालाओं का शैक्षिक स्तर 80 प्रतिशत सुनिश्चित करना।
- जन सहभागिता सुनिश्चित करना।
- विभिन्न प्रशिक्षणों में उपस्थिति सुनिश्चित करना।
- विद्यालय के वातावरण एवं शिक्षण को रुचिकर व आकर्षक बनाए रखना।

शिक्षाकर्मियों का प्रशिक्षण – प्रत्येक शिक्षाकर्मी को प्रारंभ में 41 दिवसीय प्रशिक्षण दिया जाता था। इसके पश्चात शिक्षाकर्मी को प्रतिमाह दो दिवसीय, छः माह में 10 दिवसीय तथा प्रथम 3 वर्षो में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय 30 दिवसीय आवासीय प्रशिक्षण दिए जाते थे। प्रतिवर्ष 20 दिवसीय सतत एवं उन्नयन प्रशिक्षण भी दिया जाता था। कमजोर शिक्षाकर्मियों को उपचारात्मक प्रशिक्षण दिए जाते थे। प्रशिक्षण में शाला मानचित्रीकरण एवं सूक्ष्म नियोजन, प्रहर पाठशाला, विद्यालय अभिलेख, शिक्षाक्रम, समय विभाग चक्र निर्माण, इत्यादि बातों को सम्मिलित किया जाता था। प्रशिक्षण पूर्ण रूपेण आवासीय व निर्धारित समयावधि में अनुशासनात्मक रूप से बड़े ही उच्च स्तरीय हुआ करते थे। जिनके परिणामस्वरूप शिक्षाकर्मियों में अपने कार्य में दक्ष होने के साथ–साथ शिक्षण कार्य में विभिन्न गतिविधियों, सहायक सामग्री का निर्माण व प्रयोग करने की क्षमता विकसित की जाती थी।

शिक्षाकर्मियों का संबलन – ब्लॉक स्तर पर कार्यरत शिक्षाकर्मी सहयोगी (संबलनकर्ता) शिक्षाकर्मी विद्यालयों का सतत रूप से, एक दिवसीय, दो दिवसीय व तीन दिवसीय आकस्मिक अवलोकन कर शिक्षाकर्मियों की विभिन्न समस्याओं, खास तौर से शैक्षिक समस्याओं के समाधान हेतु प्रयास करते थे। बालकों के शैक्षिक स्तर में वृद्धि, नामांकन, ठहराव, जनभागीदारी को बढ़ावा आदि पर संबलनकर्ता द्वारा जोर दिया जाता था। संबलन सतत रूप से ब्लॉक स्तर से, संदर्भ इकाई द्वारा, शिक्षाकर्मी बोर्ड व अन्य लोगों द्वारा दिया जाता था।

शिक्षाकर्मी योजना की कार्यसंस्कृति :– इस परियोजना के अंतर्गत जिस कार्यसंस्कृति को बढ़ावा मिला एवं जिसके कारण परियोजना ने पहचान और ख्याति प्राप्त की उसे निम्नानुसार समझा जा सकता है।

प्रदर्श 6.3 : शिक्षाकर्मी योजना की कार्य संस्कृति



गतिविधि

किसी भी परियोजना की सफलता में किस प्रकार की कार्यसंस्कृति मददगार होती है? चर्चा कर एक आलेख तैयार करें ?

परियोजना की उपलब्धियाँ

प्रदर्श 6.4 सांस्कृतिक कार्यक्रम के दौरान



1. परियोजना के फलस्वरूप नामांकन में लगभग पाँच गुना से अधिक की वृद्धि हुई । 751 गाँवों के 6–14 वर्ष के सभी बच्चे दिवस विद्यालय एवं प्रहर पाठशालाओं में पढ़ने लगे।
2. औसत उपस्थिति 53 प्रतिशत से बढ़कर 85 प्रतिशत हुई तथा विद्यार्थियों का ठहराव 19 प्रतिशत से बढ़कर 68 प्रतिशत हुआ। प्रहर पाठशाला का ठहराव 75 प्रतिशत हुआ।
3. शिक्षण को प्रभावी एवं आनंददायी बनाने हेतु विभिन्न प्रयास किए गए जिसके अंतर्गत दो दिवसीय बैठकों में शिक्षाकर्मी द्वारा ''शिक्षण बिंदु'' निकालना तथा कठिनाइयों के निराकरण कार्य को गति देना उनके द्वारा संपादित कार्य को अंक योजना से जोड़ा गया। बहु कक्षा एवं बहु स्तरीय शिक्षण पद्धति तथा कक्षा 1 के लिए आदर्श कक्ष निर्माण पर अधिक बल दिया गया। शाला में इकाई परख भी लागू की गई। विद्यालय अवलोकन के समय प्रगति का आकलन कर विद्यार्थियों के शैक्षिक स्तर का पता लगाया जाता था तथा उसमें सुधार हेतु सतत रूप से संबलन कार्य किया जाता था।
4. प्रहर पाठशालाओं में सेमेस्टर परीक्षा को और अधिक सुदृढ़ किया गया। शिक्षाकर्मियों के प्रशिक्षणों में मूल्यांकन प्रक्रिया पर अधिक जोर दिया गया। बच्चों की उपलब्धि मूल्यांकन एवं आकलन प्रक्रिया को व्यावहारिक बनाया गया।

कर्मठता शिक्षाकर्मी की : मेहनत रंग लाई

शांति लाल शर्मा, शि.क.स. कुचामन सिटी

पिछले 3 वर्षों से पं.स. कुचामन सिटी के मातासुखा ग्राम के करीब 10 बालकों का नवोदय विद्यालय हेतु चयन हुआ है। गतवर्ष अगस्त 96 में इस विद्यालय की बढ़ती छात्र संख्या को देखते हुए इस स्कूल को शिक्षाकर्मी उच्च प्राथमिक विद्यालय क्रमोन्नत कर दिया। क्रमोन्नत आदेश में लिखा था कि यदि भवन की व्यवस्था गाँव वालों ने नहीं की तो, दी गई स्वीकृति वापस ले ली जाएगी। चिंता हुई, मैंने स्पष्ट लिख दिया कि यदि 2 कमरे (5 पहले ही है) जल्दी से जल्दी नहीं बने तो मैं इस स्वीकृति को निरस्त करने हेतु लिखूँगा। प्रधान शि.क. ऊदाराम ने मुझे कहा की आप स्वयं एक बार आए। मैं 20 अगस्त 97 को मातासुखा गया पूरे दिन रुका, लेकिन गाँव के कोई भी लोग नहीं आये, दूसरे दिन भी हम लोगों का इंतजार करते रहे किन्तु गाँव के लोग नहीं आए। ऊदाराम सहित सभी शिक्षाकर्मी चिंतित हम नें एक फॉमूर्ला तय किया मेरे आधे माह का वेतन 2000 रु एवं 8 शिक्षाकर्मियों के एक–एक माह का मानदेय लिया गया, लेकिन गाँव वाले नहीं आयें। ऊदाराम ने दूसरा फॉर्मूला फेंका और विद्यालयों मे गाँव वालों को बुलाने हेतु अनशन की घोषणा कर दी।" मैं अन्न जल ग्रहण नहीं करूँगा।" कहकर वह वहीं सिरस के पेड़ के नीचे जम गया ऊदाराम जी के अनशन को देखकर सभी 8 शिक्षाकर्मी भी अनशन पर बैठ गए, जिनमें दो महिलाएँ श्रीमती मीनादेवी और अंजना जैन भी थीं। मैं वहाँ शाम तक रुका। वापस कुचामन आ गया व तीसरे दिन वापस गया तो क्या देखता हूँ कि करीब 1 लाख रुपये नगद प्राप्त हो गए थे। कुछ लोग पत्थर ला रहे है सैकड़ों लोग इकट्ठे हैं और आज गाजे–बाजे के साथ जुलूस निकालेंगे। मैं खुश हुआ और सभी शिक्षाकर्मी गद्‌गद् हो गए मेरी आँखों में पानी था। वाह मेरे ऊदाराम! माथासुखा विद्यालय में 35 बालक जिनमें 13 बालिकाएँ पढ़ने आने लगी थीं।

चुनौतियाँ

इस परियोजना की सबसे बड़ी चुनौती ग्रामीण महिलाओं को आवासीय प्रशिक्षण देकर उन्हें 'महिला शिक्षाकर्मियों' के तौर पर तैयार करना था। प्रारंभ में परियोजना का यह पहलू कमजोर रहा, किन्तु 1990 के आते–आते इस दिशा में भी परियोजना ने प्रगति की। फलतः 1991 में महिला शिक्षाकर्मियों के तीन आवासीय केंद्र स्थापित किए गए, फिर तो प्रतिवर्ष एक नया केंद्र प्रारंभ होता चला गया।

हालांकि विकेंद्रीकरण को परियोजना में प्रारम्भ सें सिद्धांततः मान्यता दी गई थी, लेकिन इसे अमल में लाने में वक्त लगा, 1995 में ही इस अवधारणा को सुनिश्चित तथा व्यावहारिक स्वरूप प्राप्त हो सका। परियोजना के संपूर्ण कार्यकाल में इस नीति की पालना होती रही कि कार्यक्रम के विस्तार और वैविध्य से पहले परियोजना की संरचना को पुख्ता बनाया जाएँ।

समेकन

शिक्षाकर्मी परियोजना राज्य में शिक्षा सुधार के लिए एक सार्थक हस्तक्षेप के रूप में उभरी थी। परियोजना की एक कठिनाई यह थी कि उसे मौजूदा सरकारी शिक्षा व्यवस्था तथा नए सोच वाले गैर सरकारी, स्वैच्छिक संस्थाओं दोनों का सहयोग लेना था। साथ ही दोनों के दबाव से मुक्त रहते हुए काम करना था। ऐसे में उसे 'तीसरे रास्ते' का निर्माण करना था। शिक्षाकर्मी परियोजना इस कसौटी पर खरी उतरी। उसे उस साधारण जन का पूरा समर्थन प्राप्त हुआ जिसके लिए इसकी परिकल्पना की गई थी। ग्रामीण जन द्वारा इस परियोजना को समर्थन देने का एक कारण यह था कि शिक्षाकर्मी स्कूल सही मायने में चलते थे। इन स्कूलों में सीखने–सिखाने की प्रक्रिया जिस तरह चलती थी वह बच्चों और उनके अभिभावकों दोनों को संतोषपूर्ण लगा। इस योजना की सफलता का एक बड़ा कारण यह था कि इसमें प्रारंभ से ही समुदाय की भागीदारी को सुनिश्चित किया गया। इन स्कूलों की एक विशेषता यह भी थी कि वे बने–बनाए फॉर्मूलों की बजाय समस्या का हल निकालने का योजनाबद्ध प्रयास करते थे। अब यह कार्यक्रम सर्वशिक्षा अभियान में समाहित हो गया है।

गतिविधि

शिक्षकों की कमी पूरी करने के लिए उनकी नियुक्ति के मापदंड को शिथिल किया जाना कहाँ तक उचित है, इस पर चर्चा कीजिए?

6.2.2 लोक जुंबिश परियोजना

पृष्ठभूमि :– लोक जुंबिश परियोजना इस़ मान्यता पर आधारित थी कि प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण करने के लिए समुदाय, बच्चे और शिक्षक के मध्य सहभागिता का संबंध विकसित करना आवश्यक है। समुदाय एवं बच्चों के कौशल और ज्ञान के साथ स्कूल का संबंध बनाना भी जरूरी है। साथ ही शिक्षक में 'बच्चों के ज्ञान और कौशल को पोषित करने की योग्यता' विकसित करना एवं समाज में शिक्षक की अहमियत को पुनः स्थापित करना भी आवश्यक है।

लोक जुंबिश को समाज के वंचित वर्ग खासकर लड़कियों तक शिक्षा की पहुँच बनाने और शिक्षा के सार्वजनीकरण के उद्देश्य से सीधा भारत सरकार एवं राजस्थान सरकार की पहल पर 1992 मे प्रारंभ किया गया।

राजस्थान के कई वर्गों और इलाकों का सामाजिक व सांस्कृतिक ताना–बाना ऐसा है, जिसमें पारंपरिक सोच बच्चों, खासकर लड़कियों को शिक्षा में शामिल होने से रोकती है। इस कथन को अपने अनुभव से उदाहरण देकर समझाइए।

लोक जुंबिश के उद्देश्य :– लोक जुंबिश परियोजना के अंतर्गत निम्नांकित उद्देश्य रहे–

- 14 वर्ष तक की आयु के सभी बालक / बालिकाओं को गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा सुलभ कराना।
- यह सुनिश्चित करना कि सभी बालक / बालिका प्राथमिक शिक्षा पूरी करें।
- शिक्षा में समानता के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयास करना, ताकि बालक एवं बालिकाओं के बीच तथा सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से वंचित वर्गों एवं समाज के अन्य वर्गों के बीच समानता आए।
- शिक्षा की विषय वस्तु और प्रक्रिया में आवश्यक सुधार लाना, ताकि वह लोगों की संस्कृति, उनके रहन–सहन और काम के तरीकों से मेल खाएँ।
- परियोजना के प्रत्येक काम में समुदाय की क्रियात्मक भागीदारी सुनिश्चित करना।

कार्यक्षेत्र :– लोक जुंबिश परियोजना का कार्य क्षेत्र 13 जिलों में 1.92 लाख वर्ग किलोमीटर में था जो राजस्थान के कुल क्षेत्रफल का 56 प्रतिशत है। इसमें अजमेर, बाँसवाड़ा, बारां, बाड़मेर, बीकानेर, चित्तौड़गढ़, डूँगरपुर, जैसलमेर, जालोर, जोधपुर, पाली, राजसमंद तथा उदयपुर के 102 विकास खंड शामिल थे। इसमें 3763 ग्राम पंचायतें, 16420 राजस्व गाँव तथा 57 शहरी क्षेत्र आते थे। इसमें पश्चिमी राजस्थान का संपूर्ण रेगिस्तानी भाग तथा दक्षिणी राजस्थान का आदिवासी क्षेत्र भी सम्मिलित था।

लोक–जुंबिश परियोजना के प्रमुख चरण :– यह परियोजना चरणबद्ध रूप से लागू की गई, जिसका प्रथम चरण 1992 से प्रारंभ होकर 25 विकास खंडों में दो वर्ष तक चला। दूसरे चरण की अवधि जुलाई, 1995 से जून 1999 तक रही जिसमें 75 विकास खंडों में परियोजना का विस्तार किया गया। पहले और दूसरे चरण में व्यय की गई राशि, सीडा, भारत सरकार और राजस्थान सरकार से प्राप्त हुई जिसका अनुपात दोनों चरणों में 3:2:1 का था। परियोजना का तृतीय चरण जुलाई, 1999 से जून, 2004 तक रहा, जो डी.एफ.आई.डी. भारत सरकार व राजस्थान सरकार के सहयोग से चलाया गया।

लोक जुंबिश परियोजना के पहले दो चरणों में वे विकास खंड भी परियोजना क्षेत्र में आते थे जो लोक जुंबिश कार्यक्षेत्र के 13 जिलों से अलग थे। तृतीय चरण से पूर्व राज्य सरकार के निर्देशानुसार यह तय हुआ कि राजस्थान के सभी 32 जिलों में शिक्षा के सार्वजनीकरण के कार्य को 13 जिलों में लोक जुंबिश परियोजना और शेष 19 जिलों में डी.पी.ई.पी. (जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना) द्वारा किया जाएगा। परियोजना के तृतीय चरण का लक्ष्य प्रत्येक वास स्थान में ग्राम शिक्षा समिति का गठन करना था।

प्रबंधन :– प्रत्येक विकास खंड में एक खंड संचालन दल होता था जिसमें एक परियोजना अधिकारी, 3–4 सहायक परियोजना अधिकारी तथा एक महिला सहायक परियोजना अधिकारी, जिसे संयुक्ता कहा जाता था, सम्मिलित होते थे। विकास खंड को 25–30 ग्रामों (5–6 ग्राम पंचायत) के समूह में बाँटकर 'संकुल' बनाए जाते थे। संकुल में लोक जुंबिश के काम के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी किसी स्वयंसेवी संस्था को दी जाती थी जहाँ कोई संस्था नहीं होती थी, वहां खंड संचालन दल ही क्रियावयन की जिम्मेदारी लेता था।

परियोजना की महत्त्वपूर्ण गतिविधियाँ

वातावरण निर्माण :– लोक जुंबिश की गतिविधियों का पहला काम स्थानीय समुदाय को प्रेरित करना तथा उनके साथ एक सकारात्मक एवं प्रभावशाली संवाद स्थापित करना होता था। इसके लिए विभिन्न गतिविधियाँ जैसे– परिवार सम्पर्क, मोहल्ला बैठकें, ग्राम सभा, कला जत्था, कठपुतली प्रदर्शन एवं फिल्म प्रदर्शन आदि किए जाते थे। इसमें समुदाय के लोगों की रुचि और भागीदारी को देखते हुए प्रेरक दल का गठन किया जाता था। इस बात का ध्यान रखा जाता था कि गाँव के सभी वर्गों तथा महिलाओं का पर्याप्त प्रतिनिधित्व हो। प्रेरक दल को 5 दिन का

आवासीय प्रशिक्षण दिया जाता। इसके बाद प्रेरक दल के सदस्य गाँव का शाला मानचित्र बनाते थे। इसके लिए वे हर परिवार में जाकर 5 से 14 आयु वर्ग के बच्चों की शैक्षिक स्थिति का आकलन करते। गाँव के लोगों को सक्रिय रूप से भागीदार बनाया जाता था।

गतिविधि

अपने गाँव का मानचित्र बनाकर, इसमें विभिन्न समुदाय के लोगों की बसावट और विद्यालय भवन दिखाएँ। इस मानचित्र को देखते हुए विचार करें कि विद्यालय किस जगह होना चाहिए, क्यों?

भवन निर्माण :– लोक जुंबिश के अंतर्गत भवन निर्माण समितियों का गठन कर उन्हें भवन बनाने या उसकी मरम्मत करने की जिम्मेदारी दी जाती थी। इसमें मरम्मत कार्यों को प्राथमिकता दी जाती थी। सामग्री खरीदना, काम का निरीक्षण करना, हिसाब–किताब रखना आदि समस्त काम भवन निर्माण समिति के द्वारा किया जाता था। भवन निर्माण एवं मरम्मत में यथा संभव स्थानीय सामग्री का उपयोग किया जाता था।

समिति में स्थानीय विद्यालय का प्रधानाध्यापक सदस्य सचिव तथा 10–12 सदस्य होते थे, जिन्हें इस काम के लिए दो दिन का प्रशिक्षण दिया जाता था। पूरे काम के दौरान खर्चों व अन्य मामलों में पारदर्शिता रखी जाती थी। जहाँ संभव हुआ, **वहाँ राजमिस्त्री का काम महिलाओं से करवाया गया, इससे उनमें एक नए कौशल का विकास हुआ।**

महिला विकास एवं बालिका शिक्षा :– लोक जुंबिश में महिला विकास का लक्ष्य प्राथमिक शिक्षा में बालिकाओं की भागीदारी हेतु अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करना रहा है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रारंभ से ही यह व्यूह रचना रही कि महिलाओं को अपनी आत्मछवि बढ़ाने एवं पारिवारिक एवं सामाजिक परिदृश्य में परिवर्तन के लिए सक्षम बनाया जाना है। इसके लिए गाँव स्तर पर महिलाओं के समूह बनाने, शिक्षण प्रक्रिया में जेंडर समता को शामिल करने तथा इसे सामाजिक विकास का अंग बनाने के निरंतर प्रयास किए गए।

लोक जुंबिश के तहत बालिका शिक्षा को केंद्र में रखकर काम किए गए। इन प्रयासों के अंतर्गत लोक जुंबिश के सारे कार्यक्रमों में सभी बालिकाओं को गुणवत्ता आधारित शिक्षा मुहैया कराने तथा बालिका शिक्षा की दृष्टि से सबसे पिछड़े क्षेत्रों में लड़कियों के नामांकन एवं ठहराव में वृद्धि हेतु विशेष कार्यक्रम क्रियांवित किए गए।

उक्त प्रयासों के फलस्वरूप लोक जुंबिश द्वारा क्रियांवित विकास खंडों में बालिकाओं की नामांकन दर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई और बालक एवं बालिकाओं के नामांकन दर के बीच अंतर में कमी आई।

बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा :– इस कार्य के अंतर्गत एकीकृत बाल विकास योजना (आईसीडीएस) के कार्मिकों को प्रशिक्षण देने तथा जिन विकास खंडों में आईसीडीएस का कार्यक्रम नहीं चल रहा था, वहाँ नई बाल वाड़ियाँ खोली गईं। दो विकास खंडों गढ़ी और बाप में इस कार्यक्रम को क्रियांवित किया गया।

बालिका शिक्षण शिविर :– परियोजना के अंतर्गत 50 से 100 बालिकाओं के लिए 150 और 210 दिवसीय बालिका शिक्षण शिविरों का आयोजन किया जाता था। जिसमें कम उम्र में विवाह या अन्य परिस्थितियों के कारण विद्यालय में सही उम्र में प्रवेश लेने से वंचित बालिकाओं को औपचारिक शिक्षा के पाठ्यक्रम से अध्यापन करवाया जाता। इस शिविर में बालिकाओं में वैयक्तिक स्वास्थ्य, प्रजननीय स्वास्थ्य, सीखने की कला, अभिव्यक्ति एवं सहयोगात्मक भावना की समझ विकसित करने का काम भी किया जाता था। ये शिविर दूरस्थ क्षेत्रों की किशोरी बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा मुहैया कराने के एक प्रभावी विकल्प के रूप में उभरे थे।

महिला शिक्षण विहार :– महिलाओं को शिक्षित और स्वावलम्बी बनाने के उद्देश्य से लोक जुंबिश द्वारा जालौर व झालावाड़ में महिला शिक्षण विहार स्थापित किए गए जहाँ 15–30 आयु वर्ग की जरूरतमंद व पढ़ने की इच्छुक महिलाएँ विभिन्न जिलों से चयनित कर अध्ययन हेतु भिजवाई जाती थी। इन्हें पाँचवीं उत्तीर्ण करवाकर, सहज शिक्षा

केंद्रों या शिक्षाकर्मी विद्यालय में विशेष प्रशिक्षण प्रदान कर शिक्षाकर्मी के रूप में भी चयन किया जाता था।

गतिविधि

बालिकाओं और महिलाओं की शिक्षा के लिए आवासीय शिविर कहाँ तक सफल रहे हैं? चर्चा करें।

सहज शिक्षा केंद्र :– जो बालिकाएँ व बालक विद्यालय की सुविधा का लाभ नहीं उठा सकते थे उनके लिए अनौपचारिक सहज शिक्षा केंद्र खोले गए। इनके द्वारा कामकाजी बालक–बालिकाओं तथा विद्यालय विहीन बस्तियों के बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था की गई। इसमें किसी बस्ती में शिक्षा से वंचित 20 या अधिक बच्चे उपलब्ध होने पर सहज शिक्षा केंद्र की व्यवस्था की जाती थी। सहज शिक्षा केंद्र का संचालन स्थानीय समुदाय की राय से 8वीं उत्तीर्ण अनुदेशक का चयन करके किया जाता था। अनुदेशक को साल में एक बार गहन प्रशिक्षण दिए जाने की व्यवस्था की जाती थी। सहज शिक्षा केंद्र ''शिक्षा आपके द्वार'' अभियान के अंतर्गत भी विकसित किए गए।

शिक्षा में गुणात्मक सुधार एवं शिक्षक प्रशिक्षण :– परियोजना द्वारा शिक्षा में गुणात्मक सुधार हेतु विविध स्तरों पर शिक्षक प्रशिक्षण हेतु अभिमुखीकरण प्रशिक्षण, विषय वस्तु आधारित प्रशिक्षण, शिक्षा सहयोगियों का प्रशिक्षण एवं अकादमिक संबलन हेतु विभिन्न प्रकार की कार्यशालाओं, बैठकों का आयोजन किया जाता था। जिसमें शिक्षक, शिक्षा सहयोगी राजीव गाँधी पाठशालाओं के शिक्षा सहयोगी, पैराटीचर, तथा अनुदेशक भाग लिया करते थे।

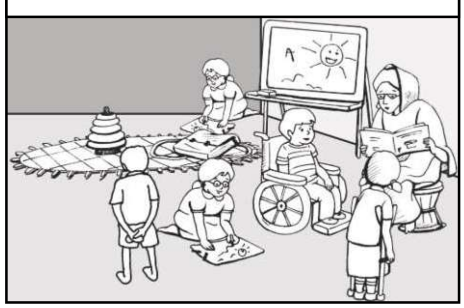
अकादमिक संबलन :– शिक्षकों के अकादमिक संबलन हेतु समितियों का गठन किया गया। इन समितियों की मासिक बैठकें होती जिनमें स्रोत अध्यापक और प्रधानाध्यापक शिक्षाविद एवं परियोजना अधिकारी विद्यालय में शिक्षण से उभरे मुद्दों पर बातचीत और काम में आ रही बाधाओं को दूर करने एवं नवाचार अपनाने पर चर्चा करते थे। वे एक दूसरे के विद्यालयों में जाकर आपसी अनुभव बाँटते थे। इसी श्रृंखला में राज्य स्तर पर एक राज्य स्रोत दल का भी गठन किया गया, जो अपनी बैठकों में पठन–पाठन संबंधी समस्याओं पर चर्चा कर विकास खंडों में उक्त विचार को पहुँचाता था। इस प्रकार राज्य स्रोत दल, खंड स्रोत दल, और संकुल स्रोत दल के माध्यम से शिक्षकों को अकादमिक संबलन प्रदान किया जाता था।

गतिविधि

शिक्षक प्रशिक्षण से हासिल की जाने वाली दक्षताओं को शिक्षण में उपयोग करने के लिए किस प्रकार के अकादमिक संबलन की आवश्यकता होती हैं? विचार कीजिए।

मदरसा शिक्षा कार्यक्रम :– मुस्लिम (अल्पसंख्यक) समुदाय के बच्चों को सामान्य विद्यालयी शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए 1995 में मदरसा शिक्षा कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। यह कार्यक्रम कामां (भरतपुर) विकास खण्ड के उन मुस्लिम मेव बाहुल्य क्षेत्रों में शुरू किया गया जहाँ बच्चे स्कूली शिक्षा से पूर्णतः वंचित थे। वे केवल मदरसों में उर्दू व हिंदी तालीम प्राप्त कर रहे थे। स्थानीय समुदाय, जन प्रतिनिधियों, क्षेत्र के शिक्षाविदों तथा इमामों से व्यापक विचार–विमर्श के बाद इस कार्यक्रम के अंतर्गत क्षेत्र के राजकीय विद्यालयों में उर्दू विषय का शिक्षण प्रारम्भ किया गया। इसके परिणामस्वरूप मेव समुदाय के बच्चों के नामांकन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

प्रदर्श 6.5 विशेष योग्यजन बच्चों की कक्षा



मुक्तांगन :– परियोजना के तृतीय चरण में 5–14 आयु वर्ग के बच्चों के सुविधाजनक समय पर आने के लिए मुक्तांगन की संकल्पना तैयार की गई। इसके संचालन हेतु 10 वीं और 12 वीं उत्तीर्ण व्यक्ति का चयन किया जाता। कुल 85 मुक्तांगनों की स्थापना हुई थी। मुक्तांगन कार्यक्रम विशिष्ट परिस्थितियों एवं आदिवासी बच्चों के लिए शुरू की

गई एक व्यवस्था थी। विकास खण्ड किशनगंज (बारां) एवं कोटड़ा (उदयपुर) आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों में 17–17 मुक्तांगन संचालित किए गए जिनमें 2205 विद्यार्थी लाभान्वित हुए। इन केंद्रों पर पढ़ाई की ऐसी व्यवस्था (विशेष शिक्षक प्रशिक्षण द्वारा) की गई कि बच्चे अपने सामाजिक संदर्भों से सीख सकें।

विशेष योग्यता वाले बच्चों की शिक्षा :– परियोजना में विशेष रूप से सक्षम बच्चों की शिक्षा एवं विकास हेतु शाला मानचित्रण के दौरान इनका भी सर्वे किया गया था। शिक्षकों एवं अभिभावकों को विशेष रूप से सक्षम बच्चों के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए राज्य स्तर पर संवेदनशीलता प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए गए। इसमें मॉड्यूल बनाने और संदर्भ व्यक्ति तैयार करने के काम किए गए।

शाला स्वास्थ्य कार्यक्रम :– इस परियोजना में बच्चों की स्वास्थ्य संबंधी समस्या के समाधान हेतु शाला स्वास्थ्य कार्यक्रम संचालित किया गया। इसमें माता–पिता, अध्यापकों एवं समुदाय में बच्चों के स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता एवं सकारात्मक सोच विकसित करने तथा बच्चों में साफ–सफाई की आदत विकसित करने के काम किए गए।

चल विद्यालय :– शहरी क्षेत्रों में वर्ष 2002 में शिक्षा दर्पण के माध्यम से परिवारवार सर्वेक्षण कार्य किया गया। शिक्षा से वंचित बालक–बालिकाएँ जो विशेष परिस्थितियों के कारण विद्यालय नहीं जा पा रहे, कठिन परिस्थितियों में रेलवे स्टेशन, बस स्टेंड, शहर के बाहरी हिस्सों, कच्ची बस्तियों तथा झुग्गी–झोपडियों में निवास करते हैं, उन्हें शिक्षा प्रदान करने के लिए चल विद्यालय प्रारंभ किया गया। राजस्थान के 13 जिलों में शहरी क्षेत्रों के शिक्षा से वंचित बालक–बालिकाओं को शिक्षा से जोड़ने के लिए 'राजस्थान रोडवेज की बस' में चल विद्यालय की स्थापना की गई। बस को कक्षा–कक्ष में परिवर्तित कर सजाया गया। पढ़ाने के लिए शिक्षिकाओं को एक स्थान पर दो–ढाई घंटे तक अध्यापन के लिए नियुक्त किया जाता। चल विद्यालय में बालक बालिकाओं को पोषाहार भी वितरित किया जाता था।

समेकन :– लोक जुंबिश के काम से विभिन्न स्तरों पर समुदाय, जिनमें महिलाएँ भी बड़ी संख्या में थीं, का सक्रिय जुड़ाव संभव हुआ। इस जुड़ाव ने इस मान्यता का जोरदार खंडन किया कि वंचित वर्गों के लोग अपने बच्चों की शिक्षा में रुचि नहीं लेते। ऑपरेशन रिसर्च ग्रुप (ओ. आर. जी.) द्वारा सहज शिक्षा कार्यक्रम का मूल्यांकन 1995 तथा 1997 में किया गया। पहले मूल्यांकन में ओ. आर. जी. ने पाया कि 96 प्रतिशत केंद्र व्यवस्थित तरीके से चल रहे थे और 1997 के मूल्यांकन में यह प्रतिशत 98 पाया गया। ओ. आर. जी. के मूल्यांकन से यह स्पष्ट हुआ कि सहज शिक्षा केंद्रों में बालक–बालिकाओं के सीखने का स्तर औपचारिक विद्यालयों के समकक्ष रहा।

मूल्यांकन संगठन, राजस्थान सरकार द्वारा 1999 में लोक जुंबिश परियोजना का परिमाणात्मक अध्ययन किया गया। इसमें परियोजना क्षेत्र की तुलना गैर परियोजना क्षेत्र की प्रगति से की गई। अध्ययन में पाया गया कि 1992 से 1997 तक परियोजना क्षेत्र में बच्चों का नामांकन प्रतिशत गैर परियोजना क्षेत्र की तुलना में कम रहा, पर लगातार बढ़ता भी रहा। यही स्थिति ''नामांकन वंचन'' के प्रतिशत की भी रही। इसके बाद के साल 1997–98 और 1998–99 में गैर परियोजना क्षेत्र की तुलना में लोक जुंबिश के कार्यक्षेत्र में नामांकन प्रतिशत बढ़ा और नामांकन वचन का प्रतिशत घटा। यह रुझान हमें बताता है कि लोक जुंबिश के काम का असर प्रारम्भ के सात में से पाँच सालों में धीमा रहा, पर अगले दो साल में बढ़ता गया।

6.2.3 जनशाला कार्यक्रम

पृष्ठभूमि :– अब तक आपने जिन कार्यक्रमों के बारे में पढ़ा, वे विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की पहुँच बनाने के लिए थे। जनशाला ऐसा कार्यक्रम था जो विशेष रूप से शहरी क्षेत्र में कच्ची बस्तियों में रहने वाले बच्चों को शिक्षा से जोड़ने के लिए प्रारंभ किया गया। यह जन सहभागिता के माध्यम से बालक एवं बालिकाओं के लिए आवश्यक शैक्षिक सुविधाएँ उपलब्ध करवाने की एक पहल थी। जनशाला शहरी क्षेत्र की कच्ची बस्तियों मे उस बचपन को निखारने का प्रयास था जो शहरीकरण, आर्थिक दबाव और सामाजिक विषमताओं तले दबा जा रहा है। ये बच्चे शिक्षा से वंचित तो

है ही साथ ही साथ स्वास्थ्य सुविधा, स्वच्छ जल, शौचालय, पोषण युक्त भोजन जैसी मूलभूत सुविधाओं से भी महरूम हैं।

वर्ष 1998 में भारत सरकार एवं पाँच यू–एन संस्थाओं–यूनिसेफ, यूएनडीपी, यूएनएफपीए, यूनेस्को आईएलओ के वित्तीय सहयोग से नौ राज्यों– आंध्रप्रदेश, झारखंड, राजस्थान, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, और उड़ीसा में इस कार्यक्रम को प्रारंभ किया गया। इसे राजस्थान में चार शहरों जयपुर, जोधपुर, अजमेर और भरतपुर में संचालित किया गया।

समुदाय से सहयोग प्राप्त करने और विद्‌यालयों के लिए जगह की व्यवस्था करने के लिए यह आवश्यक था कि लोगों को इस बात के लिए मानसिक रूप से तैयार करें कि शिक्षा उनके बच्चों के लिए आवश्यक है। बच्चों को, खासकर लड़कियों को विद्‌यालय तक लाने का काम आज भी चुनौतीपूर्ण है। इस प्रकार की समस्याओं और मुद्‌दों को ध्यान में रखते हुए इस कार्यक्रम के निम्नांकित उद्‌देश्य रहे–

उद्‌देश्य

- शिक्षा से वंचित बालक बालिकाओं को विद्‌यालय से जोड़ना।
- विद्‌यालय में उनका ठहराव बना रहे इसके लिए आनंददायी शिक्षा की व्यवस्था करना।
- राजकीय विद्‌यालयों को शैक्षिक सुविधाओं की दृष्टि से सुदृढ़ करना।
- शिक्षकों की कार्य प्रणाली को प्रभावी बनाने के लिए विभिन्न प्रशिक्षणों का आयोजन करना।
- साधन विहीन विद्‌यालयों में आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराना।

जनशाला की प्रमुख गतिविधियाँ

स्वयं सेवी संस्थाओं का चयन :– कच्ची बस्तियों के बच्चों तक शिक्षा की पहुँच बनाना सरकारी शिक्षकों के स्तर पर मुश्किल था। अतः राजकीय प्रयासों के साथ–साथ शहरी क्षेत्र में कार्य कर रही अच्छी स्वयंसेवी संस्थाओं का सहयोग लिया गया। प्रारंभ में शहरी कच्ची बस्तियों के निकट स्थित राजकीय विद्‌यालयों का चयन किया गया। जहाँ शिक्षा की कोई सुविधा नहीं थी, वहाँ स्कूल खोला जाना था। इस कार्यक्रम में राजकीय विद्‌यालय के अलावा कच्ची बस्तियों में शैक्षिक सुविधा उपलब्ध करवाने के लिए सामुदायिक जनशाला (विद्‌यालय) खोलने का प्रयास किया गया। इसमें समुदाय की सहभागिता महत्त्वपूर्ण मुद्‌दा था, इसके लिए स्वयंसेवी संस्थाओं एवं जनशाला शिक्षकों की सहायता ली गई। बस्तियों के मुखिया एवं महत्त्वपूर्ण लोगों को विश्वास में लिया गया। उनके समग्र विकास से संबंधित समस्याओं जैसे – सफाई, स्वास्थ्य ,शिक्षा तथा महिलाओं की स्थिति को लेकर चर्चा कर उनके साथ विश्वासपूर्ण संबंध स्थापित किए गए।

शिक्षक चयन :– स्थानीय लोगों को प्रेरित करने के पश्चात् बस्तियों में शिक्षण व्यवस्था हेतु शिक्षकों का चयन किया गया। शिक्षक ऐसे चुने गए जो कि भावनात्मक व क्रियात्मक रूप से सक्रिय रहने कि लिए तत्पर हों। इनको प्रशिक्षित कर, स्थानीय कच्ची बस्ती की समस्त गतिविधियों से परिचित करवाकर बालकों–बालिकाओं के शिक्षण की व्यवस्था की गई। इन प्रशिक्षणों ने एक साधारण व्यक्ति को एक जिम्मेदार व योग्य शिक्षक के रूप में विकसित कर दिया। प्रशिक्षण में शिक्षकों को न केवल शिक्षा, शिक्षक–शिक्षार्थी व शिक्षण को एक नए नजरिए से देखने व समझने का मौका दिया गया। उनमें धैर्य, विनम्रता, सहनशीलता, प्रेम आदि गुणों को उभारा गया।प्रशिक्षण से उनमें, बस्तियों में जहाँ, गरीबी, अशिक्षा, गन्दगी, बीमारी, जगह की कमी, आपसी फूट, गंदी राजनीति व अविश्वास जैसी चुनौतीपूर्ण स्थितियाँ थी, में काम करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहने का ज़ज्बा पैदा हुआ। समुदाय वालों ने फटकारा, पर शिक्षक ने अपने धैर्य एवं मनोबल से समुदाय को प्रेरित किया और समुदाय अपना सहयोग देने के लिए तैयार हुआ।

सामुदायिक सहभागिता :– समुदाय का सहयोग विभिन्न प्रकार से इतने विशाल रूप से मिला कि उन्होनें विद्यालय के लिए स्थान उपलब्ध कराने के लिए अपने घर, दुकान, मंदिर का खुला प्राँगण, मस्जिद में उपलब्ध खाली स्थान सामुदायिक जनशाला के लिए दे दिए। अध्यापकों ने भी समुदाय का विश्वास जीता। शिक्षण अधिगम सामग्री का निर्माण एवं इनका उपयोग शिक्षण में इतने रुचिकर ढंग से किया कि बालक–बालिकाएँ विद्यालय में आने के लिए व पढ़ने के लिए तत्पर हुए। लकड़ी का काम जानने वाले अभिभावकों ने बच्चों के सीखने के लिए सहायक सामग्री के निर्माण में मदद की। उनमें विश्वास जग गया कि 'कोशिश करने वालों की हार नहीं होती'। इस प्रकार थोड़ी सी सफलता आशा की किरण की तरह मार्ग प्रशस्त करती गई। यह कार्यक्रम प्रयासों की सफलता और नित नये अनुभवों का लंबा सफर रहा है। जिसमें कई परिवर्तनों का अहसास निरंतर हुआ है।

गतिविधि

1. अपने आस–पास की कच्ची बस्ती के सामाजिक एवं आर्थिक ढाँचे को समझे एवं उनके जीवन यापन में आ रही समस्याओं की सारणी बनाएँ।
2. ग्रामीण क्षेत्र से शहर की ओर पलायन के कारणों को जाने तथा ऐसी किसी एक बस्ती की केस स्टडी तैयार कीजिए।

प्रदर्श 6.6 प्रशिक्षण के दौरान समूह में काम करते शिक्षक शिक्षिका



शिक्षक प्रशिक्षण– शिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में उनके प्रति सम्मान एवं मनोबल बढ़ाने के लिए विशेष गतिविधियाँ आयोजित की जाती थी। जनशाला कार्यक्रम की संपूर्ण कार्य संस्कृति में यह विश्वास हमेशा रहा कि राजकीय विद्यालयों के शिक्षकों की सोच एवं कार्य पद्धति में परिवर्तन किया जा सकता है। इसके लिए प्रशिक्षण में भाग लेने वाले शिक्षकों के साथ सम्मानीय व्यवहार किया जाता। उन्हें आदेश की बजाय प्रशिक्षण में भाग लेने का निमंत्रण दिया जाता था। प्रशिक्षण के प्रथम दिवस उन्हें पुष्प भेंट कर उनका स्वागत किया जाता। आवश्यकता पड़ने पर उनकी सुविधाओं को ध्यान में रखने का यह परिणाम हुआ कि वे मन से कार्य करने के लिए तत्पर हुए। वे स्वयं शिक्षण सामग्री का निर्माण करते। अन्य राज्यों में जहाँ शिक्षा की सफल योजनाएँ संचालित हो रही थी उनका परिचय कराने के लिए शिक्षकों को शैक्षिक भ्रमण भी करवाया गया। जिससे उन्हें भी अच्छा कार्य करने की प्रेरणा मिली।

प्रदर्श 6.7 : अध्ययन करते हुए बच्चे



शिक्षण व्यवस्था :– बच्चों के सीखने का मूल्यांकन परीक्षा न होकर उनके सीखने की गति होती थी। जैसे–जैसे वह सीखता जाता उसको तुरंत अगले समूह में क्रमोन्नत कर दिया जाता। उनके अभ्यास के लिए एवं उपलब्धि को जानने के लिए वर्कशीट तैयार की जाती थी, वही मूल्यांकन का आधार होती थी। जहाँ बहुस्तरीय शिक्षण की व्यवस्था करनी होती थी वहाँ तीन तरह के कार्ड बनाए जाते थे। एक अध्यापक के लिए, दूसरा बच्चों के समूह में कार्य करने एवं अभ्यास के लिए, तीसरा बच्चों के द्वारा व्यक्तिगत रूप से कार्य करने के लिए। शिक्षक अपनी सुविधानुसार इनका प्रयोग कर बहुस्तरीय शिक्षण की व्यवस्था को प्रभावी रूप से संचालित कर पाते थे।

ब्रिज कोर्स :– कई बच्चे विभिन्न घरेलू परिस्थितियों के कारण विद्यालय नहीं आ पाते या बीच में ही पढ़ना छोड़ देते थे, उनके लिए ब्रिज कोर्स प्रारंभ किए गए। जिसका परिणाम यह हुआ कि अधिक से अधिक बच्चे जो अनामांकित थे,

उनको नजदीकी राजकीय विद्यालय से जोड़ा जा सका। स्कूल के समय एवं व्यवस्थाओं में लचीलापन रखते हुए शिक्षक के माध्यम से समुदाय के बीच में ही 3–4 घंटे पढने की सुविधा दी गई।

गतिविधि

- शहरी गरीबों की शिक्षा के लिए काम कर रही मध्यप्रदेश, भोपाल की संस्था ''मुस्कान'' www.muskaan.org तथा बंबई में काम कर रही संस्था प्रथम की जानकारी उनकी बेवसाइट www.pratham.org से प्राप्त कर अपने सहपाठियों को बताएँ।

महिला एवं किशोर समूह बनाना :— ज्यादा से ज्यादा बालिकाएँ शिक्षा से जुड़े व शिक्षा के सार्वजनीकरण के उद्देश्य की प्राप्ति हो इसके लिए किशोर बालिका समूह बनाए गए। इन समूहों के साथ जीवन कौशल के विभिन्न मुद्दों पर कार्य किया गया। महिलाओं के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षणों का आयोजन एवं राज्य सरकार की विभिन्न योजनाओं की जानकारी दी जाती थी जिससे वे इनका लाभ उठा सकें।

आईसीडीएस की आँगन बाड़ी के साथ—साथ अलग से बालबाड़ी सामुदायिक जनशाला के साथ चलाई गई।

विशिष्ट उपलब्धि

- जनशाला कार्यक्रम को राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय एवं मीडिया के स्तर पर काफी सराहना मिली। इस कड़ी में जुलाई 2002 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा जनशाला कार्यक्रम को संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के अंतर्गत यू.एन. एजेंसीज एवं सरकार के मध्य में उचित समन्वयन की श्रेष्ठतम प्रक्रियाओं में से एक माना। यू.एन. की आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्था में इस कार्यक्रम की सफलता के अनुभवों का प्रस्तुतीकरण किया गया।
- प्राथमिक शिक्षा का यह एक ऐसा सफल कार्यक्रम रहा जिसमें केंद्र व राज्य सरकार, यूएन संस्थाओं एवं समुदाय के बीच अधिकतम सामंजस्य रहा तथा अनुदान का पूर्ण एवं सही उपयोग किया गया। यह शहरी क्षेत्र में इस प्रकार का पहला विस्तृत सफलतम प्रयास रहा। सर्वशिक्षा अभियान के प्रारंभिक दस्तावेज में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि शहरी क्षेत्र में वंचित वर्ग के, विशेष कर कच्ची बस्तियों के बच्चों की शिक्षा पर काम करने की योजना बनाते समय राजस्थान के जनशाला कार्यक्रम के अनुभव का पूरा लाभ उठाया जाए।
- प्रशिक्षण कार्यक्रमों में राजकीय शिक्षकों की भागीदारी एवं स्वीकार्यता से विद्यालय के शैक्षिक वातावरण में जो परिवर्तन देखा गया है वह भी इसकी सफलता की कहानी बताता है।

समेकन :— शहरी क्षेत्र की कच्ची बस्तियों के इस कार्यक्रम को बच्चों और अभिभावकों ने स्वीकारा, इससे बच्चों का नामांकन और ठहराव बढ़ा। शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी और वंचित वर्ग के परिवारों के बच्चे शिक्षा की मुख्यधारा से जुड़ने लगे। महिलाएँ विशेषकर मुस्लिम परिवार की महिलाएँ अपनी लड़कियों की शिक्षा में विशेष रुचि लेने लगीं। इन बस्तियों के बच्चों की जरूरत के अनुसार कार्यक्रम के समय, स्थान और शिक्षण के तरीके में लचीलापन रखने के अच्छे परिणाम सामने आए। मौजूदा शैक्षिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने व इसके प्रबंधन में सामुदायिक सहभागिता को सुनिश्चित करने जैसा जटिल कार्य पहली बार सफलता के साथ किया गया। शिक्षक, समुदाय व बच्चे एक दूसरे के प्रति संवेदनशील हुए व इनके बीच आत्मीयता पैदा हुई। प्रशिक्षणों में यह स्पष्ट हुआ कि सृजनशीलता उम्र की मोहताज नहीं है, अपितु सृजन स्वतंत्रता की देन है। बच्चों के सृजन के प्रखर शत्रु दंड, पुरस्कार, परीक्षा और प्रदर्शन से बचने की कोशिश की जाने लगी। इस प्रकार जनशाला कार्यक्रम शहरी क्षेत्र में शैक्षिक नवाचारों के लिए एक आदर्श कार्यक्रम के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर पहचान बना पाया।

लहर कार्यक्रम (LEHAR Learning Enhancement Activity in Rajasthan)

पृष्ठ भूमि :— गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को लेकर राजस्थान में सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत अनेक प्रयास किए जाते रहे

हैं। इन्हीं प्रयासों में से एक प्रयास है– लहर कार्यक्रम। लहर कार्यक्रम गतिविधि के साथ अधिगम कार्यक्रम है। कार्यक्रम के अंतर्गत विद्यालय में की जाने वाली सीखने–सिखाने की इस प्रक्रिया में इस प्रकार की गतिविधियाँ संचालित की जाती हैं कि बच्चे इनमें एक सक्रिय संभागी के रूप में भागीदारी निभाते हुए सीखते हैं। बच्चे मानसिक रूप से सक्रिय रह कर किसी विषय पर चिंतन–मनन करते हैं, अपने साथियों व बड़ों से बातचीत करते हैं, प्रश्न पूछते हैं, कल्पना करते हैं, अनुमान लगाते हैं, तार्किक चिंतन करते हैं, नतीजे निकालते हैं और इस तरह अपने ज्ञान का स्वयं निर्माण करते हैं।

लहर कार्यक्रम के उद्देश्य

- कक्षा 1 व 2 के बालकों पर विशेष ध्यान देकर शिक्षा की नींव मजबूत करना।
- बालकों के साथ उनकी गति एवं स्तरानुसार काम करना।
- सीखने–सिखाने की प्रक्रिया आनंदमयी बनाना।
- बच्चों में शिक्षाक्रम के अनुरूप क्षमताएँ विकसित कर पाना।
- बच्चों का स्कूल से जुड़ाव, नामांकन व ठहराव सुनिश्चित करना।

कार्ययोजना :– लहर कार्यक्रम कक्षा–कक्ष में की जाने वाली सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में एक बदलाव था। इस प्रक्रिया में बच्चों को मुख्य रूप से केंद्र में मानते हुए उन्हें उनकी गति एवं स्तर के अनुसार गतिविधियों के माध्यम से स्वयं करके सीखने के अवसर उपलब्ध होते थे। लहर कार्यक्रम में प्रत्येक बच्चे को अवधारणात्मक कार्य शिक्षक की मदद से, अभ्यास कार्य बच्चों की मदद से एवं अपने स्तर पर तथा मूल्यांकन कार्य स्वयं के स्तर पर करने होते थे। साथ ही ऐसी बहुत सी गतिविधियाँ रखी गई थीं जो बच्चों के साथ सामूहिक रूप से की जा सकती थी। इस कार्यक्रम में प्रत्येक बच्चे को अभ्यास एवं मूल्याकंन कार्य के लिए अभ्यास–पुस्तिका दी गई। इसमें सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के अंतर्गत ही सतत मूल्यांकन का कार्य किया गया। किसी एक अवधारणा अथवा विषयवस्तु के पूरा होने पर सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के एक चरण के रूप में ही मूल्यांकन कार्य किया जाता। इसके साथ–साथ तीन–चार माइलस्टोन पूर्ण होने पर एक बार पुनः अब तक सीखे हुए का मूल्यांकन किया जाता।

इसमें शिक्षक बच्चे की उस समय मदद करता जब बच्चा स्वयं शिक्षक के पास गतिविधि कार्ड लेकर आता। शिक्षक बच्चे को गतिविधि कार्ड पर दी गई अवधारणा को समझने में मदद करता। उसके पश्चात् बच्चे को अभ्यास कार्य स्वयं को ही करना होता। यह स्थिति शिक्षक और बच्चे के बीच की दूरी को कम करती।

लहर कार्यक्रम में प्रत्येक बच्चें के लिए अपनी उपस्थिति स्वयं दर्ज करने के लिए उपस्थिति पत्रक उपलब्ध कराए गए जिसमें बच्चे स्वयं अपनी उपस्थिति दर्ज करते।

लहर कार्यक्रम का विस्तार :– सत्र 2008–09 में लहर कार्यक्रम 4735 विद्यालयों में कक्षा 1 एवं 2 में लागू किया गया। सत्र 2011–12 तक 12000 विद्यालयों में लहर कार्यक्रम का विस्तार किया गया।

कार्यक्रम की उपलब्धियाँ

- शिक्षक/शिक्षिकाओं में बच्चों के साथ गतिविधियों के माध्यम से काम कराने की प्रक्रिया पर समझ और सकारात्मक सोच बनी।
- सीखने में प्रत्येक बच्चे की सक्रिय भागीदारी बढ़ने लगी। बच्चों को स्वयं करके सीखने के अवसर मिलने लगे। ऐसा होने से प्रत्येक बच्चे के सीखने की सुनिश्चितता हुई।
- बच्चों में सृजनात्मक क्षमता, आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्भरता की भावना में वृद्धि हुई।
- कक्षा एक एवं दो में बच्चों के नामांकन एवं ठहराव में वृद्धि हुई।

- अभिभावकों एवं जन प्रतिनिधियों में लहर कार्यक्रम के प्रति आकर्षण बढ़ने से अन्य विद्यालयों में भी इसे प्रारंभ करने की माँग आने लगी।

लहर कार्यक्रम में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन :– सतत एवं व्यापक मूल्यांकन सीखने–सिखाने की प्रक्रिया का एक चरण है। शिक्षक द्वारा बच्चों को किसी अवधारणा का परिचय देते हुए समझाना, सीखे हुए का व्यक्तिगत एवं उपसमूह बनाकर अभ्यास कराना सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के ही चरण रहा। इसी प्रकार सीखे हुए का सतत मूल्यांकन करना इसका एक चरण है। सतत मूल्यांकन के साथ–साथ बच्चे का समय–समय पर व्यापक मूल्यांकन करना भी इसी प्रक्रिया का एक चरण रहा।

शिक्षण व्यवस्था –

लहर कार्यक्रम में कक्षा 1 व 2 के छात्रों के कुल 6 समूह निर्धारण कर शिक्षण कराया जाता था। प्रत्येक समूह निम्नलिखित तरीके से काम करता था।

समूह 1 व 2 को शिक्षक माइलस्टोन या स्तर के अनुसार पूरे समय तक (शिक्षक समप्रित) शिक्षण कराता था।

समूह 3 में शिक्षक आंशिक रूप से शिक्षण कराता।

समूह 4 में छात्र आपस में एक दूसरे की मदद लेकर अपना कार्य (शिक्षण) करते हैं।

समूह 5 में छात्र आपस में एवं अन्य समूह के छात्रों से आंशिक मदद लेकर अपने कार्य करते थे।

समूह 6 में छात्र स्वयं अपने माइलस्टोन (स्तर) के अनुसार शिक्षक के निर्देशानुसार अपना शिक्षण कार्य करते थे।

प्रगति चार्ट के माध्यम से बच्चे की प्रगति को नियमित रूप से दर्ज करने की व्यवस्था भी लहर कार्यक्रम में रखी गई।

लहर कार्यक्रम के परिप्रेक्ष्य में नवीन पाठ्यपुस्तकें :– कार्यक्रम का राज्य के सभी विद्यालयों में विस्तार कैसे किया जाए, इस विषय पर विचार किया गया। यहाँ एक चुनौती यह महसूस की जा रही थी कि प्रत्येक विद्यालय तक लहर किट पहुँचाना व्यावहारिक नहीं था। इसके समाधान के रूप में एक विकल्प यह सामने आया कि रा.रा.शै.अ.प्र.स. उदयपुर (S.I.E.R.T) द्वारा तैयार की जा रही नवीन पाठ्यपुस्तकों में गतिविधियों का समावेश कर उन्हें गतिविधि आधारित बनाया जाए ताकि लहर कार्यक्रम का विस्तार सभी विद्यालयों में हो सके। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर लहर कार्यक्रम पर समझ रखने वाले सदस्यों को कक्षा 1 से 5 तक तैयार की जा रही पाठ्यपुस्तक निर्माण प्रक्रिया से जोड़ा गया।

समेकन :– प्रारंभिक शिक्षा की प्रथम सीढ़ी कक्षा एक व दो में सीखने सिखाने की प्रक्रिया प्रभावी एवं सशक्त बनाने के लिए राज्य में लहर कार्यक्रम संचालित किया गया था। राज्य में सतत और समग्र मूल्यांकन के अंतर्गत लहर कार्यक्रम की गतिविधियों को समाहित करने का प्रयास किया गया है।

> **गतिविधि**
>
> कक्षा 2 की हिंदी की किताब का अध्ययन करें। इसमें देखें कि किताब में कौन–से हिस्से गतिविधि आधारित हैं तथा इसमें सतत मूल्यांकन को किस प्रकार शामिल किया गया है?

6.2.5 दूसरा दशक परियोजना

पृष्ठभूमि :– यदि हम वर्ष 2000 के आँकड़ों का अध्ययन करें तो पाते है कि देश की कुल जनसंख्या का लगभग 22 प्रतिशत हिस्सा 11 से 20 आयुवर्ग के व्यक्तियों का था। इनमें से मात्र 40 प्रतिशत ही स्कूलों में पढ़ रहे थे। दस

प्रतिशत कक्षा 8 या इससे आगे की पढ़ाई कर रहे थे। 30 प्रतिशत 5वीं तक की पढ़ाई भी पूरी नहीं कर पाए और लगभग 20 प्रतिशत ऐसे किशोर–किशोरियाँ थे, जिन्होंने किसी भी प्रकार की व्यवस्थित शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। साथ ही इस आयु वर्ग की शैक्षणिक स्थिति में सुधार के लिए शिक्षा की पहुँच सुनिश्चित करने की आवश्यकता महसूस की गई। राजस्थान में वर्ष 2000 में पूर्व शिक्षा सचिव, भारत सरकार श्री अनिल बोर्दिया की पहल से 'फाउण्डेशन फॉर एज्यूकेशन एंड डवलपमेंट' नाम से एक पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट बनाया गया, जिसका प्रमुख उद्देश्य शिक्षा में नवाचार करना था। जून, 2001 में इस ट्रस्ट द्वारा 'दूसरा दशक परियोजना' राजस्थान में प्रारंभ की गई। इसकी शुरुआत बाप (जोधपुर) एवं किशनगंज (बारां) विकास खंडों से की गई। जिसका विस्तार ग्रामीण क्षेत्र के नौ विकास खंडों तक किया गया।

परियोजना के उद्देश्य :–

- 11–20 आयु वर्ग के किशोर किशोरियों को शिक्षा उपलब्ध करवाकर उनके शैक्षिक स्तर में सुधार लाना।
- किशोर–किशोरियों में होने वाले शारीरिक एवं भावनात्मक बदलाव से पैदा होने वाली विशेष जरूरतों को पूरा करने के प्रयास करना।
- प्रजनन व मातृत्त्व स्वास्थ्य में सुधार करना तथा HIV/AIDS जैसे यौन रोगों के प्रति जागरूकता पैदा करना।
- इसी उम्र की अत्यधिक ऊर्जा एवं कल्पनाशीलता को बनाए रखते हुए घर, समाज और लोकतांत्रिक ढाँचे में सकारात्मक बदलाव करने के लिए इन्हें अवसर प्रदान करना।
- युवाओं के संगठन तैयार करके वंचित वर्ग के हितों से जुड़े लोक अधिकारों को हासिल कराना।

प्रदर्श 6.8 जन भागीदारी



रणनीति

'दूसरा दशक परियोजना' से पूर्व संचालित की गई 'लोक जुंबिश परियोजना'के अनुभवों को अपनाकर तथा परिस्थितियों के अनुसार नई रणनीतियाँ सम्मिलित कर इस योजना में कार्य किया जा रहा है। उदाहरणार्थ–

1. **सहभागिता** – ग्रामीण समुदाय, किशोर –किशोरियाँ, कार्यकर्ता सभी की भागीदारी से कार्य किया जाता है। परियोजना के कार्यों की समीक्षा एवं नियोजन में भी इन सब की भागीदारी रहती है।
2. **विकेंद्रीकरण** – परियोजना की कार्यप्रणाली में सभी स्थानों पर विकेंद्रीकरण को अपनाया गया है, जिसके तहत ग्राम, संकुल और ब्लॉक स्तर पर सभी कार्मिक निर्णय लेने में स्वतंत्र है।
3. **'गुणवत्ता' को प्राथमिकता'** – दूसरा दशक परियोजना में गुणवत्ता से किसी प्रकार का समझौता नहीं किया जाता। इसमें हमेशा गुणवत्ता को प्राथमिकता प्रदान की जाती है।
4. **सतत समीक्षा एवं नियोजन**– राज्य, ब्लॉक, संकुल तथा गाँव स्तर पर सतत समीक्षा एवं नियोजन का कार्य किया जाता है। इस प्रक्रिया से मिले अनुभव के आधार पर भावी योजनाएँ बनाई जाती हैं।
5. **जवाबदेही** – जिन लोगों के लिए यह परियोजना संचालित की जा रही है तथा जिनके आर्थिक सहयोग से कार्य संचालित है, उनके प्रति व देश के प्रति परियोजना जवाबदेह है। इसी के तहत परियोजना ने सूचना के अधिकार के दायरे में भी स्वयं को स्वैच्छिक रूप से शामिल किया हुआ है।

दूसरा दशक की विशिष्टताएँ

1. **मूल्य**— दूसरा दशक परियोजना का विश्वास संवैधानिक मूल्यों में है। इनमें न्याय, समानता, स्वतंत्रता, बंधुता, समाजवाद, लोकतांत्रिक एवं धर्मनिरपेक्षता आदि शामिल है।
2. **कार्य संस्कृति**— इस परियोजना में कार्यरत व्यक्तियों के पदनाम आवश्यकतानुसार अलग—अलग है, लेकिन एक स्तर पर सभी 'कार्मिक' ही कहलाते हैं। वर्ष में दो बार होने वाले कार्मिक प्रशिक्षणों में सभी पदाधिकारी व कार्यकर्ता एक ही जाज़म पर बैठते हैं, साथ—साथ सीखते हैं। विकेंद्रीकरण — कार्यों के संचालन में गाँव स्तर से राज्य स्तर तक नीचे से ऊपर की ओर तथा ऊपर से नीचे की ओर समानांतर संवाद चलता है। ब्लॉक स्तर पर उस ब्लॉक के परियोजना निदेशक अपने स्तर पर अपनी टीम के साथ निर्णय लेते हैं।
3. **समझौता स्वीकार्य नहीं**— दूसरा दशक परियोजना में कार्यरत कार्मिकों की सेवाओं को निम्नवर्णित परिस्थितियों में तुरंत प्रभाव से निरस्त किया जाता है, इन मामलों में किसी प्रकार का कोई समझौता नहीं किया जाता—
   - जेंडर असंवेदनशीलता
   - जातिगत व धर्मगत भेदभाव
   - वित्तीय अनियमितता

प्रमुख गतिविधियाँ

शिक्षाक्रम निर्माण— 11—20 वर्ष के किशोर—किशोरियों के लिए उद्देश्यों पर आधारित शिक्षाक्रम का निर्माण किया गया है। इसके अंतर्गत 4 माह के आवासीय शिविर व जीवन कौशल प्रशिक्षणों के आयोजन हेतु लक्ष्य आधारित शिक्षाक्रम तैयार किए गए हैं।

प्रदर्श 6.9 : अध्ययन सामग्री



आवासीय शिविर— निरक्षर अथवा स्कूल से ड्रॉप आउट 11 से 20 आयुवर्ग के किशोर—किशोरियों के लिए 4 माह के आवासीय शिविर आयोजित किए जाते हैं। इसके लिए दूसरा दशक ने एक शिक्षाक्रम तैयार किया है। इस शिक्षाक्रम का उद्देश्य किशोर—किशोरियों को किसी कक्षा के स्तर तक पहुँचाना नहीं है, बल्कि ऐसे नागरिक तैयार करना है जो स्वयं के जीवन को बेहतर ढंग से जीने तथा ज्ञान और जानकारियों को हासिल कर सकने की क्षमता प्राप्त कर सकें। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए निम्नांकित विषय निर्धारित किए गए हैं—

1. हिंदी भाषा
2. गणित
3. स्वास्थ्य
4. जीवन कौशल शिक्षा
5. समाज की परख

प्रदर्श 6.10 : किशोरियों को जीवन कौशल प्रशिक्षण देते हुए



जीवन कौशल प्रशिक्षण— स्कूलों में अध्ययनरत किशोर—किशोरियों के साथ 5—7 दिनों का आवासीय जीवन कौशल प्रशिक्षण आयोजित किया जाता है। इन प्रशिक्षणों में स्वयं की पहचान, रिश्ते, समस्या समाधान, स्वास्थ्य, भविष्य के निर्माण पर कार्य किया जाता है।

युवा मंच व महिला समूहों का गठन – गाँव स्तर पर किशोर–किशोरियों के युवा मंच तथा महिलाओं के महिला समूहों का गठन तथा प्रशिक्षण समय–समय पर किए जाते हैं।

सतत शिक्षा केंद्र – आवासीय शिविरों के शिक्षण तथा जीवन कौशल प्रशिक्षण के फॉलोअप तथा युवा मंचों व महिला समूह की सक्रियता बनाए रखनें के लिए गाँव स्तर पर सतत शिक्षा केंद्रों की स्थापना की गई है। इनके संचालन में समुदाय द्वारा सहयोग प्राप्त होता है।

उपलब्धियाँ :– मार्च 2014 तक राजस्थान के 7 जिलों के नौ विकास खंडों की 195 ग्राम पंचायतों के 1003 गाँवों में दूसरा दशक की सक्रिय उपस्थिति दिखाई देती है।

प्रत्यक्ष रूप से लगभग सत्रह हजार पाँच सौ एवं अप्रत्यक्ष रूप से करीब 35,000 किशोर–किशोरियों के साथ कार्य/प्रशिक्षण किए गए हैं।

342 गाँवों में युवा मंच व 307 गांवों में महिला समूह का गठन हुआ है। इन संगठनों से लगभग 7 हजार सक्रिय युवा व महिलाएँ जुड़े हुए हैं। लगभग 7 हजार किशोर–किशोरियों को 4 माह के आवासीय शिविरों में प्रशिक्षित किया गया है।

संगठन से बदलाव– दूसरा दशक द्वारा गठित युवाओं एवं महिलाओं के संगठनों को क्रमशः ''युवा शक्ति संगठन'' एवं ''जागृत महिला संगठन'' नाम से जाना जाता है। इनके कार्यों से सामाजिक बदलाव के चिह्न दिखाई देने लगे हैं। उदाहराणार्थ–जाति, धर्म, वर्ग की सीमाओं से ऊपर उठ कर एक व्यक्ति के रूप में मिल कर कार्य करने का जज्बा मजबूत हुआ है। ये संगठन विकास के मुद्दों जैसे सूचना का अधिकार, रोजगार का अधिकार, भोजन का अधिकार, पल्स पोलियो इत्यादि मुद्दों पर मिल कर कार्य करते हैं। मलेरिया, अकाल से मौत, कुपोषण तथा बंधुआ मजदूरों को मुक्त कराने जैसे मुद्दों पर भी संगठित हो कर समय–समय पर आवाज उठाई गई है। इसके सकारात्मक प्रभाव दिखाई दे रहे हैं।

केस स्टडी –कहानी संतोष की

संतोष कुमारी मुदरला गाँव आबूरोड में रहती हैं। उसके पिता का स्वर्गवास हो गया है। परिवार में एक छोटा भाई व माँ है। जब वह छठी कक्षा में पढ़ती थी, तब दूसरा दश्क के जीवन कौशल प्रशिक्षण से जुड़ी। संतोष शुरू से बोलने में होशियार थी। उसने प्रशिक्षण के दौरान बताया कि वह कुछ बनना चाहती है। प्रशिक्षणों व अन्य अनुभवों से सीखते हुए उसने कक्षा 12 वीं पास की। शादी के बाद उसने सरपंच बनने का निश्चय कर लिया। वह युवा मंचों की बैठकों में भागीदारी करती रही, सहभागियों के माध्यम से सरपंच बनने की तैयारियाँ करती रही। 2009 के चुनाव में वह क्यारिया ग्राम पंचायत की प्रथम महिला सरपंच बनी। उसने क्यारिया पंचायत को रोल मॉडल के रूप में बनाने की कोशिश की। इससे ग्राम पंचायत की बैठकों में महिलाओं की भागीदारी में बढ़ोतरी हुई। दूसरा दशक की शुरूआत में गाँव मुदरला को, जहाँ की संतोष है, कार्य क्षेत्र में शामिल किया गया। वह गाँव स्तर की बैठकों में हमेशा जुड़ती थी। इसके बाद आबूरोड ब्लॉक में जीवन कौशल प्रशिक्षण से जुड़ी। उसने दूसरा दशक की मदद से भँवरगढ़, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा आदि जगह का भ्रमण किया, इससे उसका हौसला और मजबूत हुआ। मुदरला गाँव की महिलाओं को समझाने का भी उसने जिम्मा लिया। वह ब्लॉक स्तरीय रैली, विज्ञान मेला, कला जत्था कार्यक्रम में

प्रदर्श 6.10 : किशोरियों को जीवन कौशल प्रशिक्षण देते हुए



शामिल हुई। वह गाँव की समस्याओं को मंचों की बैठकों में उठाने लगी। वह संस्था के साथ मिलकर समस्या का समाधान करती थी। सरपंच बनकर वह बहुत खुश है। कहती हैं ''मैं हमेशा समाज के पिछड़े वर्गों का काम पहले करूँगी क्योंकि गरीब की स्थिति क्या होती है, और उनके सामने क्या–क्या परेशानियाँ आती है यह मैं भली–भाँति जानती हूँ।''

गतिविधि

किन्ही 4 किशोर–किशोरियों से उनकी उलझनों और सपनों के बारे में बात कीजिए। इस बातचीत के आधार पर एक पोस्टर बना कर प्रदर्शित कीजिए।

चुनौतियाँ –

सतत शिक्षा– चार माही आवासीय शिविरों में प्रशिक्षित किशोर–किशोरियों की सतत शिक्षा के प्रयास गाँव स्तर पर केंद्र खोलकर, फोलोअप शिविर लगाकर, व्यक्तिगत रूप से संपर्क करके किया जाता है, लेकिन सभी सहभागियों का सुव्यवस्थित फॉलोअप / उनकी सतत शिक्षा कर पाना एक चुनौती हैं।

बदलती प्राथमिकताएँ– किशोर–किशोरियों की आवश्यकताएँ तथा प्राथमिकताएँ क्षेत्र एवं परिस्थिति विशेष के अनुसार बदलती रहती है। अतः उनकी आवश्यकता पर आधारित प्रशिक्षणों के विषय किसी निश्चित सूची से संबद्ध नहीं रहते। अलग–अलग क्षेत्रों में इन पर अलग–अलग कार्य किए जाने हैं। यह भी एक चुनौती है।

आजीविका – किशोर व युवा वर्ग की एक प्रमुख आवश्यकता है, जीवनयापन हेतु आजीविका की व्यवस्था, जिसको पूरा करना दूसरा दशक की प्राथमिकताओं में नहीं रहा, लेकिन इस बारे में होने वाले कौशल प्रशिक्षणों में युवक–युवतियों को जोड़ा गया है।

विविधता – कार्य क्षेत्र सामाजिक, आर्थिक व भौगोलिक रूप से अलग–अलग प्रकार के हैं। हर क्षेत्र में वहाँ की स्थिति व पृष्ठभूमि को देख कर ही कार्य किया जाना भी एक चुनौती है।

समेकन

इस इकाई में हमने राजस्थान और इसके पूर्व अन्य राज्यों में संचालित परियोजनाओं और नवाचारों के बारे में जाना। इनमें से ज्यादातर में हमने देखा कि प्रारंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण, कमोबेश सभी का उद्देश्य रहा है। इससे हमें यह भी पता चलता है कि हमारे देश में, जहाँ विभिन्न कारणों से समाज के कई वंचित वर्गों के बच्चों के विद्यालय से बाहर रहने की आशंका रहेगी तब तक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए इस तरह के प्रयासों की प्रासंगिकता भी बनी रहेगी। आपको यह समझना होगा कि किसी एक जगह सफल हुए काम के तरीके को जब दूसरी जगह अपनाया जाता है, तो उसमें स्थानीय जरूरत के अनुसार कुछ फेरबदल भी किया जाता है। नवाचार या परियोजनाएँ हमेशा जारी नहीं रह सकतीं, पर इनकी कई बातों को शिक्षा के व्यापक प्रयासों में शामिल कर लिया जाता है। आप भविष्य के शिक्षक हैं, इसलिए विभिन्न नवाचारों और परियोजनाओं के संदर्भ में पढ़ते हुए आपने जाना कि सबकी शिक्षा तक पहुँच बनाने के कई तरीके संभव हैं। इससे आपको एक शिक्षक के रूप में अपने काम की रणनीति बनाने में भी मदद मिलगी।

दत्त कार्य

1. घर से दूर रहते हुए आश्रमशालाओं जैसी संस्थाओं में रहकर शिक्षा ग्रहण करने के लाभ और हानियों की विवेचना कीजिए?
2. एम.वी. फाउंडेशन के इस आग्रह से आप कहाँ तक सहमत हैं कि हर बच्चे को प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण करनी ही चाहिए। तर्क दीजिए?
3. वैज्ञानिक मानसिकता का विकास करना सिर्फ विज्ञान विषय का उद्देश्य होना चाहिए, या इसे हर विषय के उद्देश्यों में शामिल किया जाना चाहिए, विवेचन करें?
4. संविधान में इस बात की व्यवस्था है कि कोई भी समुदाय अपने शैक्षिक संस्थान चला सके। राज्य द्वारा संचालित शिक्षा व्यवस्था और समुदाय द्वारा संचालित शिक्षा व्यवस्था में आप किस तरह का रिश्ता पाते हैं?
5. शहर की झुग्गी बस्तियों में रहने वाले बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा की राह में किस तरह की चुनौतियाँ हैं?
6. ''प्रारंभिक शिक्षा से जुड़ी सभी बातों का नियोजन राज्य या केंद्र के स्तर पर सबके लिए समान रूप से हो या इसमें किसी क्षेत्र विशेष के लिए अलग परियोजना अथवा नवाचार हो।'' आपको इसमें से क्या उचित लगता है, विवेचन करें?

इकाई–7
गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में शैक्षिक आँकड़ों का महत्त्व

इकाई 7

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में शैक्षिक आँकड़ों का महत्त्व

परिचय

गत इकाई में हमने शैक्षिक नवाचारों एवं शैक्षणिक पहल के बारे में विस्तार पूर्वक जानकारी प्राप्त की। ये सभी जानकारियाँ संख्यात्मक अवलोकनों के पश्चात ही प्रभावी एवं सार्थक रूप ले सकी है। इसका सकारात्मक प्रभाव भी शिक्षा की गुणवत्ता में परिलक्षित हो रहा है। इस कारण वर्तमान में स्थानीय विद्यालय से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक नई पहलों एवं नवाचारों के प्रस्ताव वस्तुस्थिति की समीक्षा एवं विश्लेषण के उपरांत ही तैयार किए जा रहे है। इसके साथ ही, राष्ट्र, समाज समय की मांग के अनुरूप आवश्यकतानुसार, बदलाव कर प्रस्ताव प्रस्तुत किए जा रहे है। इससे वास्तविक स्थिति का गुणात्मक प्रभाव आँका जा सकेगा एवं इसे दूसरों के साथ साझा किया जा सकेगा।

आजकल शिक्षा को शिक्षाशास्त्र के स्थान पर शिक्षा विज्ञान के रूप में देखा जाने लगा है। इसकी प्रत्येक शाखा में मापन एवं संख्यात्मक अवलोकनों को जोड़ कर महत्त्व दिया जाने लगा है। हम जानते है कि वर्तमान में विश्व स्तर पर वैश्वीकरण का प्रभाव शिक्षा पर भी नज़र आने लगा है। अन्तर राष्ट्रीय स्तर पर भी माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा का सामान्यीकरण हो गया है। अर्थात विभिन्न शोध के आधार माध्यमिक स्तर तक की आयु वर्ग के लिए विषयगत कौशलों की आधारभूत समझ पर एक मत में सहमति बनी दिख रही है। विश्व स्तर पर होने वाले कई सम्मेलनों जैसे–ज्योमतियन एवं डकार में भी कुछ शैक्षिक मुद्दों पर चर्चा कर निर्णय लिए गए है, ताकि सभी को अच्छे स्तर की गुणवत्ता युक्त शिक्षा मिल सके। विद्यालय शिक्षा में शैक्षिक योजनाओं एवं मॉनिटरिंग का कार्य कक्षा कक्ष से लेकर विश्व स्तर पर तथ्य आधारित किया जा रहा है। इस कारण सांख्यकीय अवलोकनों का महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। इससे विद्यालय स्तर पर विद्यालय नियोजन एवं प्रबंधन में भी प्रभावी सहायता मिलती है एवं समय–समय पर आवश्यकतानुसार संख्यात्मक अवलोकन के दौरान भी इन्हें प्रस्तुत किया जा सकता है। ये तथ्य, आँकड़ें एवं संख्यात्मक सूचनाएँ नीति निर्धारकों तक भी भेजे जाते हैं जो कि शैक्षिक नीतियों के निर्धारण में सहयोग करते हैं।

अतः इन संख्यात्मक अवलोकन के महत्त्व एवं उपयोग की गहरी समझ बनाने की जरूरत है। यहाँ हम शिक्षा से संबंधित आँकड़ों के महत्त्व प्रस्तुतीकरण एवं विधियों व तरीकों को जानने का प्रयास करेंगे, ताकि हम अपने स्तर पर उनका सही व सार्थक उपयोग कर सके।

उद्देश्य

1. कुछ सामान्य वर्गीकृत शैक्षणिक आँकड़ों की प्रस्तुति के तरीकों को जाँचना तथा प्रदत्त आँकड़ों का विश्लेषण की समझ विकसित करना।
2. कतिपय चर राशियाँ जैसे लिंगानुपात साक्षरता दर, नामांकन दर, ठहराव एवं विद्यालयों में संसाधनों का आकलन आदि के बारे में जानना तथा उनसे संबंधित प्रारूपों को समझना।
3. गुणात्मक शिक्षा में शैक्षिक आँकड़ों का महत्त्व समझाकर अपने जिले के आँकड़ों तथा राज्य व राष्ट्रीय औसत आँकड़ों से तुलना करने का कौशल विकसित करना।

7.1 आँकड़ों का महत्त्व

आँकड़ों का महत्त्व समझने के लिए बाक्स में दिए गए केस उदाहरण को ध्यान से पढ़िए।

केस स्टेडी के उदाहरण

शांतिदेवी का कहना है कि जयपुर में सब्जी और फलों की कीमतें पिछले महीने से बहुत घट गईं हैं। इसके पक्ष में वे तर्क देती हैं कि जिस बाजार से वह सब्जी खरीदती है वहाँ आलू, प्याज और टमाटर की कीमतें कम हो गई हैं। क्या इस आधार पर कहा जा सकता है कि पूरे शहर में सारी सब्जियों की कीमतें घट गई हैं?

अगर आपको शांतिदेवी के इस कथन को जाँचना है तो किस किस जानकारी की आपको जरूरत होगी? इस पर छोटे समूहों में चर्चा कीजिए।

इसी प्रकार सायरा का कहना है कि तीसरी तक सब बच्चे जोड़ बाकी कर पाते हैं। उन्होंने अपने विद्यालय के कक्षा चार के छात्रों का उदाहरण देते हुए कहा कि अधिकांश छात्र जोड़–बाकी कर सकते हैं। अतः उनका कहना है कि कक्षा चार के पाठ्यक्रम में इनकी पुनरावृत्ति की जरूरत नहीं है। लेकिन रिहाना जो दूसरे विद्यालय में पढ़ाती हैं, का कहना है कि कक्षा चार के बच्चों को जोड़–बाकी समझ में ही नहीं आता है। ऐसे में कक्षा चार में इसकी पुनरावृत्ति जरूरी है। अब हम किस की बात मानें और किस आधार पर ? दोनों अपने–अपने विद्यालय के अनुभव के आधार पर बता रही हैं और वह सही होगा ही, लेकिन क्या यह बात सभी विद्यालयों के लिए प्रासंगिक है? किसी राज्य में चौथी में कितने बच्चे जोड़–बाकी कर पाते है यह कैसे पता करेंगे? क्या इसका कोई सरल तरीका है?

- यह देखने के लिए हमें क्या करना होगा ? क्या आप समूहों में चर्चा करके कुछ सुझाव दे हैं?

खेमचंद एक जिला शिक्षा अधिकारी हैं और उनके सामने यह चुनौती है कि शैक्षणिक रूप से पिछड़े समूहों और बस्तियों को पहचानकर उनके लिए विशेष कार्यक्रम चलाएँ, लेकिन ऐसे समूहों व बस्तियों को कैसे पहचाने?

- **आपस में चर्चा करके आप उन्हें कुछ तरीके सुझाइए।**

उपर्युक्त बातों से आप देख सकते हैं कि कोई भी धारणा जो सीमित अनुभव के आधार पर बनाई जाती है उसका सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता है, यानी उसे हम हर परिस्थिति के लिए सही नहीं मान सकते हैं। जैसे – एक कक्षा के छात्रों की उपलब्धि के आधार पर पूरे राज्य के लिए निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते हैं। अगर हमें किसी बात का सामान्यीकरण करना है और उसके आधार पर कोई नीति या कार्यक्रम बनाना हो तो हमें व्यापक स्तर पर सर्वेक्षण द्वारा सांख्यिकीय अवलोकनों को इकट्ठा करना होगा। सांख्यिकीय अवलोकन की मदद से हम कुछ विशिष्ट उदाहरणों से व्यापक दायरे में समस्याओं को समझ सकते हैं।

सांख्यिकीय अवलोकन इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं कि वे हमें धुँधले कथनों की जगह अधिक स्पष्ट और मात्रात्मक कथन की ओर ले जाते हैं। जैसे, ''मेरे विचार में इस कक्षा के अधिकांश छात्र पढ़ना जानते हैं'', के स्थान पर हम यह कह सकते हैं कि– ''इस कक्षा के 65 प्रतिशत छात्र फर्राटे से पढ़ लेते हैं, जबकि 15 प्रतिशत छात्र अटक–अटक कर पढ़ते हैं और 20 प्रतिशत छात्र पढ़ ही नहीं पाते हैं।'' यही नहीं हम कई तरह के सांख्यिकीय अवलोकनों को आपस में मिलान करके देख सकते हैं कि उनका आपस में क्या कोई संबंध है? उदाहरण के लिए यह देख सकते हैं कि जो बच्चे ठीक से पढ़ नहीं पा रहे हैं क्या उनकी कोई अन्य विशेषता भी है?

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सांख्यिकी अवलोकन एवं आँकड़ें कार्य योजना निर्माण की सही दिशा प्रदान करते हैं तथा भावी व्यूह रचना निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं। आँकड़ों के उचित उपयोग से हम जटिल से जटिल समस्याओं को समझकर इनका तार्किक रूप से हल ज्ञात करने में सक्षम हो सकते हैं। इसलिए राष्ट्रीय, राज्य एवं अन्य स्तर पर होने वाले शैक्षिक सर्वे एवं शोध में आँकड़ों का विशिष्ट स्थान होता है। इसके लिए अति आवश्यक है कि प्रयोग किए गए आँकड़ें शुद्ध, व्यापक एवं प्रामाणिक हों।

7.2 आँकडों के प्रकार

कुछ आँकडे हमें स्थानीय विद्यालय स्तर पर एकत्र करने होते है। इस के अतिरिक्त हमारे देश में कई संस्थाएँ हैं जो समय–समय पर आँकड़ें इकट्ठे करके, उन्हें जाँचकर प्रकाशित करती हैं। इनमें सबसे प्रमुख है 'भारत का जनगणना आयोग', 'राष्ट्रीय सैंपिल सर्वे संगठन' (National Sample Survey Organisation – NSSO) वहीं

अंतरराष्ट्रीय प्रकाशन जिनमें संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) , अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (I.L.O.), मुद्रा कोष (I.M.F.) जैसे संगठन अपने से संबंधित आँकड़ों का संग्रह कर प्रकाशन करवाते हैं।

ये तो रहे व्यापक आँकडें इनके अतिरिक्त शिक्षा संबंधी आँकडें राज्य के शिक्षा विभाग और भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्रालय, विभागीय माध्यम से जानकारी एकत्र करके प्रकाशित करते हैं तथा जिनकी संस्थाएँ भी अपने सर्वेक्षणों की रिपोर्ट प्रकाशित करती हैं। इसमें न केवल विद्यालय, शिक्षक, छात्रों की संख्या आदि का विवरण होता है बल्कि छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि का भी आकलन प्रकाशित होता है।

शिक्षा सांख्यिकी के अनुसंधान के क्षेत्र में आँकड़ों को एकत्र करने के स्रोतों के आधार पर इनका वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है– प्राथमिक आँकड़ें व द्वितीयक आँकड़ें।

प्राथमिक आँकड़ें :– अनुसंधानकर्ता किसी समस्या/प्रयोग के लिए स्वयं अथवा अपने कार्यकर्ताओं के सहयोग से नये सिरे से पहली बार आँकड़ों को संग्रहित करता है और अपने अनुसंधान हेतु स्वयं द्वारा संग्रहित आँकड़ों के विश्लेषण से निष्कर्ष तक पहुँचता है। इस प्रकार स्वयं द्वारा संग्रहित आँकड़े प्राथमिक आँकड़ें कहलाते हैं।

जैसे – प्रश्न पत्र से कक्षा के विद्यार्थियों की प्राप्तांक सूची, क्रियात्मक अनुसंधान हेतु सर्वे के आँकड़ें, प्रश्नावली निर्मित कर अभिमत जानना, किसी सामाजिक, आर्थिक क्षेत्र में अनुसंधानकर्ता द्वारा स्वयं एकत्र आँकड़ें आदि।

द्वितीयक आँकड़ें :– जब दूसरों द्वारा एकत्र आँकड़ें अथवा किसी मानक संस्थान द्वारा प्रकाशित आँकड़ें जब अनुसंधानकर्ता आँकड़ों को अपने अनुसंधान हेतु प्रयोग में लेता है इस प्रकार के आँकड़ें उसके लिए द्वितीयक आँकड़ें माने जाते है।

जैसे – विद्यालय का स्थानीय परीक्षा परिणाम, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड या विश्वविद्यालय के परीक्षा परिणाम, राज्य या केंद्र सरकार के संस्थानों द्वारा प्रकाशित आँकड़ें, किसी संस्थान के प्रकाशित आँकड़ें आदि आँकड़ों को कोई अनुसंधानकर्ता प्रयोग में लें तो ये सभी आँकड़ें द्वितीयक आँकड़ें होंगे।

7.3 आँकड़ों के विश्लेषण हेतु प्रमुख विधियाँ

शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने के लिए हमें यह जानना आवश्यक है कि हमारे राज्य एवं देश में शिक्षा की स्थिति कैसी है? इसके साथ ही यह भी जानना आवश्यक है कि हमारे सामने कौन–कौन सी शैक्षिक चुनौतियाँ है, जिन पर कार्य करने की आवश्यकता है।

शैक्षिक स्थिति को जानने के लिए विभिन्न प्रकार के सांख्यिकी अवलोकन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के सांख्यिकी अवलोकन को गणना, मानचित्र, दंड आरेख, पाई डाइग्राम (वृत्ताकार लेखाचित्र) एवं सारणियों आदि के माध्यम से प्रभावी रूप से प्रदर्शित कर सकते हैं। इस प्रकार आँकड़ों के प्रदर्शन, विश्लेषण व निष्कर्ष के आधार पर एक वाछित परिणाम की ओर अग्रसर हो सकते हैं। इन तथ्यात्मक परिणामों से शिक्षा के क्षेत्र में की जाने वाली गतिविधियों, प्रयासों, संसाधनों, वित्तीय व्यवस्थाओं व आवश्यकताओं का आंकलन होता है।

आँकड़ें प्रदर्शन के तरीके जैसे – मानचित्र, दंड आरेख व सारणियाँ आदि से प्रदर्शन का उद्देश्य संबंधित व्यक्ति/संस्था की व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना है। विद्यालय से संबंधित सूचना यथा– नामांकन, ठहराव, साक्षरता दर, विद्यार्थी प्रगति आदि का प्रदर्शन करने के लिए प्रतिशत तथा औसत का प्रमुख रूप से उपयोग होता है।

आइए, इन सांख्यिकीय अवलोकनों के प्रदर्शन करने के तरीकों को विस्तार से समझने का प्रयास करें।

7.3.1 सांख्यिकीय गणनाओं से विश्लेषण

सामान्यतः प्रारंभिक स्थिति में शैक्षिक सांख्यिकी में दिए गए न्यादर्श से विश्लेषण व निष्कर्ष तक पहुँचने में

सांख्यिकी के मौलिक सूत्रों का ही प्रयोग होता है। इन सूत्रों में माध्य, माध्यिका, बहुलक जो दिए गए आँकड़ों में केंद्रीय प्रवृत्ति का मापन करते हैं। समान्तर माध्य का उपयोग अधिक स्थिर माप एवम् आवश्यकता हों वहां प्रयोग किया जाता है क्योंकि माध्य को केंद्रीय प्रवृत्ति का सर्वाधिक विश्वसनीय माप समझा जाता है। वहीं माध्यिका का उपयोग जब वितरण विकृत तथा असामान्य हों तब प्रयोग किया जाता हैं। माध्यिका प्राप्तांक वितरण का वह मध्य बिंदु होता है जहाँ वितरण के आधे प्राप्तांक इसके उपर तथा आधे प्राप्तांक इसके नीचे होते हैं। वहीं बहुलक शीघ्रता या अनुमान मात्र से ही केंद्रीय प्रवृत्ति का मापन करना हो तब बहुलक ज्ञात करते हैं क्यों कि बहुलक सर्वाधिक आवृत्ति वाला मान होता है तथा बहुलक तब ज्ञात करते हैं जब वितरण अपूर्ण होता है। प्रतिशत और औसत (समांतर माध्य) किसी भी दिए गए न्यादर्श में प्रारंभिक परिणामों हेतु प्रमुख रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। आइए हम इन सूत्रों का उदाहरणों के माध्यम से प्रयोग करने का प्रयास करते है –

$$\text{औसत या समांतर माध्य} = \frac{\text{राशियों का योग}}{\text{राशियों कि संख्या}}$$

अर्थात किसी बंटन में x_1, x_2, x_3 चर है तो समांतर माध्य

$$(\bar{x}) = \frac{x_1 + x_2 + x_3 + \ldots + xn}{n}$$

$$\text{अर्थात समांतर माध्य } (\bar{x}) = \frac{\sum_i^n xi}{n}$$

उदाहरण – 1. कक्षा 8 के 10 छात्रों के गणित का प्राप्तांक 58, 65, 27, 24, 87, 11, 15,9, 34, 48 है तो कक्षा 8 के विद्यार्थियों का गणित विषय के औसत अथवा समांतर माध्य प्राप्तांक क्या रहा ?

हल

$$\text{समांतर माध्य} = \frac{\text{राशियों का योग}}{\text{राशियों की संख्या}}$$

$$\text{समांतर माध्य } (\bar{x}) = \frac{\sum_i^n xi}{n}$$

$$\text{समांतर माध्य (औसत)} = \frac{58 + 65 + 27 + 24 + 87 + 11 + 15 + 9 + 34 + 48}{10}$$

$$\text{समांतर माध्य} = \frac{378}{10} = 37.8 \text{ होगा}$$

अर्थात सूत्र के माध्यम से उस कक्षा के विद्यार्थियों का गणित विषय का औसत प्राप्तांक 37.8 है।

इस प्रकार हम विद्यार्थी की औसत उपस्थिति, कक्षा में गृह कार्य व कक्षा कार्य में प्राप्तांक के औसत आदि का अनेक शैक्षिक दृष्टिकोण से विश्लेषण कर वांछित परिणामों से सकारात्मक प्रयास गुणात्मक शिक्षा हेतु प्रयुक्त किए जा सकते हैं।

प्रतिशत :–

$$\text{प्रतिशत} = \frac{\text{वांछित आँकडों का योग}}{\text{न्यादर्श के आँकडों का कुल योग}} \times 100$$

उदाहरण 2 : मूमल शेखावत ने कक्षा 8 में प्रत्येक विषय में पूर्णांक 80 में से निम्नवत् प्राप्तांक प्राप्त किए।

विषय	हिंदी	अँग्रेजी	विज्ञान	गणित	सामाजिक विज्ञान	संस्कृत	कला शिक्षा
प्राप्तांक	52	37	40	56	36	48	32

कुल प्राप्तांकों के प्रतिशत एवं प्रत्येक विषय प्रतिशत ज्ञात करें।

हल : –

कुल पूर्णांक = 80 x 7 = 560

कुल प्राप्तांक = 52 + 37 + 40 + 56 + 36 + 48 + 32 = 301

प्राप्तांक प्रतिशत में = $\frac{301}{560}$ x100 = 53.75%

अर्थात सातों विषय का कुल प्राप्तांक प्रतिशत 53.75 है।

अलग–अलग विषयों के प्राप्तांक प्रतिशत में ज्ञात करें –

हिंदी = $\frac{52}{80}$ x100 = 65%

अँग्रेजी = $\frac{37}{80}$ x100 = 46.25%

विज्ञान = $\frac{40}{80}$ x100 = 50%

गणित = $\frac{56}{80}$ x100 = 70%

सामाजिक विज्ञान = $\frac{36}{80}$ x100 = 45%

संस्कृत = $\frac{48}{80}$ x100 = 60%

कला शिक्षा = $\frac{32}{80}$ x100 = 40%

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि कई आँकड़ों को प्रतिशत में रखने के पश्चात वास्तविक विश्लेषण कर निष्कर्ष तक हम पहुँच सकते हैं तथा गणना से गुणात्मक शिक्षा हेतु प्राप्त निष्कर्षों का प्रयोग कर सकते है।

गतिविधि

उपर्युक्त सांख्यिकीय गणना विधि से आप अपनी कक्षा के किन्हीं 10 विद्यार्थियों की सभी विषय में परीक्षा के प्राप्तांकों की सूची बनाए। इन प्राप्तांकों से माध्य तथा अलग–अलग विषयों में प्रतिशत प्राप्तांकों के आधार पर विस्तृत विश्लेषण कीजिए।

आइए हम अब विद्यार्थियों के नामांकन, ठहराव, साक्षरता दर व जनसंख्या संबंधी आँकड़ों की विवेचना सूत्रों के माध्यम से जानने का प्रयास करें। सामान्यतः नामांकन, ठहराव व साक्षरता दर को प्रतिशत में प्रदर्शित करते हैं तथा जनसंख्या संबंधी आँकड़ों को प्रति हजार में व्यक्त करते हैं जिसमें लिंगानुपात, आदि संबंधित सांख्यिकीय अवलोकन आँकड़ें प्रति हजार में ही व्यक्त करते हैं।

सकल नामांकन दर :–

यह पता करने की कोशिश की जाती है कि किसी राज्य या देश के 6 से 14 साल के बच्चों में से कितने प्रतिशत बच्चे विद्यालयों में दर्ज हैं। इसके लिए सभी विद्यालयों में दर्ज बालकों की की संख्या को उस बालकों की जनसंख्या से भाग देकर 100 से गुणा किया जाता है।

$$\text{सकल नामांकन दर} = \frac{\text{सभी विद्यालयों में 6 से 14 वर्ष तक दर्ज बच्चों की संख्या}}{\text{देश या राज्य में 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों की कुल संख्या}} \times 100$$

गतिविधि

हमारे संविधान ने सभी बालकों को ''शिक्षा का अधिकार'' कानून के अंतर्गत देश के 6 से 14 वर्ष के प्रत्येक बालक को अध्ययन के अवसर दिलवा पाएगा सकल नामांकन दर के शत–प्रतिशत लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु सरकार द्वारा किए जाने वाले प्रयासों की कक्षा कक्ष में चर्चा कीजिए।

विद्यालय त्यागने (Drop out) की दर व ठहराव दर :

कई बालकों का नामांकन विद्यालय में होने के पश्चात उनमें से कई बालक विद्यालय आते ही नहीं हैं। जो बालक विद्यालय आते हैं उनमें से भी कई बालक 8 वर्ष तक की शिक्षा पूरी होने से पहले ही विद्यालय आना छोड़ देते हैं। यह चिंता का विषय है कि हमारे देश के बहुत से बालक प्रवेश लेने के बाद पाँच या आठ वर्ष की शिक्षा पूरा किए बिना विद्यालय आना बंद कर देते हैं। ऐसे बालकों को शाला त्यागी बालक कहते हैं। ये बालका विद्यालय क्यों नहीं आते हैं। इसके कई अध्ययन हुए हैं – एन.एस.एस.ओ. ने ऐसे बच्चों के सर्वेक्षण में उनसे पता किया है कि वे विद्यालय क्यों नहीं आते हैं। अधिकतर बच्चों का कहना है कि उन्हें परिवार की जीविका के लिए काम करना पड़ता है, या फिर घर के काम में हाथ बटाना पड़ता है या फिर यह कि उन्हें शिक्षा महत्त्वपूर्ण नहीं लगा।यह सोचने का विषय है कि राजस्थान में शाला न जाने वाले प्रत्येक 1000 बच्चों में से लगभग 260 बच्चों व युवाओं ने शिक्षा को उनके जीवन के लिए अप्रासंगिक कहा, और 280 बच्चों व युवाओं ने पारिवारिक आय जुटाने को कारण बताया और लगभग 180 ने घरेलू काम को मुख्य कारण बताया।

(NSSO: Status of Educational And Vocational Training In India 2009-10 (New Delhi 2013) Statement 3.18.1 Page 115)

ठहराव दर हम निम्नांकित सूत्र से ज्ञात कर सकते हैं।

$$\text{सकल ठहराव दर} = \frac{\text{सभी विद्यालयों में 6 से 14 वर्ष के आठवीं बच्चों की संख्या}}{\text{देश या राज्य में सभी विद्यालयों में 6 से 14 वर्ष के बच्चों की संख्या}} \times 100$$

गतिविधि

''आपके जिले में

अपने आस–पास की किसी बस्ती की पहचान कीजिए जहाँ सारे बालक व बालिका विद्यालय नहीं जाते हैं, वहाँ पता कीजिए कि

क. 6 से 13 साल के कौन–कौन बच्चे या बच्चियाँ नियमित रूप से विद्यालय नहीं जाते हैं और इसका क्या कारण है ?

ख. क्या ऐसे भी बच्चे हैं जो कभी विद्यालय में गए ही नहीं हैं ?

ग. क्या ऐसे बच्चे भी हैं जो कभी विद्यालय जाते थे मगर वर्तमान में जाना बंद कर दिया हो ?

इस सर्वेक्षण से मिली जानकारी को कक्षा में साझा करें और चर्चा करें कि किस तरह के बालक व बालिकाएँ विद्यालय नहीं जा पाते हैं और इसके क्या कारण हो सकते हैं ? उन्हें विद्यालय लाने के लिए क्या विशेष कदम उठाने की जरूरत है ?

ध्यान रहे कि सर्वेक्षण में उन सभी बच्चों की गिनती करें जो उस मोहल्ले में रहते हैं भले ही वे विशेष सक्षम हों या फिर बेघर हों।

साक्षरता दर : –

साक्षरता दर 1981 तक हमारे देश में परम्परागत रूप से संपूर्ण जनसंख्या से गणना करके ज्ञात की जाती रही है परंतु साक्षरता दर को देश के विकास हेतु अर्थपूर्ण प्रक्रिया मानते हुए इसकी गणना संबंधी आँकड़ों को ज्ञात करने में परिवर्तन हुए। वर्श 1991 से 0–6 वर्ष के नीचे की जनसंख्या को कुल जनसंख्या से अलग रखा गया था । इस प्रकार यह परिवर्तन करते हुए वर्ष 1991 से 0–6 वर्ष के नीचे की जनसंख्या को कुल जनसंख्या की गणना से अलग रखा गया है तथा आगे के वर्षों में साक्षरता दर ज्ञात करने हेतु 1991 के परिवर्तन को ही अनवरत रखा गया है।

$$\text{अशोधित साक्षरता दर (Crude Literacy Rate)} = \frac{\text{कुल साक्षर व्यक्तियों की संख्या}}{\text{कुल जनसंख्या}} \times 100$$

परंतु प्रभावी साक्षरता दर (Effective Literacy Rate) 0 से 6 वर्ष आयु वर्ग के नीचे की जनसंख्या को कुल जनसंख्या की गणना से अलग रखते हुए निम्नवत् सूत्र के माध्यम से ज्ञात की जा सकती है।

$$\text{प्रभावी साक्षरता दर} = \frac{\text{7 वर्ष एवम् 7 वर्ष के उपर आयु के कुल व्यक्तियों की संख्या}}{\text{7 वर्ष एवम् 7 वर्ष के उपर आयु की कुल जनसंख्या}} \times 100$$

नोटः साक्षरता दर निकालते समय यह माना जाता है कि सात साल से कम आयु के बच्चे साक्षर नहीं हो सकते हैं। इसलिए सात साल से कम आयु के बच्चों की संख्या को जनसंख्या से घटाकर यह साक्षरता दर ज्ञात की जाती है।

गतिविधि

इस तालिका की पूर्ति प्रकाशित आँकड़ों के आधार पर कीजिए तथा अंतर ज्ञात कीजिए।

अभ्यास तालिका 3. 2011 में राजस्थान में महिला और पुरुष साक्षरता दरों में अंतर

	महिला	पुरुष	अंतर
अनु जाति	37		
अनु जनजाति		75	
सभी	53		

- क्या यह अंतर तीनों में लगभग एक सा है या किसी में बहुत अधिक है ? इसका क्या कारण होगा ?
- क्या आपको लगता है कि महिला साक्षरता दर की इस स्थिति का कोई संबंध लिंग अनुपात की गिरावट से है ?

गतिविधि – आपके जिले में

पिछले अभ्यास में जिन जिलों का चयन आपने किया था उन्हीं के साक्षरता दर आँकड़ें एकत्र करके तालिका भरें।

अभ्यास तालिका : राजस्थान में 7 वर्ष से अधिक लोगों में साक्षरता दर प्रतिशत में

क्रम	राज्य	कुल	पुरुष	महिला
1	आपके जिले का नाम			
2	अन्य चयनित जिले का नाम			
3	जिले			
4	जिले			
5	**राजस्थान**	67	81	53
भारत		**74**	**82**	**65**

- कौन से जिले में साक्षरता दर सबसे अधिक है ?
- क्या यह कहा जा सकता है कि अधिक विकसित जिलों में लिंग अनुपात बेहतर है ?
- राज्य के औसत व राष्ट्रीय औसत की तुलना में आपके जिले में साक्षरता की स्थिति कैसी है ?
- आपके जिले में साक्षरता दर सामान्य या कम होने के क्या कारण हो सकते हैं ?
- आपके जिले में महिला और पुरुष साक्षरता दरों के बीच कितने प्रतिशत का अंतर है ?क्या यह राज्य की तुलना में अधिक चिंताजनक है ? स्थिति को सुधारने के लिए किस तरह के कदम उठाए जाने चाहिए?

नोटः जब आप आँकड़ें पेश करें तब उसका स्रोत जरूर लिखें, आपको यह कहाँ से मिले तथा यह किस पर आधारित है।

जनसंख्या संबंधी आँकड़ें:

जनसंख्या हमारे देश तथा राज्य में कितने लोग रहते हैं? उनमें से कितनी महिलाएँ हैं व कितने पुरुष हैं? हमारी आबादी बढ़ रही है कि नहीं, अगर हाँ तो किस दर से.. आदि बातों पर हम यहाँ विचार करेंगे।

जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़ों की गणना प्रति हजार के इकाई में की जाती है। जैसे–

$$\text{अशोधित जन्म दर} = \frac{\text{दिए हुए वर्ष में जन्में बच्चों की संख्या}}{\text{उस वर्ष के बीच की कुल जनसंख्या}} \times 1000$$

जनगणना में यह देखा जाता है कि प्रति 1000 पुरुषों की तुलना में कितनी महिलाएँ हैं। आदर्श स्थिति यह होगी कि 1000 महिलाएँ भी हों, लेकिन हमारे देश में क्या स्थिति है, निम्नांकित सारणी से स्पष्ट है–

तालिका 7. भारतः लिंग अनुपात 2001 व 2011 (महिला प्रति हजार पुरूष)

	राज्य	2001	2011
	राजस्थान	921	926
	असम	935	954
	गुजरात	920	918
	मध्य प्रदेश	919	930
	तमिलनाडु	987	995
	भारत	933	940

स्रोतः भारत जनगणना, 2001 व 2011.

उपर्युक्त सारणी से जनगणना के लिंगानुपात आँकड़ों का अवलोकन करें कि प्रति 1000 पुरुषों की तुलना में कितनी महिलाएँ हैं ? हमारे देश में 2001 में 1000 पुरुषों की तुलना में महिलाएँ 933 थीं, जिनकी संख्या 2011 में बढ़कर 940 हो गई। इसके पहले जनसंख्या की तुलना के लिए लिए गए प्रदेशों के आँकड़ें देखने पर हम पाते हैं कि राजस्थान में लिंग–अनुपात सबसे कम था, यहाँ 2001 में प्रति 1000 पुरुष पर महिलाओं की संख्या 921 थी, जो 2011 में बढ़कर 926 हो गई। लिंग अनुपात की दृष्टि में तमिलनाडु अन्य चयनित राज्यों में सबसे बेहतर है। वहाँ का लिंग अनुपात 1000 पुरुषों पर 995 महिलाएँ है।

लिंग अनुपात को समझने का एक और तरीका होता है 0 से 6 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों में लिंग अनुपात देखना। इससे पता चलता है कि किसी राज्य में बालकों की तुलना में बालिकाओं के जीवित रहने की संभावना कितनी है। यह इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आगे के दशकों के लिंग अनुपात बच्चों के लिंग अनुपात पर निर्भर करता है। 1961 में पूरे भारत में यह अनुपात 976 था, तब से लगातार कम होते हुए 2011 में यह 914 पर आ गया। 0 से 6 वर्ष के बच्चों में लिंग अनुपात में राजस्थान में भी गिरावट आ रही है, यह 2001 में 909 था जो 2011 में गिरकर 883 रह गया जो कि एक चिन्ताजनक स्थिति की ओर इशारा कर रहा है।

गतिविधि

आपके अनुमान से आपके शहर या गाँव में कुल कितने लोग रहते होंगे? आप द्वारा अनुमानित आँकड़ों का प्रकाशित आँकड़ो से तुलना करे कि आँकड़ो के अनुमान का अंतर कितना है व क्यों ?

7.3.2 मानचित्र के माध्यम से आँकड़ों का विश्लेषण

जनसंख्या, साक्षरता दर, लिंगानुपात आदि आँकड़ों को क्षेत्र के अनुसार यथा गाँव, शहर, राज्य या देश के मानचित्र के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है। जो आँकड़ों के मध्यमान (औसत), मध्यमान से उच्च व मध्यमान से निम्न स्थिति का छायांकन अथवा अलग–अलग रंगों के प्रदर्शन से मानचित्र में प्रदर्शित किया जा सकता है। आइए एक उदाहरण से समझें।

2011 में देश के निम्न राज्यों की साक्षरता दर

क्र.सं.	राज्य	सारक्षता दर (प्रतिशत)	राष्ट्रीय औसत से 74: तुलना
1.	असम	72.2%	मध्यम
2.	गुजरात	78%	अधिक
3.	राजस्थान	66%	कम
4.	मध्यप्रदेश	69.3%	कम
5.	तमिलनाडु	80.1%-	अधिक

भारत के 5 राज्यो कि साक्षरता दर की देश की औसत दर से तुलना



शैक्षणिक आँकड़ों के अध्ययन के संदर्भ में हम मुख्य रूप में राजस्थान की स्थिति को समझने का प्रयास करेंगे। किसी भी राज्य की स्थिति को हम दूसरे राज्यों की तुलना से बेहतर समझ सकते हैं। इसके लिए हमने राजस्थान के अलावा पाँच और राज्यों को चुना है, असम जो पूर्वी भारत का एक महत्त्वपूर्ण राज्य है, गुजरात जो राजस्थान का पश्चिमी पड़ोसी राज्य है, मध्यप्रदेश जो पूर्वी पड़ोसी राज्य है, तथा तमिलनाडु जो दक्षिण भारत का राज्य है।

यहां शैक्षणिक आँकड़ों के संदर्भ में अलग–अलग राज्यों की शैक्षणिक स्थिति का प्रदर्शन भारत के मानचित्र में प्रदर्शित किया गया है। अलग–अलग राज्यों को विविध

छायांकित भाग से दिखाया गया है। यह छायांकन मध्यमान को प्रदर्शित किया करता है। किसी बंटन को चरों के औसत के आधार पर कोई भी प्रतिदर्थ जब वर्गीकृत किया जाता है तो यह क्षेत्र आधारित आँकड़ों का सहज प्रदर्शन है।

अगर हम इन राज्यों की साक्षरता दर को देखें तो ज्ञात होता है कि तमिलनाडु एवं गुजरात आर्थिक रूप से विकसित राज्यों की शैक्षिक स्थिति भी सुदृढ़ है। असम जो कि आर्थिक रूप से (तमिलनाडु एवं गुजरात की अपेक्षा) कम विकसित है वह शैक्षिक दृष्टि से मध्यम पायदान पर है। वही राजस्थान व मध्यप्रदेश क्षेत्रफल व जनसंख्या की दृष्टि से तो बड़े है, किंतु राष्ट्रीय औसत 74: की शैक्षिक स्तर की तुलना में उनसे कम हैं। इसी विश्लेषण को मानचित्र में विभिन्न रंगों के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

गतिविधि

राजस्थान के मानचित्र में पाँच जिलों की शैक्षिक स्थिति ज्ञात कर मानचित्र के माध्यम से तुलनात्मक विवेचना कीजिए।

7.3.3 दंड आरेख (Bar Diagram) के माध्यम से विश्लेषण

आपने माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से प्राप्त परीक्षा परिणाम आपके विद्यालय के अलग–अलग वर्षो का सूचना पट्ट पर दंड आरेख (Bar Diagrame) के रूप में प्रदर्शित भाग देखा होगा। दंड आरेख में प्रतिशत में व्यक्त आँकड़ों को प्रमुख रूप से दिखाया जाता है।

उदाहरण 1

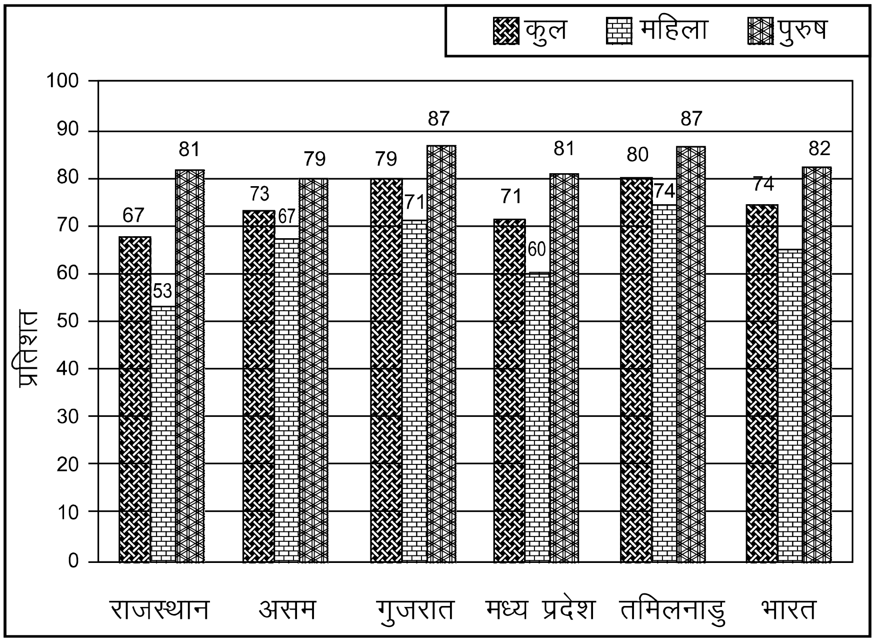
प्रस्तुत उदाहरण में हम भारत की जनगणना, 2011 में साक्षरता दर जिसमें राजस्थान सहित पाँच राज्यों में साक्षरता दर का विश्लेषण दंड आलेख के माध्यम से करेंगे।

तालिका 7.1 भारत मे 7 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों में साक्षरता दर (प्रतिशत में)

क्र.सं.	राज्य	2011		
		कुल	पुरुष	महिला
1.	राजस्थान	67	81	53
2.	असम	73	79	67
3.	गुजरात	79	87	71
4.	मध्य प्रदेश	71	81	60
5.	तमिलनाडु	80	87	74
भारत		**74**	**82**	**65**

स्रोतः भारत जनगणना, 2011.

इस उदाहरण में राजस्थान, असम, गुजरात, मध्यप्रदेश व तमिलनाडु की साक्षरता दर में तुलना दंड आरेख के माध्यम कर सकते हैं। इन राज्यों तीन चरों (महिला साक्षरता दर, पुरुष साक्षरता दर व कुल साक्षरता दर) की तुलना दंड आरेख से प्रदर्शित करने पर परिणामों की तुलनात्मक विवेचना आसानी से कर सकते हैं। इसे दंड आरेख से इस प्रकार से व्यक्त करते हैं–



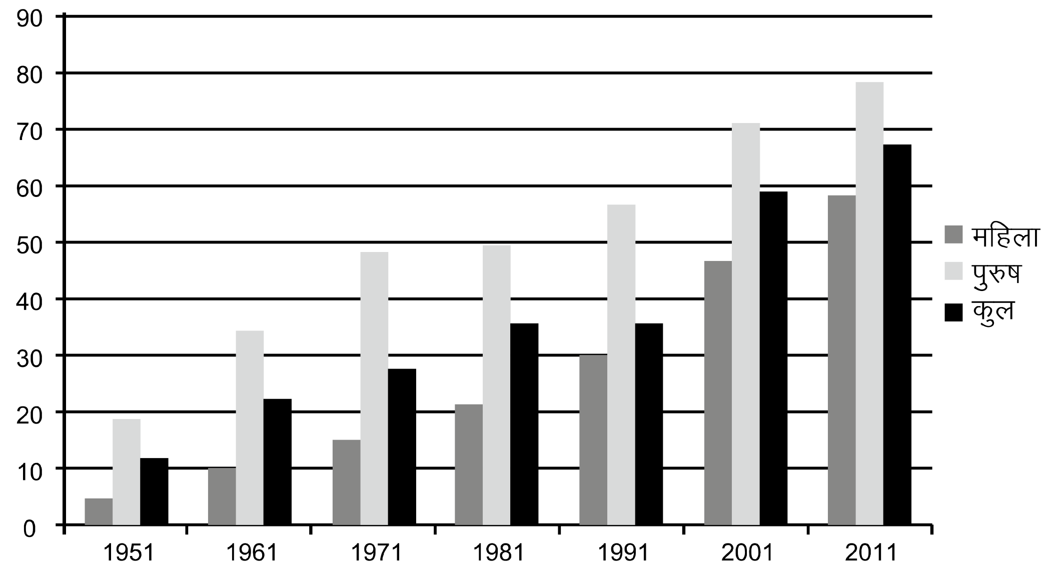
आरेख 7.1 भारत मे 7 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों में साक्षरता दर (प्रतिशत में)

इस विश्लेषण से नीति निर्धारण एवं नियोजकों को निवेश की दिशा में सार्थक प्रयास करने में मदद मिलती है।

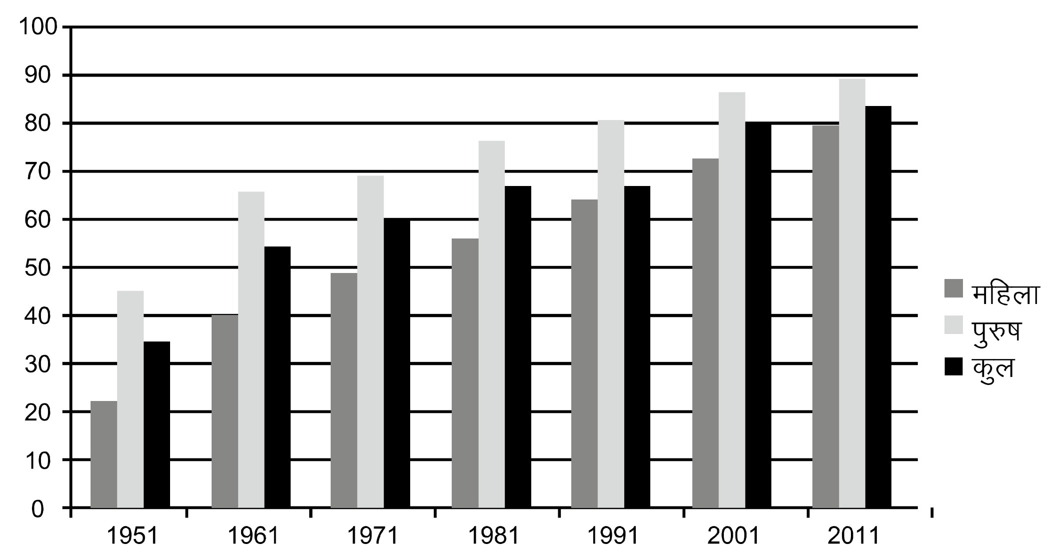
उदाहरण 2

स्वतंत्र भारत की सारक्षता दर स्रोत : (Census of Inia, Office of Registrar,India)

क्र.सं.	ग्रामीण			शहरी			समंवित		
वर्ष	महिला	पुरुष	कुल	महिला	पुरुष	कुल	महिला	पुरुष	कुल
1951	4.87	19.02	12.1	22.33	45.6	34.59	8.86	27.15	18.32
1961	10.1	34.5	22.5	40.5	66	54.4	15.35	40.4	28.31
1971	15.5	48.6	27.9	48.8	69.8	60.2	21.97	45.96	34.45
1981	21.7	49.6	36	56.3	76.7	67.2	29.76	56.38	43.57
1991	30.17	56.96	36	64.05	81.09	67.2	39.29	64.13	52.21
2001	46.7	71.4	59.4	73.2	86.7	80.3	53.67	75.26	64.83
2011	58.75	78.57	67.8	79.92	89.67	84.1	65.46	82.14	74.04
% वृद्धि दर 2001 से 2011 तक	26%	10%	14%	9%	3%	5%	22%	9%	14%



लेखाचित्रः 7.2 स्वतंत्र भारत की सारक्षता दर 1951 से 2011तक (ग्रामीण पुरुष, महिला व कुल)



लेखाचित्रः 7.3 स्वतंत्र भारत की सारक्षता दर 1951 से 2011तक (शहरी पुरुष, महिला व कुल)

गतिविधि

1 आप राजस्थान सहित अपने मण्डल के जिलों की उपर्युक्त उदाहरण की तरह 1951 से 2011 तक ग्रामीण, शहरी व समन्वित महिला, पुरुष व कुल के आँकड़ें संग्रहित कर दंड आरेख के रूप व्यक्त कर विवेचना कीजिए।

2. आपने 10 सहपाठियों के कक्षा 12 वीं के समग्र प्राप्तांकों की सूची बनाकर दंड आरेख (Bar diagram) के रूप व्यक्त कर परिणामों की विवेचना कीजिए।

उदाहरण 3

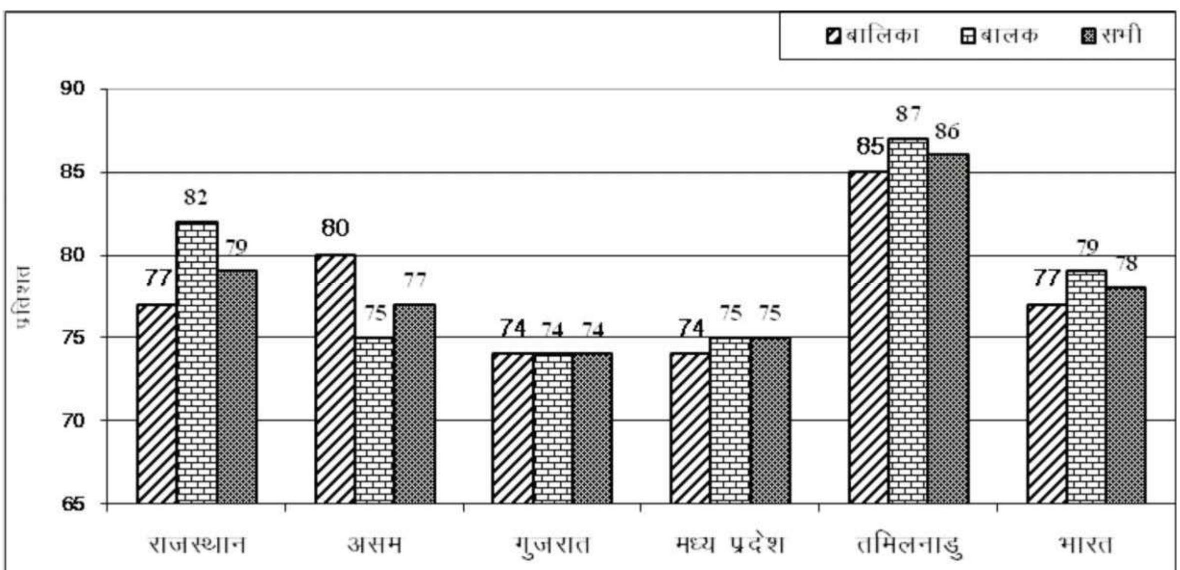
विद्यालय में नामांकन और उपस्थिति

तालिका 7.5

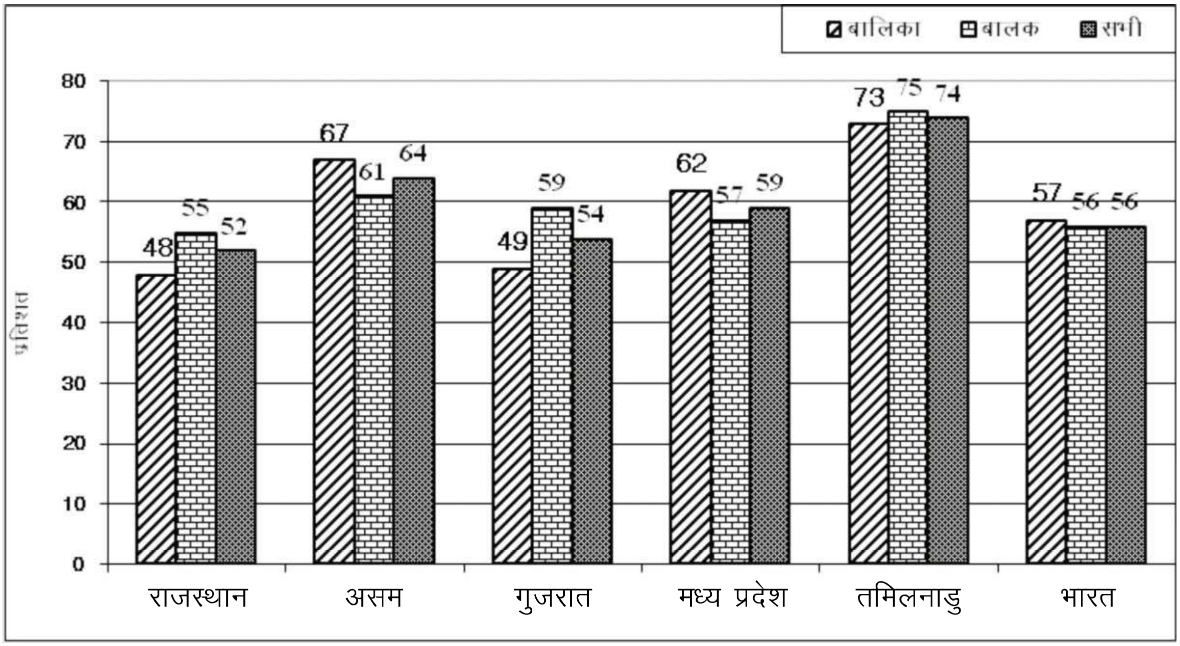
6 से 13 साल के बच्चे जो विद्यालय में पढ़ रहे थे– 2009–10
(प्रतिशत में) विद्यालय में उपस्थिति

क्र.सं.	राज्य	6 से 10 वर्ष के बच्चे			11 से 13 वर्ष के बच्चे		
		बालिका	बालक	सभी	बालिका	बालक	सभी
1.	राजस्थान	77	82	79	48	55	52
2.	असम	80	75	77	67	61	64
3.	गुजरात	74	74	74	49	59	54
4.	मध्य प्रदेश	74	75	75	62	57	59
5.	तमिलनाडु	85	87	86	73	75	74
भारत		77	79	78	57	56	56

स्रोत – NSSO: Status of Educational And Vocational Training In India 2009-10 (New Delhi 2013) Table 3.12.1 Page 79.
Statement 3.17.1: Net attendance ratio (per 100 persons) by level of current attendance in educational Institution.



आरेख– 7.4 6 से 10 साल के बच्चे जो विद्यालय में पढ़ रहे थे– 2009–10
(प्रतिशत में) विद्यालय में उपस्थिति



आरेख– 7.5 11 से 13 साल के बच्चे जो विद्यालय में पढ़ रहे थे– 2009–10
(प्रतिशत में) विद्यालय में उपस्थिति

इन आँकड़ो से पता चलता है कि अभी भी देश के लगभग 22 प्रतिशत बच्चे प्राथमिक विद्यालय में भी नहीं जा रहे हैं। उच्च प्राथमिक विद्यालय (कक्षा 6 से 8) में तो लगभग आधे बच्चे ही जा रहे हैं। हालांकि कुछ राज्य जैसे असम और तमिलनाडु में स्थिति बेहतर है कहीं स्थिति काफी चिंताजनक है।

7.3.4 पाइ डाइग्राम (वृत्त आरेख) के माध्यम से विश्लेषण

जब आँकड़ों का न्यादर्श मुख्यरूप से प्रतिशत में दिए गए हो अथवा कभी अन्य आँकड़ों को भी करने के लिए पाइ डाइग्राम (वृत्त आरेख) के माध्यम से प्रदर्शित करते हैं। चूँकि यह चित्र वृत्ताकार होता है इसलिए इसे वृत्त आरेख (पाइ डाइग्राम) कहते हैं। एक वृत्त में कुल 360° अंश (Degree) होते हैं। दिए गए 100 प्रतिशत अथवा अन्य आँकड़ों को 360° अंश (Degree) में बदलकर वृत्त आरेख (पाइ डाइग्राम) प्रदर्शित किया जाता है।

उदाहरण 1. एक जिला शिक्षा एवम् प्रशिक्षण संस्थान (डाइट) के द्वितीय वर्ष सेवा पूर्व परीक्षा परिणाम निम्नलिखित है, परिणामों को वृत्त आरेख (पाइ डाइग्राम) द्वारा प्रदर्शित कीजिए।

श्रेणी	**परिणाम प्रतिशत में**
प्रथम श्रेणी	20%
द्वितीय श्रेणी	40%
तृतीय श्रेणी	30%
अनुत्तीर्ण	10%

हलः

आईये, सबसे पहले प्रतिशत अथवा अन्य आँकड़ों को 360° अंश (Degree) में बदलते हैं।

प्रतिशत आँकड़ों को 360° अंश का सूत्र = $\frac{360}{100} \times$ प्रतिशत मान

यहां आंकड़ों में चूंकि 100 % = 360° रखते हैं।

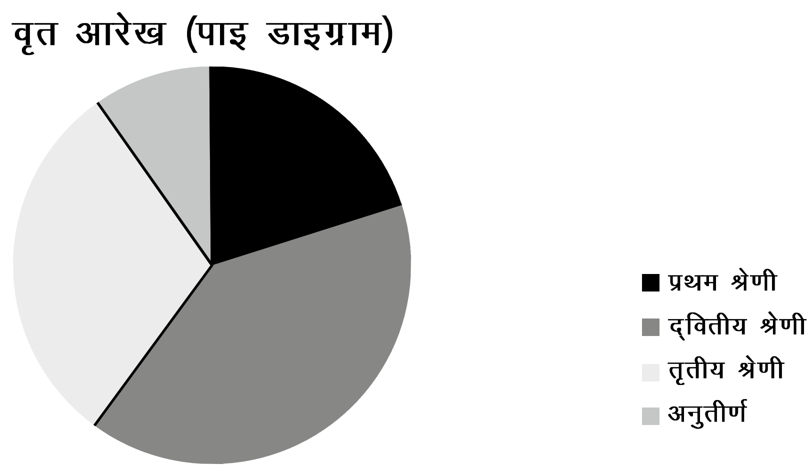
$$\therefore\ 20\% = \frac{360}{100} \times 20 = 72^\circ$$

$$40\% = \frac{360}{100} \times 40 = 144^\circ$$

$$30\% = \frac{360}{100} \times 30 = 108^\circ$$

$$\text{तथा}\ 10\% = \frac{360}{100} \times 10 = 36^\circ$$

दिये गये प्रतिशत के विभिन्न प्राप्ताकों से 72°, 144°, 108° तथा 36° के कोण बनाकर वृत्त आरेख (पाइ डाइग्राम) द्वारा प्रदर्शित करते हैं।



आरेख 7.6 पाइ डाइग्राम (वृत्त आरेख) के माध्यम से आँकड़ों का प्रर्दशन

उदाहरण 2.

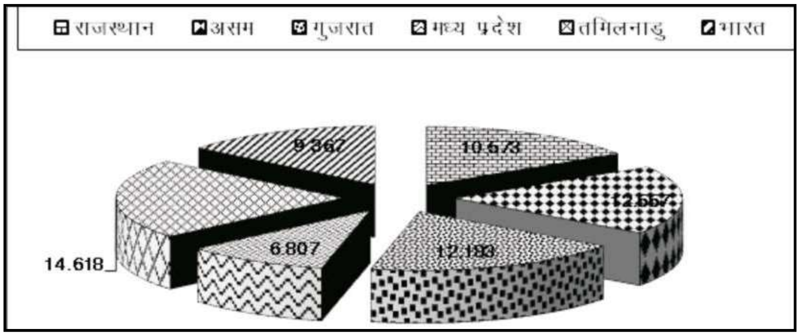
भारत के विभिन्न राज्य प्रति नामांकित बच्चे की शिक्षा पर कितना खर्च करते हैं, आइए देखें –

2010–11 में पूरे देश की सरकारों ने मिलकर औसत प्रति बच्चा जो खर्च किया था वह था 9367 रु.। (शिक्षा पर कुल बजट को कुल दर्ज छात्रों की संख्या से भाग देने पर प्रति बच्चा खर्चे का आँकड़ा मिलता है)। देश में शिक्षा पर सबसे अधिक प्रति बच्चा खर्च करने वाला राज्य है केरल जहाँ 2010–11 में हर बच्चे की शिक्षा पर 25,989 रूपए खर्च किया गया।

तालिका 7.6 – 2010–11 में शिक्षा पर प्रति विद्‌यार्थी औसत राजकीय व्यय (रुपयों में)

क्रम संख्या	राज्य	व्यय
1.	राजस्थान	10,573
2.	असम	12,557
3.	गुजरात	12,183
4.	मध्यप्रदेश	6,807
5.	तमिलनाडु	14,618
	भारत	**9,367**

स्रोतः ASER report: Do Schools Get Their Money? Paisa Report 2012.



आरेख 7.2 2010–11 में शिक्षा पर प्रति विद्यार्थी औसत शासकीय व्यय (रुपयों में)

हमें ध्यान रखना होगा कि यह सारा खर्च सीधे बच्चों पर नहीं होता है। इसका एक बहुत बड़ा हिस्सा, शिक्षा विभाग और उससे संबंधित इकाइयों पर खर्च होता है, फिर भवन निर्माण और शिक्षकों के वेतन आदि पर खर्च होता है। इसमें मध्याह्न भोजन, यूनिफार्म, पाठ्यपुस्तकें, सहायक शैक्षणिक सामग्री, छात्रवृत्ति आदि भी शामिल हैं। यह सब मिलाकर पूरे देश में औसतन लगभग दस हजार रुपये हर साल प्रति बच्चा खर्च किया जाता है अर्थात प्रति महीना एक हजार से भी कम शिक्षा पर खर्च होता है।

7.3.5 सारणी में प्रदर्शन एवं विश्लेषण

किसी भी चर की वर्ष चर प्रवृतियाँ ज्ञात करने एवं भावी योजना बनाने में सारणी द्वारा प्रदर्शन से सहायता मिलती है इनमें किसी एक वर्ष या एक से अधिक वर्षों के विभिन्न चरों की प्रवृतियाँ प्रदर्शित की जाती हैं।

एक उदाहरण से इन्हें समझा ता सकता है –

क्र.सं.	वर्ष	उच्च प्राथमिक स्तर पर कुल नामांकन (11 से 13 आयु वर्ग)		
		बालिका	बालक	कुल योग
1.	2006–07	69.60	77.41	73.80
2.	2007–08	74.40	81.50	78.10
3.	2008–09	76.60	82.70	79.80
4.	2009–10	79.00	84.30	81.70
5.	2010–11	82.90	87.50	85.20

इस सारणी का विश्लेषण करे तो ज्ञात होता है कि प्रति वर्ष नामांकन दर बढ़ रहा है। इस कारण इन आँकड़ों से कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य व अवलोकन सामने निकलकर आते हैं। जिनके आधार पर हम सिद्धांत निर्माण की ओर बढ़ सकते हैं अथवा अपने तर्कों को मजबूत कर सकते हैं। जैसे – 2006–06 में बालिका नामांकन 69.60 था जो पाँच वर्षों के पश्चात लगभग अधिकतम 5 प्रतिशत की दर से बढ रहा है और 2010–11 में यह बढकर 82.90 हो गया।

हमारे देश में कितने लोग हैं जो पढ़ लिख सकते हैं ? हो सकता है कि इनमें कई लोग बिना विद्यालय जाए या प्राथमिक शिक्षा पूरी किए साक्षर हुए हों (उदाहरण के लिए वे साक्षरता अभियानों में वयस्क शिक्षा कार्यक्रमों में पढ़ना सीखे)। साक्षरता औपचारिक शिक्षा की पहली और बुनियादी कड़ी है। चलें, देखें हमारे देश में कितने लोग साक्षर हैं?

गतिविधि

राष्ट्रीय साक्षरता दर के आँकडो का राजस्थान राज्य के साक्षरता दर के आँकड़ों से तुलना करें।

गतिविधि

अपने जिले की जनसंख्या के आँकड़ों को निम्नांकित सरणी में लिखते हुए अन्य जिलों के साथ 2011 जनसंख्या संबंधी आंकड़ें लिखें।

अभ्यास तालिका 1. जनसंख्या – 2011

क्र सं	राज्य	2011
1	आपका जिला के नाम	
2	अन्य जिला का नाम	
3	जिला	
4	जिला	
5	जिला	68,621,012
6	राजस्थान	1,121,019,000
	भारत	

गतिविधि

इस तालिका पर कुछ तुलनात्मक सवाल बनाएँ और उनका उत्तर भी लिखें।

अभ्यास तालिका 2. लिंग अनुपात 2001 व 2011

(महिला प्रति हजार पुरुष)

क्रम संख्या	राज्य	लिंगानुपात 2011 में	लिंगानुपात 2001 में
1	आपके जिले का नाम		
2	जिला		
3	जिला		
4	जिला		
5	जिला		
6	**राजस्थान**	926	
	भारत	940	

स्रोत का उल्लेख करें जिससे आप आँकड़ें लिखेगें।

गतिविधि

- किस जिले में सबसे कम बच्चे प्राथमिक शिक्षा पूरी कर रहे हैं ? वहाँ प्राथमिक शिक्षा पूरी करने वाले बच्चों का अनुपात कितना है ?
- किस जिले में सबसे अधिक बच्चे प्राथमिक शिक्षा पूरी कर रहे हैं ? वहाँ कितने प्रतिशत बच्चे प्राथमिक शिक्षा पूरी कर रहे हैं ?
- किन–किन राज्यों में पचास प्रतिशत से कम बच्चे दस साल की विद्यालय की पढ़ाई पूरी कर पाते हैं ?

समेकन

इस इकाई के माध्यम से हमने विभिनन आँकड़ों की प्रस्तुति जैसे मानचित्र, दंड आरेख, सांख्यिकी गणना, सारणीयन के बारे में जाना। तथा कुछ प्रमुख चरों को सम्मुख रखते हुए किस प्रकार की प्रस्तुति उपर्युक्त रहती है, यह भी समझा। जैसे कुछ गणना आधारित, प्रवृत्ति आधारित आँकड़ों को सारलीयन विधि से प्रस्तुत किया जाता है। तथा प्रतिशत में दर्शाए गए आँकड़ों को दंड आरेख के रूप में प्रदर्शित कर तुलनात्मक निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इस इकाई के अध्ययन एसे हमने ये समझा कि गुणात्मक शिक्षा में शैक्षिक आँकड़ों का बहुत महत्त्व है जो कि नीति निर्धारकों एवं नियोजकों को भावी रणनीति एवं व्यूह रचना निर्माण में सहायता करते हैं। इस इकाई के अध्ययन से हमने ये भी जाना कि प्रत्यक्ष, सप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा के क्षेत्र में संलग्न सभी व्यक्ति नीति निर्धारण में महत्त्वपूर्ण एवं उपयोग भूमिका निभाते है। विद्यालय स्तर से लेकर राज्य स्तर तक के आँकड़ों के विश्लेषण पश्चात ही नीतियों का निर्धारण किया जाता है।

इस इकाई में हमने देखा कि हमारे देश में कई तरह के विकास के बावजूद महिलाओं की स्थिति में सुधार की गति धीमी रही है और जनसंख्या में महिलाओं व बालिकाओं की साक्षरता की दर कम है। हमने यह भी देखा कि पिछले कुछ दशकों में शिक्षा के विस्तार में भारत के विभिन्न राज्यों ने उल्लेखनीय प्रगति की है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं रही है और अब भी सारे बच्चे 8 वर्ष की प्रारंभिक शिक्षा पूरी नहीं कर पा रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के 60 वर्ष बाद हमारे देश में सरकारें प्रारंभिक शिक्षा का पूर्ण सार्वजनीकरण की ओर प्रयासरत है। अभी इस दिशा में और सार्थक प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

इस प्रकार शैक्षिक आँकड़ो का विश्लेषण गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के उद्देश्यों को पूर्ण करने में सहायक है।

दत्त कार्य

1. एक शिक्षक के लिए शैक्षिक आँकड़ों की क्या उपयोगिता है? इस विषय पर कम से कम 300 शब्दों में एक निबंध लिखिए।
2. राजस्थान और तमिलनाडु की शैक्षणिक स्थिति की तुलना करते हुए एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।
3. अपने जिले व राज्य के शैक्षिक आँकड़ों पर एक पोस्टर प्रदर्शनी तैयार करे। इसे गाँव या शहर के किसी मौहल्ले में लोगों को दिखाकर उन से चर्चा करें कि परिस्थिति में सुधार लाने के लिए शिक्षकों को क्या करना होगा? इसके आधार पर एक प्रतिवेदन तैयार करके कक्षा में प्रस्तुत करें।

संदर्भ सूची

- Census of india, 2001 व 2011
- NSSO: Status of Educational And Vocational Training In India 2009-10 (New Delhi 2013) Table 3.12.1 Page 79.
- DISE, 2011
- Elementary Education in India Progress towards UEE, Flash Statistics, NUEPA, New Delhi 2013
- Statistics of School Education 2010-11 MHRD, New Delhi
- UNDP (2013) Human Development Report 2013 – The Rise of the South: Human Progress in a Diverse World. Pg 162-165. Data sourced from World Development Indicators 2012. Washington, DC. http://data.worldbank.org.
- ASER report: Do Schools Get Their Money? Paisa Report 2012.
- Education in India: 2007-08 Participation and Expenditure NSS 64th Round (July 2007 – June 2008)
- मोहंती जे. (1987), डेमोक्रेसी एण्ड एज्यूकेशन इन इंडिया, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली।
- माथुर डी.सी.ए. (1966), सोशोलोजिकल एप्रोच टू इंडियन एज्यूकेशन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
- गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया (1991), Education for All.
- Salyidain K.G. (1970), Facts Indian Education, N.C.E.R.T, New Delhi.
- लोकतांत्रिक राजनीति – (1993), सामाजिक विज्ञान कक्षा 9, N.C.E.R.T, New Delhi.
- गणपति राय शर्मा, हरिशचंद्र व्यास, शिक्षा एवं भारतीय समाज (1993), राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- एच.एस. बधेला, शैक्षिक एवं उदीयमान भारतीय समाज (1997)।
- Anthony Giddens, Sociology
- हॉब्सबाम, एरिक (2009) क्रांति का युग (इतिहास 1848), संवाद प्रकाशन, मेरठ (अनुवाद–)
- हॉब्सबाम, एरिक (2009) पूँजी का युग (इतिहास 1848–1875), संवाद प्रकाशन, मेरठ (अनुवाद– वंदना राग)
- हॉब्सबाम, एरिक (2009) साम्राज्य का युग (इतिहास 1875–1914), संवाद प्रकाशन, मेरठ (अनुवाद– प्रकाश दीक्षित)
- गिड़ेंस, एंथनी (2006) सोशियोलॉजी (छठा संस्करण), पोलिटी प्रेस
- सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन (कक्षा 6)(2006) अध्याय 4– लोकतांत्रिक सरकार के मुख्य तत्त्व, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
- राजनीतिक सिद्धांत (कक्षा 11) (2006) अध्याय 7 राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
- विश्व इतिहास के कुछ विषय (कक्षा 11) (2006) अध्याय 9– औद्योगीकरण क्रांति, 11– आधुनिकीकरण के रास्ते, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
- भारत और समकालीन विश्व– (कक्षा 9) (2006) अध्याय 1–फ्रांसीसी क्रांति, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
- Industrialization and society - Eric Hopkince
- Education in England a brief history - Derek Gillard
- An historical account of the development of grammar schools – David Jesson

- Education and social change- Jon L. Loori
- सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम, एकलव्य द्वारा प्रकाशित कक्षा 7 की सामाजिक अध्ययन
- स्टीवन ब्रिन्ट औद्योगिक दुनिया में शिक्षा, शिक्षा विमर्श 65
- समरहिल ए. एस. नील
- शिक्षा के बजाय, बच्चे असफल कैसे होते हैं, शिक्षा की बजाय– जान होल्ट
- बच्चे असफल कैसे होते हैं
- पाठशाला भंग कर दो इवान इलिच
- सेन अमर्त्य, आर्थिक विकास और स्वातंत्र्य, राजपाल एंड संस, दिल्ली 2010।
- एस. हरमन एडवर्ड राबर्ट डब्ल्यू मैकमेनी, भूमण्डलीय जन माध्यम, निगम पूँजीवाद के नए प्रचारक, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली 2006।
- आलमान पाओला, अनु. दिव्याल विभांशु, भूमण्डलीय पूँजीवाद के विरूद्ध आलोचनात्मक शिक्षा – कार्ल मार्क्स और क्रांतिकारी आलोचनात्मक शिक्षा, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली 2008।
- किशोर राज (अनु.) विनाश को निमंत्रण – भारत की नई अर्थ नीति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1994।
- रूहेला, सत्यपाल, भारतीय शिक्षा का समाजशास्त्र, राज. हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 1972।
- पंत पुष्पेश, भूमंडलीकरण, प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली 2009।
- जोशी रामशरण, आदिवासी समाज और शिक्षा, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, 2012।
- सद्गोपाल अनिल, शिक्षा में बदलाव का सवाल, गन्थ शिल्पी, नई दिल्ली 2009।
- साईनाथ पी., तीसरी फसल, भारत के निर्धनतम जिलों की दास्तान, तीसरी दुनिया, नोएडा 2003।
- मल्हात्रा सुभाष, वैश्वीकरण एवं भारतीय अर्थव्यवस्था, रितु पब्लिकेशंस, जयपुर 2011।
- गंगवाल सुभाष, वैश्विक मंदीकरण एवं निवारण आदि पब्लिकेशंस, जयपुर 2011।
- भार्गव नरेश, वैश्वीकरण समाजशास्त्रीय परिपेक्ष्य, रावज पब्लिकेशंस जयपुर 2014।
- समकालीन विश्व राजनीति, कक्षा 12 वीं की राजनीति विज्ञान की पुस्तक N.C.E.R.T.।
- आधुनिक विश्व की विशेषताएँ, वैश्वीकरण और शिक्षा, पठन सामग्री क्र. 6।
- प्रतियोगिता दर्पण, अतिरिक्तांक 2012, उपकार प्रकाशन।
- सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन का इकाई 4, सामाजिक न्याय और हाशिए की आवाजें कक्षा 8 की पुस्तक, N.C.E.R.T.।
- थ्री इडियट् (2009) हिंदी, निर्देशन राजकुमार हिरानी
- स्टेनली का डिब्बा।
- एज्यूकेशन इन इंडिया, पद्मा रामचंद्रन, वसंता रामकुमारय 2005।
- एज्यूकेशन इन न्यू इंडिया, हुमायू कबीर 1959।
- एज्यूकेशन एंड नेशनल डेवलपमेंट, रिपोर्ट ऑफ द एज्यूकेशन कमीशन 1964–66, नेशनल काउंसिल ऑफ एज्यूकेशनल, रिसर्च एंड ट्रेनिंग, 1970।
- नई तालीम की कहानी, मार्जरी साइक्सय क्षेत्रीय प्रारम्भिक शिक्षा संसाधन केन्द्र, दिल्ली 2008।

- नेशनल पॉलिसी ऑन एज्यूकेशन, 1968, मिनिस्ट्री ऑफ एज्यूकेशन दृ गवर्नमेंट ऑफ इंडिया।
- भारत का संविधान।
- भारतीय शिक्षा का इतिहास (1800–1973), जे.पी. नायक व सैयद नूरुल्ला, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लि., 1976।
- माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदलियार आयोग) की रिपोर्ट 1953–53।
- विश्वविद्यालय आयोग (उच्च शिक्षा आयोग) की रिपोर्ट 1948।
- शिक्षा मर्मज्ञ गाँधी श्रीधरनाथ मुकर्जी व लक्ष्मीलाल के. ओड (सम्पादक), विद्याभवन गोविन्दराम सेक्सेरिया टीचर्स कॉलेज, उदयपुर।
- जागृति (1954), हिंदी, निर्देशक – सत्येन बोस (फिल्म)।
- परिचय (1972), हिंदी, निर्देशक – गुलज़ार (फिल्म)।
- किताब (1977), हिंदी, निर्देशक – गुलज़ार (फिल्म)।
- प्रगति प्रतिवेदन, वर्ष 1999–2000 प्रारंभिक शिक्षा, साक्षरता एवं सतत् शिक्षा, पंचायती राज विभाग, राजस्थान
- www.india.gov.in/sectors/education/education3.php#6
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005
- निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009
- ''भविष्य को गढ़ता एक दशक–ग्रामीण इलाकों में शिक्षा और दूसरा दशक''–डेंजिल सल्डाना वर्ष 2005 प्रकाशक सर्जना,बीकानेर।
- श्री मिलिंद बोकिल की रिपोर्ट 2011
- दूसरा दशक वार्षिक रिपोर्ट 2013–14
- "Education as an intervention strategy to eliminate and prevent child labour" International labour organÁation 21-9-2011
- "Education and Child Labour" Ranjan Ray (Uni. of Tasmania)
- www.Rishivelly.org.in
- सरकारी स्कूलों में सुधार प्रयास और कार्य, एकलव्य प्रकाशन, सम्पादन–मंदिरा कुमार, पदमा एम. सारंगपाणि
- प्रगति प्रतिवेदन 2001–02 राजस्थान सरकार, जयपुर
- शिक्षाकर्मी परियोजना एक परिचय, शिक्षाकर्मी बोर्ड, जयपुर
- समाचार पत्र शिक्षाकर्मी बोर्ड, जयपुर
- शिक्षाकर्मी परियोजना, शारदा जैन, आलोक माथुर संधान शोध केंद्र, 1996, जयपुर
- A promising start- Janshaala Programme Dep. of elementry education and litracy Ministery of Human Resource Development Govt.of india
- Annual Report Gov. of Rajasthan -1996, 1997, 1998, 1999
- सफर – बस्तियों के बच्चों की स्कूल तक पहुँच – जनशाला कार्यक्रम राजस्थान सरकार
- यात्रा– जनशाला कार्यक्रम – राजस्थान सरकार